अध्याय–1

विषयगत सिद्धान्त
DOCTRINE OF DISCIPLINARITY

शैक्षिक विषय (ACADEMIC DISCIPLINES)

प्रश्न 1– शैक्षिक विषय की अवधारणा स्पष्ट कीजिए। शैक्षिक विषयों की प्रकृति एवं रूप का वर्णन करते हुए इसकी सीमाएँ लिखिए।
Write the concept of Academic Disciplines. Describe the nature and forms of Academic Disciplines with explaining its limitations.

या

शैक्षिक विषयों का अर्थ बताते हुए शैक्षिक विषयों की प्रकृति, विशेषताएँ एवं रूप बताइए।
Write the meaning of Academic Disciplines with explaining the nature, characteristics and forms of Academic Disciplines.

उत्तर– शैक्षिक विषय की अवधारणा (Concept of Academic Disciplines)

शिक्षा की वर्तमान अवधारणा के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना है। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए विद्यालयी पाठ्यचर्या को विषयों से सम्बन्धित ज्ञान से युक्त करने की आवश्यकता है तथा पाठ्यचर्या निर्माताओं को बालक की प्रकृति, उनके विकास, विकास के विभिन्न स्तरों पर उसकी आवश्यकताओं, अभियोग्यताओं, रुचियों, क्षमताओं, आकांक्षाओं तथा मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की अन्य प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर पाठ्यचर्या को निर्मित तथा संगठित करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही पाठ्यचर्या निर्माताओं के लिए अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली ढंग से गतिमान बनाए रखने के लिए तथा उपयुक्त अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न करने के लिए विषयों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। विषयों के ज्ञान की उपेक्षा करके अधिगम को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। विद्यालयी पाठ्यचर्या वह नींव होती है जिस पर बालक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व आधारित होता है। उसी के माध्यम से छात्र सामाजिक मूल्यों, परम्पराओं, नैतिकता, मानक सामाजिक अपेक्षाएँ, रीति–रिवाजों से परिचित होता है।

सामाजिक ज्ञान के साथ–साथ पाठ्यचर्या निर्माताओं को मनोवैज्ञानिक तत्वों का भी ज्ञान होना चाहिए जिसका प्रयोग सभी शिक्षक किसी न किसी रूप में करते हैं। विभिन्न देशों के शैक्षिक इतिहास में इसके प्रयोग मिलते हैं। नैतिकता की जानकारी हम विभिन्न सुन्दर पौराणिक कहानियों को पाठ्यचर्या में सम्मिलित करके दे सकते हैं किन्तु मनोविज्ञान तथा विशेष रूप से बाल मनोविज्ञान एवं अधिगम मनोविज्ञान के विकास के बाद ही इस ओर ध्यान दिया गया है। यह मनोविज्ञान के प्रभाव का ही परिणाम है कि अब बालकों को ऐसी खाली बाल्टी नहीं समझा जाता है जिसमें ज्ञान भरना है बल्कि उसे जीवन्त, सृजनशील विचार युक्त संवेदनशील प्राणी के रूप में तैयार किया जाना चाहिए। इसके लिए बालक की इच्छाओं, मूलप्रवृत्तियों, अभिरुचियों तथा आकांक्षाओं एवं बौद्धिक तथा शारीरिक क्षमताओं के अनुकूल शिक्षा के विभिन्न अंगों का स्वरूप निर्धारित किया जाना चाहिए।

विद्यालयी पाठ्यचर्या मनोविज्ञान से सर्वाधिक प्रभावित हुई है। मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षण पद्धति, पाठ्यक्रम, शिक्षा के संगठन तथा विषयों की अवधारणा, शिक्षक की भूमिका, अनुशासनिक ज्ञान की भूमिका आदि सभी पक्षों को नया आयाम प्रदान किया है। मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के अनुसार शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिए तथा शिक्षा के द्वारा बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन आना चाहिए। मनोविज्ञान के विकास के परिणामस्वरूप अनेक देशों में बालकों की आवश्यकताओं के आधार पर पाठ्यचर्या निर्माण का प्रयास किया जा रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका में तो पाठ्यचर्या के विकास की आवश्यकता के रूप में एक नई दृष्टि विकसित हुई है। इसके अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण बालकों के सामान्य विकास और उसे प्रदान करने वाली स्थितियों के लिए आवश्यक जैविक एवं मनोवैज्ञानिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है। पाठ्यचर्या के निर्माण में बालक के अध्ययन को भी महत्व दिया जाने लगा है। इस कारण आज पाठ्यचर्या निर्माण के लिए पाठ्यचर्या निर्माताओं को बालकों के बारे में सही जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो गया है। पाठ्यचर्या शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है जिसके द्वारा छात्र का पूरा व्यक्तित्व विकसित होता है। पाठ्यचर्या के आधार पर बालक का शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं चारित्रिक सभी प्रकार का विकास करने पर बल दिया जाता है। इसी कारण विद्यालयी पाठ्यचर्या में विषयों के ज्ञान की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है।

शैक्षिक विषय का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Academic Disciplines)

Discipline अंग्रेजी भाषा का शब्द है जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द **'डिसाइपुलस' (Discipules)** शब्द से हुई है जिसका हिन्दी में अर्थ है **'सीखना'** या **'आज्ञापालन'** (To learn or obedience)। कुछ शिक्षाविदों का मत है कि Discipline शब्द अंग्रेजी भाषा के डिसाइपिल शब्द से उत्पन्न हुआ है और **'डिसाइपिल'** का अर्थ है 'शिष्य' या छात्र (Pupil)। Discipline शब्द की उत्पत्ति Disciplina से भी मानी जाती है जिसका अर्थ है– अध्यापन (Teaching)।

The term 'discipline' originates from the english words disciples, which means pupil and disciplina which means teaching.

Scanned by CamScanner

वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र को अध्ययन विषय (Discipline) के रूप में व्यक्त किया जाता है। अध्ययन विषय वस्तुओं तथा घटनाओं के किसी विशिष्ट क्षेत्र सम्बन्धी ज्ञान का संगठन है। इन वस्तुओं तथा घटनाओं के अन्तर्गत वे तथ्य, प्रदत्त, पर्यवेक्षण, अनुभूतियाँ आदि सम्मिलित रहती हैं जो उस ज्ञान के आधारभूत घटकों को निर्मित करते हैं। कोई ज्ञान किसी अध्ययन विषय के क्षेत्र में आता है या नहीं, इसका निर्धारण करने के लिए आधारित नियम एवं परिभाषाएँ निर्मित कर ली जाती है। इस आधार पर अध्ययन विषयों में कुछ विशिष्ट लक्षण परिलक्षित होते हैं। ये लक्षण विश्लेषणात्मक, सरलीकरण, संश्लेषणात्मक, समन्वय एवं गत्यात्मकता आधारित होते है। इसकी संकल्पनात्मक तथा संश्लेषणात्मक दिशा होती है साथ ही प्रत्येक अध्ययन विषयों की एक मान्य संरचना तथा अपना पाठ्यक्रम होता है जिसमें नवीन ज्ञान को समाहित किया जाता है अर्थात् उसके विस्तार क्षेत्र में वृद्धि करके, उसे और अच्छा बनाने, अधिक वैध बनाने के सम्बन्ध में निश्चित नियम होते हैं। चूँकि प्रत्येक अध्ययन विषय का अपना इतिहास एवं परम्पराएँ होती हैं और यही बात उसकी संरचना तथा उसके नियमों के निर्धारण के लिए उत्तरदायी होती है।

शैक्षिक विषय विश्वविद्यालय के शैक्षिक विभाग की एक शाखा या क्षेत्र है, जो कि अनुसंधान और विद्वत्ता की उन्नति के लिए सूत्रित है।

Academic Disciplines is a field or branch of learning affiliated with an academic department of a university formulated for the advancement of research and scholarship.

शैक्षिक विषय शोधार्थी, शैक्षिक क्रिया–कलापों और विशेषज्ञों के पेशेवर प्रशिक्षण के लिए सूत्रित है।

Academic Discipline is formulated for the professional training of researchers, academics and specialists.

शैक्षिक विषय या अध्ययन का क्षेत्र ज्ञान की एक शाखा है जो कि उच्च शिक्षा के एक भाग के रूप में पढ़ाई जाती है और जिसका अनुसंधान भी किया जाता है।

An academic disciplines or field of study is a branch of knowledge that is taught and researched as part of higher education.

शैक्षिक विषय के उदाहरण हैं मानव विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञान, पुरातत्व विज्ञान और शिक्षा आदि।

Examples of academic disciplines are anthropology, space science, psychology, sociology, archeology, education, etc.

एंथनी बिगलेन के अनुसार, "शैक्षिक विषय या अध्ययन का क्षेत्र ज्ञान की एक शाखा है जो कि उच्च शिक्षा के एक भाग के रूप में पढ़ाई जाती हैं और जिसका अनुसंधान भी किया जाता है।"

According to Anthony Biglan, "An academic disciplines or field of study is a branch of knowledge that is taught and researched as part of Higher education."

Deng Z के अनुसार, "शैक्षिक विषय विश्वविद्यालय के शैक्षिक विभाग की एक शाखा है या क्षेत्र है जो कि अनुसंधान और विद्वता की उन्नति के लिए सूत्रित है। ये शोधार्थी, शैक्षिक क्रिया–कलापों और विशेषज्ञों के पेशेवर प्रशिक्षण के लिए सूत्रित है।"

शैक्षिक विषय सीखने या अध्ययनशील अनुसंधान की एक शाखा है मुख्यतः स्नातक और स्नात्कोत्तर स्तरों में। जो विद्यार्थियों के लिए अध्ययन के कार्यक्रम (Program of study) का ढाँचा प्रदान करती है।

An academic disciplines is a branch of learning or scholarly investigation that provides a structure for the students (program of study) especially in the graduate and post graduate levels.

ग्लोसबे के अनुसार, "ज्ञान या सीखने की एक शाखा जो महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयी स्तर पर पढ़ाई जाती है या जिस पर शोध किया जाता है"।

According to Glosbe, "A branch of knowledge or learning which is taught or researched at college or university level."

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि–

1) प्रत्येक विषयों की अपनी अध्ययन एवं अनुसन्धान विधियाँ होती हैं जो दूसरों से पृथक होती हैं।
2) अध्ययन विषय एक मौखिक, अशाब्दिक एवं अनुपालन की प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य विषय अध्ययन अथवा संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करना है।
3) प्रत्येक अध्ययन विषयों का एक निश्चित क्षेत्र, निश्चित विधि, निश्चित इतिहास एवं परम्परा होती है साथ ही प्रत्येक विषयों का अपना मूल्य एवं चिन्तन क्षेत्र होता है।
4) प्रत्येक अध्ययन विषय में गत्यात्मकता पाई जाती है। अतः कोई भी विषय पूर्णतः स्थिर नहीं होता है। इसमें नवीन ज्ञान का समावेश होता है और उसमें परिवर्तन आते रहते हैं।

शैक्षिक विषय की प्रकृति एवं विशेषताएँ (Nature and Characteristics of Academic Disciplines)

अध्ययन के विषयों को ज्ञान का एक पुँज समझा जाता है। विषयों को समझने के लिए सर्वप्रथम हमें उसके परम्परागत अर्थ को समझना होगा। परम्परागत सन्दर्भ में विषयों को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

"विषयों को व्यवस्थित ज्ञान का पुँज समझा जाता है जिसे अधिगम, मानसिक प्रशिक्षण तथा उच्च स्तरीय अध्ययन एवं अनुसन्धान के लिए उपयुक्त ढंग से नियमित एवं सम्मिलित कर लिया जाता है।"

परन्तु इस परिभाषा को सर्वसम्मत रूप से स्वीकार नहीं किया गया है। फिर भी कुछ शिक्षाविदों ने इस परिभाषा से सहमत होने के लिए निम्नलिखित तर्क दिए हैं–

1) **विषयों में सूचनाओं के प्रस्तुतीकरण का एक विशेष आधार होता है**–विषयों में केवल सूचनात्मक ज्ञान का समूह ही नहीं होता बल्कि इसमें सूचनाओं के प्रस्तुतीकरण का एक निश्चित आधार होता है। प्रत्येक विषयों की कुछ आधारभूत परिकल्पनाएँ होती हैं तथा ज्ञान का समूहीकरण इन्हीं कल्पनाओं की परिधि में

Scanned by CamScanner

किया जाता है। ये आधारभूत संकल्पनाएँ ही विषयों की संरचना का निर्माण करती हैं। यह संरचना ही उसे अपना सत्य तथा सौन्दर्य प्रदान करती है तथा इसकी प्रकृति को समझने पर ही हम विषयों के वास्तविक अर्थ को ठीक ढंग से समझ पाते हैं।

2) **प्रत्येक विषयों के विशेष उपागम, उपकरण एवं विधियाँ होती हैं**–सूचनात्मक ज्ञान की खोज करने एवं उसे व्यवस्थित करने के लिए प्रत्येक विषयों के अपने विशिष्ट उपागम, विशिष्ट उपकरण एवं विशिष्ट विधियाँ होती हैं। ये उन विषयों की विधि कहलाती है। विषयों का पाठ्यक्रम पक्ष उसके विधि पक्ष से इतनी गहराई से जुड़ा होता है कि उन्हें अलग रूप में देखा और समझा नहीं जा सकता हैं। विषयों की भाँति पारस्परिक संगति एवं समन्वय ज्ञान का एक अनिवार्य तथ्य है।

3) **विषयों में नवीन ज्ञान का स्वागत होता है**–तीसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि विषयों में कोई स्थिरता नहीं होती। उसमें सदैव नवीन ज्ञान का समावेश होता रहता है तथा उसमें निरन्तर बदलाव आते रहते हैं। इस प्रकार की गत्यात्मकता विषयों का आवश्यक लक्षण होती है। तकनीकी के प्रभाव तथा ज्ञान के विस्तार के कारण गत्यात्मकता विषयों में सदैव बनी रहती है। विषयों में गत्यात्मकता होने के कारण ही विकास की सम्भावनाएँ निहित होती हैं।

नवीन सूचनात्मक ज्ञान के समावेश के कारण होने वाले परिवर्तनों से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन वे होते हैं जो नवीन तथ्यों के प्रकाश में आने या प्राचीन तथ्यों के नए अर्थ विकसित होने से हो जाते हैं। इन परिवर्तनों के कारण नए सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी जरूरी हो जाता है। इसके अलावा प्रायः पुरानी समस्याओं का समाधान भी नई समस्याओं को जन्म देता है। इस तरह के परिवर्तन समस्त विषयों में होते हैं। यह पृथक बात है कि कुछ विषयों में इन परिवर्तनों की गति धीमी होती है और कुछ में तीव्र होती है परन्तु यह सम्भव नहीं है कि परिवर्तन न हों।

उपर्युक्त तर्कों की रोशनी में वर्तमान समय में विषयों की सर्वमान्य परिभाषा इस प्रकार हैं–

"वस्तुओं तथा घटनाओं के किसी विशिष्ट क्षेत्र सम्बन्धी ज्ञान के संगठन को विषय कहा जाता है। इन वस्तुओं तथा घटनाओं के अन्तर्गत वे तथ्य, प्रदत्त, पर्यवेक्षण, अनुभूतियाँ भी सम्मिलित रहती हैं जो उस ज्ञान की आधारभूत घटनाओं को निर्मित करती हैं। कोई ज्ञान विषयों के क्षेत्र में आता है या नहीं, इसका निर्धारण करने के लिए उस पर आधारित नियम एवं परिभाषाएँ निर्मित कर ली जाती हैं।"

इस परिभाषा के आधार पर विषयों की **प्रमुख विशेषताएँ** इस प्रकार हो सकती हैं–

1) विषयों का अपना **मूल्य एवं विशिष्ट चिन्तन क्षेत्र** होता है। कुछ विषय आध्यात्मिक क्षेत्र से सम्बन्धित चिन्तन रखते हैं तो कुछ आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित होते हैं।
2) विषयों की **मान्य संरचना** होती है। उसकी परिधि उसी संरचना से सम्बन्धित होती है।
3) विषयों का अपना **इतिहास** एवं **परम्परा** होती है तथा यही बात उसकी संरचना करने तथा उसके नियमों के निर्धारण के लिए उत्तरदायी होती है। प्रत्येक अध्ययन विषय दूसरे अध्ययन विषय से अपने इतिहास तथा परम्पराओं के कारण भिन्न महत्व रखते हैं।
4) विषयों का अपना **पाठ्यक्रम (Syllabus Subjects)** होता है तथा उसमें नवीन ज्ञान को समाहित करने के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नियम होते हैं विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम (syllabus) भिन्न–भिन्न होते हैं उसमें सभी प्रकार के ज्ञान को सम्मिलित नहीं किया जा सकता है उसके सम्बन्ध में कुछ नियम होते हैं जिनका पाठ्यचर्या निर्माताओं को पालन करना पड़ता है।
5) विषयों की अपनी **अध्ययन सामग्री** तथा **अनुसन्धान विधियाँ** होती हैं जो दूसरे विषयों से भिन्न होती हैं।

शैक्षिक विषय के रूप (Forms of Academic Disciplines)

अध्ययन विषय के प्रमुख चार रूप होते हैं–

1) **बहु–अध्ययन विषय (Multi-Disciplinary)**–इसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक अध्ययन विषयों का अध्ययन किया जाता है। **उदाहरण के लिए**– एम.बी.ए.,एम.सी.ए. बी.टेक. एवं विधि ।

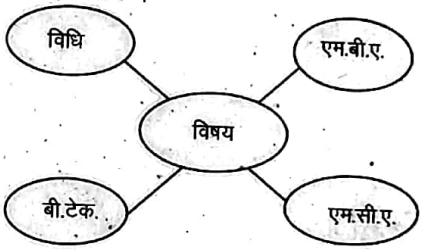

2) **अन्तः–अध्ययन विषय (Inter-Disciplinary)**–अध्ययन विषय के मध्य या उससे परे ज्ञान में विस्तार अन्तः अध्ययन विषय के अन्तर्गत रखा जाता है। **उदाहरण के लिए**– गृह विज्ञान, वाणिज्य।

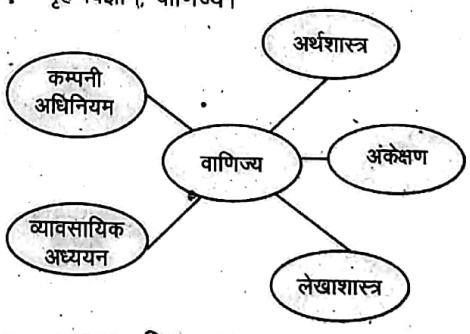

3) **ट्रान्स अध्ययन विषय (Trans Disciplinary)**–ट्रान्स अध्ययन विषय से अभिप्राय सभी अध्ययन विषयों के संयुक्त प्रयास द्वारा नवीन ज्ञान का निर्माण करना।

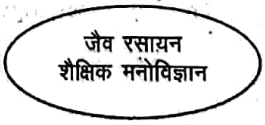

4) **क्रॉस अध्ययन विषय (Cross Disciplinary)**–यह वह ज्ञान है जो किसी एक अध्ययन विषय को स्पष्ट करता है परन्तु यह किसी अन्य अध्ययन विषय से सम्बन्धित होता है। जैसे–संगीत की भौतिकी (Physics of Music) एवं साहित्य की राजनीति (Politics of Literature)

Scanned by CamScanner

शैक्षिक विषय की सीमाएँ (Limitations of Academic Disciplines)

अध्ययन विषयों की प्रमुख सीमाएँ इस प्रकार हैं–

1) विषयों की संरचना का कोई ठोस एवं निश्चित आधार न होने के कारण सिद्धान्त तथा व्यवहार में अन्तर बढ़ जाता है।

2) ज्ञान के असीम भण्डार को देखते हुए पाठ्यचर्या में ज्ञान के सभी प्रमुख उपखण्डों को समाहित कर पाना सम्भव नहीं है। अतः इसके दो विकल्प दिखाई पड़ते हैं या तो चयन प्रक्रिया के माध्यम से कुछ उपखण्डों को छोड़ दिया जाए और कुछ अधिक महत्वपूर्ण उपखण्डों को शामिल कर लिया जाए अथवा उन्हें व्यापक क्षेत्रीय इकाइयों में व्यवस्थित किया जाए।

3) पाठ्यचर्या में भिन्न–भिन्न विषयों का ही महत्व रह जाने के कारण पाठ्यचर्या के सामान्य विशेषज्ञों की इनके निर्माण तथा विकास कार्य में कोई प्रभावशाली भूमिका नहीं रह गयी है। दूसरी ओर किसी क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञता प्राप्त होने से ही, कोई व्यक्ति पाठ्यचर्या विकास कार्य में सहभागी होने का अधिकारी नहीं होता है। अतः इससे पाठ्यचर्या के संगठन में शिथिलता एवं बिखराव आने की अधिक सम्भावना है।

4) इसमें शामिल किए जाने वाले विभिन्न विषयों के मध्य पारस्परिक समन्वय में कमी की सम्भावना रहती है। इस कारण यह पाठ्यचर्या ज्ञान के अत्यधिक असम्बद्ध उपखण्डों का एक पुंज मात्र बनकर रह जाएगा।

5) इस प्रकार के पाठ्यचर्या में विभिन्न विषयों के बीच अधिक महत्वपूर्ण स्थान के लिए खींच–तान भी हो सकती है जिससे पाठ्यचर्या में असन्तुलन उत्पन्न हो सकता है।

6) यह उपागम, पाठ्यचर्या में पृथक–पृथक विषयों पर अधिक बल देता है। चूँकि विभिन्न विषयों के साथ–साथ सम्पूर्ण पाठ्यचर्या का भी अपना महत्व है तथा सम्पूर्ण पाठ्यचर्या विभिन्न विषयों का केवल समूह ही नहीं होता है। अतः इस उपागम में सम्पूर्ण पाठ्यचर्या पर केवल सामान्य ध्यान देने या उसकी पूर्ण उपेक्षा हो जाने का भय है।

प्रश्न 2– शैक्षिक विषयों के आधार प्रस्तुत करते हुए शैक्षिक विषयों की आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।

Presenting the basis of Academic Disciplines, highlight the need and importance of Academic Disciplines.

या

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write short notes on the following-

1) **शिक्षक के लिए शैक्षिक विषयों का महत्व (Importance of Academic Disciplines for Teacher)**
2) **शिक्षार्थी के लिए शैक्षिक विषय का महत्व (Importance of Academic Disciplines for Student)**
3) **पाठ्यचर्या के लिए शैक्षिक विषय का महत्व (Importance of Academic Disciplines for Curriculum)**

उत्तर– शैक्षिक विषयों के आधार (Basis of Academic Disciplines)

अध्ययन विषयों के क्षेत्रों को हम तीन आधारों पर बाँट सकते हैं और उसी आधार पर उसका विद्यालयी विषयों से सम्बन्ध समझ सकते हैं–

1) **परम्परागत आधार एवं विषय**–अध्ययन विषयों के परम्परागत आधार के अनुसार अध्ययन विषयों को प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी वर्गों में रखा जाता है। इन वर्गों के कई उपखण्ड होते हैं जिन्हें अध्ययन विषयों के नाम से जाना जाता है। कुछ विद्वानों ने इसे दोषपूर्ण एवं भ्रामक कहा है। उनकी दृष्टि से ऐसे अनेक विषय हैं जिनके वर्ग का निर्धारण करना अत्यन्त कठिन है। **उदाहरणार्थ**– भूगोल विषय को कुछ लोग सामाजिक विज्ञान वर्ग में सम्मिलित करते हैं जबकि कुछ प्राकृतिक विज्ञान वर्ग में इसे शामिल करते हैं। इसी प्रकार इतिहास एक ऐसा विषय है जिसे कुछ लोग सामाजिक विज्ञान वर्ग का मानते हैं जबकि कुछ लोग मानविकी वर्ग का मानते हैं। इस विषय को सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी दोनों वर्गों में शामिल किया जाता है। इसी प्रकार की कठिनाइयाँ कुछ अन्य विषयों के वर्गों के निर्धारण में आती हैं। परम्परागत आधार पर तीन अध्ययन विषयक क्षेत्र निकलते हैं–
   i) प्राकृतिक विज्ञान वर्ग,
   ii) सामाजिक विज्ञान,
   iii) मानविकी वर्ग।

2) **कार्यात्मक आधार एवं विषय**–अध्ययन विषयों को कार्यों के आधार पर भी समझा जा सकता है। इसके अनुसार जो विषय मूलतः खोज पर आधारित होता है उसे प्राकृतिक विज्ञान वर्ग क्षेत्र के अन्तर्गत रखते हैं। इसके विपरीत जो विषय मुख्यतः गुण–अवगुण पर आधारित होता है उसे मानविकी वर्ग के अन्तर्गत रखते हैं। इसके अतिरिक्त जिन विषयों का निर्णय पक्ष अधिक प्रबल होता है उनको सामाजिक विज्ञान वर्ग के अन्तर्गत रखा जाता हैं। कार्यात्मक आधार पर भी तीन विषय वर्ग माने जाते हैं–
   i) प्राकृतिक विज्ञान वर्ग,
   ii) मानविकी वर्ग,
   iii) सामाजिक विज्ञान वर्ग।

3) **मानवीय व्यवहार का आधार**–यह विषय मानवीय व्यवहार पर आधारित है। इसके अन्तर्गत मानव के चार व्यवहार प्रतिमानों के अनुसार विषयों को चार वर्गों में बाँटा गया है–
   i) **तर्कात्मक वर्ग (Logical Group)**–इसमें तर्क को महत्व दिया जाता है इसके अन्तर्गत गणित तथा भाषाओं को रखा जाता है। दूसरे शब्दों में इस विषय का सम्बन्ध गणित एवं भाषा से माना जाता है।
   ii) **प्रयोगात्मक वर्ग (Experimental Group)**–इसके अन्तर्गत परम्परागत प्राकृतिक विज्ञान को सम्मिलित किया गया है।
   iii) **नैतिकतात्मक वर्ग (Moral Group)**–इसके अन्तर्गत इतिहास तथा धार्मिक विषय, साहित्य आदि विषय शामिल किए जाते हैं।
   iv) **सौन्दर्यात्मक वर्ग (Aesthetical Group)**–विषय के इस वर्ग में संगीत एवं ललित कलाओं, साहित्य आदि विषयों को सम्मिलित किया गया है।

Scanned by CamScanner

अतः स्पष्ट है कि अध्ययन विषयों के क्षेत्रों तथा विभिन्न विद्यालयी विषयों में सम्बन्ध पाया जाता है। अध्ययन विषयों के वर्ग निर्धारण में भी उसका इतिहास तथा उसकी परम्परा महत्वपूर्ण होती है तथा इसी आधार पर विषयों को विभिन्न वर्गों में रखा जाता है और प्रत्येक वर्ग के कई उपखण्ड होते हैं जो विषय कहलाते हैं। इन विषयों का अपने वर्गों से सह–सम्बन्ध पाया जाता है। यद्यपि कुछ विषय ऐसे भी होते हैं जो दो वर्गों में शामिल हो जाते हैं। इसी कारण कुछ विद्वान विषय के विभिन्न क्षेत्रों को अधिक तार्किक तथा वैज्ञानिक नहीं मानते हैं।

शैक्षिक विषय की आवश्यकता (Need of Academic Disciplines)

विषयों के ज्ञान का विकास एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है। इसका उद्देश्य विशिष्ट शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक साधन है। यह शिक्षण–अधिगम उद्देश्यों को प्रभावशाली एवं उपयुक्त ढंग से पूर्ण करने में सहायता प्रदान करता है। यह पाठ्यचर्या की रूपरेखा निर्मित करने में सहायक सिद्ध होता है। अध्ययन विषयों की आवश्यकता के निम्नलिखित कारण हैं–

1) **आवश्यकताओं की पूर्ति**–राष्ट्रीय विचारशील, सामाजिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक विचारों की पूर्ति हेतु विषयों के ज्ञान की आवश्यकता होती हैं।

2) **उद्देश्यों का निर्धारण**–विषयों के ज्ञान की आवश्यकता होती है क्योंकि इसकी सहायता से ही ग्रेड, विशिष्ट अवस्था एवं शिक्षा स्तर पर शिक्षण अधिगम उद्देश्यों को निर्धारित किया जा सकता है।

3) **रूप देने में**–विषयों के ज्ञान की आवश्यकता विशेष रूप से क्रिया–केन्द्रित, छात्र–केन्द्रित, अनुभव–केन्द्रित, जीवन–केन्द्रित, विषय–केन्द्रित एवं सन्तुलित पाठ्यचर्या के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

4) **उपयुक्तता मिलान**–विषयों के ज्ञान का विकास अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक संसाधनों, शिक्षण–अधिगम स्थितियों एवं छात्रों की आवश्यकता के अनुसार निर्मित किया जाता है।

5) **अधिगम अनुभवों का चयन एवं गठन**–विषयों के ज्ञान के द्वारा अधिगम अनुभवों के उचित चयन एवं गठन को पाठ्यक्रम एवं अन्य क्रियाओं को रूप देने के लिए गठित किया जाता है।

6) **नियोजकों तथा प्रशासकों का सुझाव**–विषयों के ज्ञान नियोजकों तथा प्रशासकों को विषयों के ज्ञान के क्रियान्वयन के लिए मानवीय एवं भौतिक संसाधनों की व्यवस्था करने तथा शिक्षण–अधिगम वातावरण को प्रभावी बनाने के लिए सहायता प्रदान करता है।

7) **शिक्षण अधिगम विधियाँ, सामग्री एवं रीतियाँ**–छात्रों को उपयुक्त शिक्षण–अधिगम विधियों, नीतियों, प्रविधियों तथा रीतियों को निर्धारित करने में सहायता प्रदान करता है।

शैक्षिक विषय का महत्व (Importance of Academic Disciplines)

विद्यालय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए विषयों के ज्ञान का अत्यधिक महत्व है। एक विद्यालय का उत्थान तथा पतन दोनों ही विषयों के ज्ञान पर निर्भर है। जिन विद्यालयों में विषयों का अभाव होता है, वहाँ शिक्षा सुचारू रूप से क्रियान्वित नहीं की जा सकी है।

विषयों के ज्ञान की आवश्यकता शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यचर्या तीनों को होती है तथा विषयों के ज्ञान का प्रमुख उद्देश्य इनकी कार्य व्यवस्था में उन्नति एवं सुधार करना है। अतः विषयों के ज्ञान के महत्व को इन तीनों के सन्दर्भ में निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है–

शिक्षक के लिए शैक्षिक विषय का महत्व (Importance of Academic Disciplines for Teacher)

एक शिक्षक अपने दायित्वों का निर्वहन तभी ठीक प्रकार से कर पाएगा जब उसको विषयगत विषयों का ज्ञान हो। वर्तमान समय में शिक्षक की भूमिका व्यापक हो गई है। अतः उसको समस्त विषयों की सामान्य जानकारी अवश्य होनी चाहिए। एक शिक्षक के लिए विषयों के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

1) **शैक्षिक समस्याओं के समाधान की योग्यता**–विषयों के ज्ञान के माध्यम से ही एक शिक्षक शैक्षिक समस्याओं का समाधान कर सकता है। अनेक अवसरों पर यह देखा जाता है कि किसी प्रकरण को स्पष्ट करने में उसी संकाय के अन्य विषयों की सहायता की आवश्यकता होती है या किसी अन्य संकाय के विषयों की सहायता की आवश्यकता होती है। इस स्थिति में अन्तः विषयों की प्रक्रिया का उपयोग करके शिक्षक उस प्रकरण को सरल एवं स्वाभाविक रूप में छात्रों को समझा देता है।

2) **शिक्षण कला में प्रभावशीलता**–आधुनिक युग में ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है। ऐसे में जब एक शिक्षक द्वारा शिक्षण कार्य किया जाता है तो छात्र द्वारा उससे वह प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं जो कि अन्य विषय से सम्बन्धित हो। इस स्थिति में यदि शिक्षक ने अन्य विषयों के विषय में ज्ञानार्जन किया है तभी वह छात्र के प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा तथा अपनी शिक्षण कला को प्रभावी बना सकेगा।

3) **प्रभावी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का विकास**–विषयों के ज्ञान के आधार पर ही प्रभावी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का जन्म होता है। विभिन्न विषयों में शिक्षक द्वारा उन शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाता है जो कि क्रमबद्ध एवं सुसंगठित रूप में स्तरानुकूल होती है तथा अधिगम गतिविधियों के निर्धारण में सहायक होती है जिससे छात्रों का अधिगम स्तर उच्च तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावी रूप में सम्पन्न होती है।

4) **स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास**–विषयों के ज्ञान का प्रमुख उद्देश्य शिक्षकों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास करना होता है। एक शिक्षक से जब कोई छात्र प्रश्न करता है तो वह यह नहीं जानता है कि उसके शिक्षक का विषय क्या है? वह मात्र अपनी जिज्ञासा शान्त करना चाहता है। प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर यह तथ्य व्यापक रूप से देखा जा सकता है। इस स्थिति में एक शिक्षक तभी सफल हो सकता है जब वह विभिन्न विषयों का अध्ययन करता हो।

5) **सर्वोत्तम दायित्व निर्वहन की योग्यता का विकास**–विषयों के ज्ञान के आधार पर शिक्षक द्वारा अपने

Scanned by CamScanner

दायित्व का ठीक से निर्वहन किया जा सकता है। अपने ज्ञान के आधार पर ही एक शिक्षक विभिन्न विषयों के मध्य सह–सम्बन्ध स्थापित करता है तथा किसी भी प्रकरण को स्पष्ट करता है। **जैसे**– सामाजिक अध्ययन का शिक्षक इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र एवं समाजशास्त्र के मध्य सम्बन्ध स्थापित करते हुए शिक्षण अधिगम को प्रभावी बनाता है।

6) **ज्ञान के प्रति व्यापक दृष्टिकोण का विकास**–विषयों के ज्ञान के माध्यम से ही शिक्षक का ज्ञान के प्रति व्यापक दृष्टिकोण विकसित होता है। उसको विविध प्रकार के प्रकरणों को स्पष्ट करने तथा सामाजिक एवं शैक्षिक समस्याओं के समाधान में विविध विषयों एवं संकायों का सहारा लेना पड़ता है जिससे शिक्षक का ज्ञान के प्रति व्यापक दृष्टिकोण विकसित होता है। इसके आधार पर विज्ञान संकाय से सम्बन्धित शिक्षक कला संकाय तथा कला संकाय का शिक्षक विज्ञान संकाय के विषयों के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त करना चाहता है।

7) **सामाजिक समस्याओं के समाधान की योग्यता**–विद्यालय में सामान्यतः सामाजिक समस्याएँ कम ही आती हैं परन्तु जब आती हैं तो वे काफी विकट स्थिति उत्पन्न कर देती हैं। ऐसे में शिक्षक को विषयों का सहारा लेना पड़ता है। विविध संकायों एवं उनके विषयों के समेकित ज्ञान से समस्या का समाधान सम्भव हो जाता है। **जैसे**– जातिवाद, छुआछूत, बाल–विवाह आदि की समस्या तथा उसका समाधान।

8) **सन्तुलित ज्ञान का अर्जन एवं शिक्षण**–विषयों के आधार पर ही सन्तुलित ज्ञान का अर्जन शिक्षक द्वारा किया जाता है। वह किसी भी शैक्षिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या के समाधान के लिए उसके विविध पक्षों का अध्ययन करता है। इसके उपरान्त वह समस्या का समाधान करता है। इस प्रकार वह ज्ञान का सन्तुलित रूप प्राप्त करता है तथा शिक्षण कार्य भी सन्तुलित रूप में करता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुशासनिक ज्ञान की आवश्यकता एक शिक्षक के लिए अनिवार्य रूप से होती है। इस प्रकार विषयों के ज्ञान द्वारा ही एक शिक्षक, सर्वोत्तम शिक्षक बनता है।

शिक्षार्थी के लिए शैक्षिक विषय का महत्व (Importance of Academic Disciplines for Student)

विषयों के ज्ञान के माध्यम से एक शिक्षार्थी को सरल एवं स्वाभाविक रूप से अधिगम प्राप्त होता है। यह अधिगम पूर्णतः स्थायी होता है क्योंकि इसमें शिक्षक द्वारा छात्रों की प्रत्येक जिज्ञासा को शान्त किया जाता है। अतः शिक्षार्थी के लिए विषयों के ज्ञान के महत्व को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है–

1) **सरल एवं स्वाभाविक अधिगम**–विषयों के ज्ञान के अन्तर्गत अधिगम गतिविधियों में क्रमबद्धता का समावेश होता है। **जैसे**– प्राथमिक स्तर पर खेल के माध्यम से, उच्च प्राथमिक स्तर पर परियोजना एवं प्रयोग विधि से तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर छात्रों को व्याख्यान विधि से अधिगम कराया जाता है। इससे सरल एवं स्वाभाविक अधिगम होता है।

2) **उपयोगी ज्ञान का अर्जन**–विषयों के ज्ञान के माध्यम से छात्रों को उपयोगी ज्ञान की जानकारी प्राप्त होती है क्योंकि विषयों के ज्ञान का प्रमुख आधार उपयोगिता में वृद्धि करना होता है। अतः सभी संकायों के मध्य एक विशेष सम्बन्ध होता है। **जैसे**– प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान एवं भाषा शास्त्र तीनों के मध्य एक ही सम्बन्ध तथा उद्देश्य है और वह है छात्रों को उपयोगी ज्ञान प्रदान करना तथा उनका सर्वांगीण विकास करना।

3) **अधिगम का स्थानान्तरण**–छात्रों को यह ज्ञान होता है कि प्रत्येक विषय का सम्बन्ध अपने संकाय के अन्य विषयों से घनिष्ठ रूप से होता है तथा अनेक अवसरों पर इसका सम्बन्ध अन्य संकायों के विषयों से भी होता है इसलिए वह प्राप्त अधिगम को दूसरे विषयों में भी प्रयोग करते हैं। **जैसे**– गणित के ज्ञान का भौतिक विज्ञान के संख्यात्मक प्रश्नों को हल करने में उपयोग तथा विज्ञान के ज्ञान का समाज में प्रयोग। इससे एक ओर अधिगम में स्थायित्व आता है तो दूसरी ओर अधिगम के स्थानान्तरण की योग्यता छात्रों में विकसित होती है।

4) **विषयों के अध्ययन में सरलता**–छात्रों के समक्ष जब एक अनुशासनिक व्यवस्था के आधार पर विषय प्रस्तुत किए जाते हैं तो उनको पढ़ने में सरलता का अनुभव होता है। **जैसे**– सामाजिक विज्ञान के विषयों का अध्ययन करने में विषयों के ज्ञान से सम्बन्धित विभिन्न गतिविधियों एवं तथ्यों का समावेश होता है जिसमें एक विज्ञान दूसरे विज्ञान से सह–सम्बन्ध रखता है।

5) **सामाजिक समस्याओं का समाधान**–छात्र समाज में रहकर अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं का सामना करता है। विषयों के ज्ञान के आधार पर वह सामाजिक समस्याओं का समाधान कर सकता है। **जैसे**– जाति–पाति, ऊँच–नीच, छुआ–छूत आदि ऐसी ही प्रवृत्तियाँ हैं जिसका छात्रों को भी सामना करना पड़ता है परन्तु अपने ज्ञान के द्वारा वह यह सिद्ध कर सकता है कि ये मात्र सामाजिक बुराइयाँ हैं और कुछ नहीं।

6) **व्यापक अधिगम**–विषयों के ज्ञान के माध्यम से छात्रों के लिए व्यापक अधिगम की व्यवस्था की जाती है। विषयों के ज्ञान के आधार पर विविध विषयों के पाठ्यक्रम एवं उनसे सम्बन्धित गतिविधियों में अन्तः अनुशासनिक प्रवृत्ति पायी जाती है जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक गतिविधि किसी दूसरी गतिविधि से सम्बन्धित होती है तथा उनके मध्य एक सम्बन्ध पाया जाता है। इस प्रकार छात्रों को व्यापक स्तर पर अधिगम प्राप्त होता है।

7) **समन्वित अधिगम**–विषयों के अन्तर्गत प्रत्येक विषय का सम्बन्ध दूसरे विषय से होता है तथा एक संकाय का सम्बन्ध दूसरे संकाय से होता है। जब किसी समस्या का समाधान खोजा जाता है या किसी नवीन सिद्धान्त, नियम या ज्ञान का सृजन किया जाता है तो इन सभी विषयों एवं संकायों का समन्वित अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन को समन्वित अध्ययन कहते हैं। विषयों की सर्वोत्तम उपयोगी विशेषता यही मानी जाती है।

Scanned by CamScanner

8) **विषयों के चुनाव में उपयोगिता**–विषयों के माध्यम से छात्रों को यह ज्ञात होता है कि किस संकाय में उसको कौन से विषय पढ़ने हैं। इस आधार पर वह अपने रुचिपूर्ण विषयों का चुनाव करते हैं। उसी ज्ञान के आधार पर ही छात्रों के समक्ष समानता एवं उपयोगिता के आधार पर विषयों का समूह प्रस्तुत किया जाता है जिसे विज्ञान संकाय, कला संकाय एवं वाणिज्य संकाय आदि के नामों से जाना जाता है। इनसे छात्रों को उचित एवं उपयोगी विषय चुनने में सहायता प्राप्त होती है तथा छात्रों का शैक्षिक विकास होता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि विषयों का प्रमुख उद्देश्य छात्रों के समक्ष ऐंसी अधिगम परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है जिनसे उनका अधिगम स्तर उच्च हो तथा छात्रों के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त हो।

पाठ्यचर्या के लिए शैक्षिक विषय का महत्व (Importance of Academic Disciplines for Curriculum)

पाठ्यचर्या को शिक्षा व्यवस्था का तृतीय स्तम्भ माना जाता है। विषयों के माध्यम से पाठ्यचर्या के स्वरूप का सर्वोत्तम रूप में विकास किया जा सकता है। पाठ्यचर्या के अन्तर्गत विषयवस्तु, प्रकरण एवं गतिविधियों के मध्य विषयों की स्थिति देखी जाती है। इन गतिविधियों में सह–सम्बन्ध होने के कारण शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के साथ ही छात्रों का सर्वांगीण विकास होता है। अतः पाठ्यचर्या के सन्दर्भ में विषयों के महत्व को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है–

1) **उपयोगी पाठ्यचर्या का विकास**–विषयों के माध्यम से उपयोगी पाठ्यचर्या का विकास किया जाता है। विषयों के आधार पर पाठ्यचर्या में समसामयिक समस्याओं का समाधान करने वाली गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है तथा जागरूकता उत्पन्न करने वाले प्रकरणों को भी सम्मिलित किया जाता है। इसके साथ ही पाठ्यचर्या में सामाजिक अपेक्षाओं का भी ध्यान रखा जाता है क्योंकि उपयोगी तथ्य एक–दूसरे से सहसम्बन्ध रखते हैं।

2) **क्रमबद्ध पाठ्यचर्या का विकास**–क्रमबद्ध पाठ्यचर्या का श्रेय विषयों को ही जाता है। विषयों के आधार पर ही पाठ्यचर्या में तथ्य को किस प्रकार एवं किस स्थान पर रखना है, यह निर्धारित होता है। **जैसे**– लोकतन्त्र के सन्दर्भ में किसी तथ्य को स्पष्ट करने से पूर्व लोकतन्त्र का अर्थ, अवधारणा का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके उपरान्त ही अन्य तथ्य प्रस्तुत किए जाने चाहिए।

3) **विषयवस्तु का समन्वयन**–विषयों के आधार पर विषयवस्तु में उचित समन्वयन स्थापित किया जाता है। **जैसे**– भौतिक एवं रासायनिक दोनों परिवर्तन रसायन विज्ञान के विषय हैं तो उनको रसायन विज्ञान के पाठ्यचर्या में सम्मिलित किया जाएगा तथा रसायन विज्ञान को विज्ञान संकाय में सम्मिलित किया जाएगा। विज्ञान संकाय का प्रमुख उद्देश्य समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना है तथा इन प्रकरणों की व्याख्या सामाजिक सन्दर्भ में भी की जाती हैं।

4) **जीवन से सम्बन्धित पाठ्यचर्या का विकास**–विषयों के आधार पर पाठ्यचर्या में उन तथ्यों एवं घटनाओं का समावेश किया जाता है जो कि सामान्य रूप से छात्रों के जीवन से सम्बन्धित होती हैं। प्रत्येक छात्र का उद्देश्य जीवन की समस्याओं का समाधान करना होता है। उस कार्य के लिए वह अध्ययन करता है। अतः प्रत्येक पाठ्यचर्या का निर्माण जीवन की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता के सन्दर्भ में किया जाता है।

5) **सामान्य से विशिष्ट की ओर पाठ्यचर्या का विकास**–सामान्य से विशिष्ट की ओर पाठ्यचर्या का विकास विषयों का ही परिणाम है। इसमें प्रत्येक सामान्य तथ्य को पहले प्रस्तुत किया जाता है इससे सामान्य तथ्यों के विषय में छात्रों की रुचि जागृत होगी क्योंकि छात्र इनके बारे में जानता है। इसके उपरान्त विशिष्ट तथ्यों को पाठ्यक्रम में स्थान प्रदान किया जाता है; **जैसे**– गणित के पाठ्यक्रम में पुनरावृत्ति के माध्यम से सामान्य गुणा, भाग, जोड़ एवं घटाव की क्रियाओं के प्रस्तुतीकरण के बाद अन्य नवीन तथ्यों को प्रस्तुत किया जाता है।

6) **सिद्धान्त एवं व्यवहार की समन्वित पाठ्यचर्या**–विषयों के माध्यम से सिद्धान्त एवं व्यवहार की समन्वित पाठ्यचर्या का विकास सम्भव होता है। पाठ्यचर्या में समस्त प्रकरणों एवं तथ्यों का सैद्धान्तिक स्वरूप प्रस्तुत करने के बाद उनकी व्यावहारिक उपयोगिता एवं गतिविधियों का निश्चय किया जाता है। पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ व्यावहारिक गतिविधियों का स्वरूप मानी जाती हैं।

7) **स्तरानुकूल पाठ्यचर्या का विकास**–विषयों के आधार पर ही प्रत्येक स्तर के छात्रों के लिए सर्वोत्तम पाठ्यचर्या तैयार की जाती है। प्राथमिक स्तर पर सामान्य पाठ्यचर्या, प्रतिभाशाली छात्रों के लिए पाठ्यचर्या एवं मन्दबुद्धि छात्रों के लिए पाठ्यचर्या तैयार करने में विशेष ध्यान रखा जाता है। इस प्रक्रिया में पाठ्यचर्या का कठिन स्तर निर्धारित करने में विषयवस्तु के स्वरूप को भी ध्यान में रखा जाता है। पाठ्यचर्या का उद्देश्य समान होता है परन्तु उसके स्वरूप में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाता है।

8) **शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पाठ्यचर्या का विकास**– विषयों के आधार पर ही ऐसी पाठ्यचर्या निर्मित की जाती है जो कि शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति करने में सहायक सिद्ध हो, **जैसे**– सामाजिक अध्ययन के विषय का उद्देश्य सामाजिक गतिविधियों का छात्रों को ज्ञान कराना है, तथा सामाजिक समस्याओं का समाधान करने की योग्यता प्रदान करना है। इस आधार पर सामाजिक अध्ययन विषय के अन्तर्गत उन सभी विषयों को पाठ्यक्रम का अंग निर्धारित किया जाता है जो इन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होते हैं। इस प्रकार विषयों द्वारा पाठ्यचर्या के सर्वोत्तम स्वरूप का निर्धारण करके शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यचर्या तीनों के लिए विषयों का ज्ञान आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। विषयों का प्रमुख उद्देश्य शिक्षा व्यवस्था को सर्वोत्तम बनाना है जिससे कि राष्ट्र, समाज एवं प्रत्येक नागरिक का सर्वांगीण विकास हो सके तभी सभी अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेंगे।

Scanned by CamScanner

शिक्षकों का विषय वस्तु ज्ञान एवं अध्ययन विषय (TEACHERS SUBJECT MATTER KNOWLEDGE AND DISCIPLINARITY)

प्रश्न 3– शिक्षकों के विषय वस्तु ज्ञान सम्बन्धी अवधारणा स्पष्ट कीजिए। शिक्षक ज्ञान के प्रारूपों की सविस्तार चर्चा कीजिए।

Explain the concepts related to the Content Knowledge of the teachers. Discuss the Model of teacher knowledge in detail.

या

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
Write short notes on the following:
1) अन्तर्विषय ज्ञान (Content Knowledge)
2) अन्तर्विषय ज्ञान एवं शैक्षणिक अन्तर्विषय ज्ञान में अन्तर (Difference between CK and PCK)

उत्तर– सामान्य भाषा में कहा जाए तो ज्ञान को किसी भी तथ्य या किसी भी विषय के प्रति समझ या जागरूकता के रूप में समझ सकते हैं। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में सूचना तथा ज्ञान दो महत्वपूर्ण अवधारणा है। ज्ञान को हम किसी विषय के सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक समझ के रूप में परिभाषित कर सकते है। औपचारिक शिक्षा में अनुशासनात्मक एवं विषय वस्तु के ज्ञान की चर्चा करेंगे। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुशासन एवं अनुशासनात्मक ज्ञान से तात्पर्य अकादमिक विषयों से है। इस प्रकार अनुशासन से तात्पर्य ज्ञान के उस क्षेत्र या विषयों के समूह से है जिसे विशेष रूप से औपचारिक शैक्षणिक संस्थाओं में शिक्षण अथवा अधिगम के लिए प्रयोग में लाते है। विषयों के समूह को सामान्यतः अकादमिक अनुशासन के रूप में जाना जाता है। इसी अवधारणा को अलग–अलग स्थानों, पुस्तकों अथवा लेखक द्वारा विषय के अध्ययन क्षेत्र, विषयगत अध्ययन या अध्ययन विषय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

शिक्षक ज्ञान (Teachers Knowledge)
शिक्षण प्रक्रिया एक विस्तृत एवं सामन्जस्यपूर्ण प्रक्रिया है। इसे प्रभावी एवं गुणात्मक बनाने हेतु कौशल, प्रक्रिया, संरचना एवं शिक्षण अधिगम के विभिन्न प्रकार एवं प्रयोग का ज्ञान होना आवश्यक है। इन विभिन्न प्रकार के ज्ञान के साथ–साथ शिक्षक को विषय वस्तु का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। शिक्षण में इन सभी आवश्यक ज्ञान के सामन्जस्य से ही गुणात्मक शिक्षण की प्राप्ति हो सकती है।

शिक्षकों के लिए आवश्यक ज्ञान के क्षेत्र को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध करने की अवधारणा सर्वप्रथम 1986 में **शैलमन (Shulman 1986)** द्वारा प्रस्तुत की गयी। इन्होंने अपने अनुसन्धान द्वारा सिद्ध किया कि शिक्षकों को न केवल अनुदेशनात्मक ज्ञान अपितु व्यावसायिक ज्ञान, शिक्षाशास्त्र का ज्ञान, और विषय वस्तु के ज्ञान का संयोजित एवं संगठित नियोजन का ज्ञान भी आवश्यक है।

शिक्षक के ज्ञान को ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों अथवा अवयवों में विभक्त करके नहीं देखना है। शिक्षक के ज्ञान का अर्थ ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों अथवा अवयवों के संयोजित प्रारूप से है।

विषय वस्तु का ज्ञान (Content Knowledge)
शिक्षक के ज्ञान का अध्ययन करने के लिए समय–समय पर शिक्षाविदों ने प्रयास किए है। हम इस अध्याय में उनमें से कुछ प्रमुख शिक्षाविदों के प्रारूप अर्थवा ज्ञान के क्षेत्र के वर्गीकरण के बारे में चर्चा करेंगे।

हम सभी इस तथ्य से अवगत हैं कि शिक्षाशास्त्र शिक्षण की एक कला है अथवा एक व्यवसायिक दृष्टिकोण। व्यवसायिक दृष्टिकोण होने के कारण इसमें कुछ तत्व शिक्षक के व्यक्तिगत क्षमताओं एवं योग्यता, कौशल एवं कार्यकुशलता ज्ञान का स्तर एवं क्षेत्र से भी सम्बन्धित है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब हम शिक्षक के ज्ञान अथवा शिक्षक के विषय सम्बन्धी ज्ञान के बारे में बात करते हैं तब हम विशेष रूप से शिक्षक के व्यवसायिक पक्ष के बारे में विचार करते हैं इस प्रकार शिक्षक अथवा शिक्षण का व्यवसायिक पक्ष शिक्षाशास्त्र के उन पहलुओं से सम्बन्धित है जिसमें शिक्षक को व्यक्तिगत सामर्थ्य, विषय की समझ, योग्यताओं एवं उसकी शैक्षिक उपलब्धियों पर आधारित है। शिक्षक के ज्ञान का सम्बन्ध अधिगमकर्ता को उपलब्धि से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित नहीं है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि शिक्षक का ज्ञान अधिगमकर्ता के साथ सम्प्रेषण के पूर्व का पक्ष है। शिक्षक का ज्ञान ज्ञानात्मक पक्ष का सूचक है। इस प्रकार शिक्षण, शिक्षाशास्त्र एवं शिक्षक के ज्ञान के मध्य सम्बन्ध को हम निम्न अवधारणा चित्र से समझ सकते हैं–

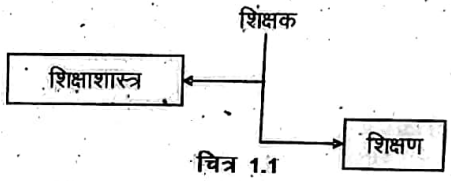

चित्र 1.1

अवधारणा चित्र से स्पष्ट है कि शिक्षक के ज्ञान के क्षेत्र में विषय वस्तु का ज्ञान, शैक्षणिक अन्तर्विषय का ज्ञान ही मिलकर व्यवसायिक कुशलता प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करते है। शिक्षक को व्यवसायिक रूप से दक्ष एवं प्रशिक्षित होने के लिए यह आवश्यक है कि वह ज्ञानात्मक पक्ष को भावात्मक पक्ष के साथ सम्बन्धित करके अभिवृत्ति में वृद्धि करें। शिक्षक यदि ज्ञानात्मक रूप से बहुत सुदृढ़ है, बहुत पात्र है किन्तु यदि उसमें अधिगमकर्ता को समझने तथा विषय वस्तु को सम्प्रेषित करने के लिये यथायोग्य विचार नहीं है, नवीन उदाहरण नहीं है, सकारात्मक इच्छाशक्ति नहीं है तो शिक्षक व्यवसायिक रूप से कभी सफल नहीं हो पाएगा। शिक्षक के ज्ञान के क्षेत्र एवं प्रारूप को समझाने के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मत दिए हैं।

हम इस अध्याय में प्रमुख प्रारूपों की चर्चा करेंगे।
1) शिक्षक के ज्ञान का प्रारूप या (इल्बज (Elbaz) 1983 लीनहार्ड एवं स्मिथ (Leinhardt and Smith-1985) प्रारूप
2) शैलमन प्रारूप (1986)
3) ग्रासमन प्रारूप (1990)
4) टरनर–बिसेट (Turner-Birset) (1997)
5) नूर शाह (Noorshah) प्रारूप (2006)

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि शिक्षक के ज्ञान की अवधारणा अधिक पुरानी नहीं है। इस अवधारणा में निरन्तर शोध एवं कार्य जारी है। हम इन प्रमुख प्रारूपों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा

Scanned by CamScanner

इसे समझने का प्रयास करेंगे। उपरोक्त वर्णित सभी विद्वानों ने शिक्षक के ज्ञान के क्षेत्र को वर्गीकृत करने का प्रयत्न किया है। सभी प्रारूपों में कुछ सामान्य क्षेत्र है और कुछ विशिष्ट क्षेत्र। सामान्य क्षेत्रों का परिचय हम सभी प्रारूपों के लिए एकसाथ प्राप्त करेंगे और विशेष क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए हम प्रारूप के वर्गीकरण के साथ ही स्पष्टीकरण प्रस्तुत करेंगे।

शिक्षक ज्ञान का प्रारूप (Model of Teacher Knowledge)

इल्बज (Elbaz-1986) द्वारा 1986 में शिक्षक के ज्ञान का प्रारूप प्रस्तुत किया गया था। इस प्रारूप में इल्बज द्वारा शिक्षक ज्ञान को 5 घटकों में वर्गीकृत किया गया। लीनहार्ड एवं स्मिथ, 1985 ने शिक्षक ज्ञान को 2 घटकों में वर्गीकृत किया।

1) इल्बज का शिक्षक ज्ञान प्रारूप (Elbaz-Model of Teacher Knowledge) का वर्गीकरण
   i) स्वयं की पहचान,
   ii) शिक्षण की विधाओं का ज्ञान,
   iii) विषय–वस्तु का ज्ञान,
   iv) पाठ्यचर्या के विकास का ज्ञान एवं
   v) अनुदेशन का ज्ञान।

2) लीनहार्ड एवं स्मिथ, 1985 (Leinhardt and Smith, 1985) का वर्गीकरण
   i) विषय–वस्तु का ज्ञान एवं
   ii) पाठ की संरचना का ज्ञान

शैलमन प्रारूप,1986

शिक्षण शास्त्र में ज्ञान रचनावाद (Constructivism) के आगमन के साथ, शिक्षक तथा शिक्षक ज्ञान के बारे में नवीन अवधारणा रूप लेने लगी थी। लगभग 25 वर्ष पूर्व, 1980 में जो शैलमन एवं उनके साथियों ने शिक्षक ज्ञान को नयी अवधारणा प्रदान कर तथा शिक्षक ज्ञान को व्यवस्थित वर्गीकृत किया। शिक्षक के विषय वस्तु के ज्ञान को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर, नई दिशा प्रदान करने का प्रयास किया गया।

एक सफल और व्यवसायिक शिक्षक के लिए आवश्यक है कि उसे, विद्यार्थियों की आवश्यकता, शिक्षण प्रविधि तथा तकनीक के साथ–साथ विषय वस्तु का भी पर्याप्त ज्ञान हो।

शैलमन के अनुसार "शिक्षक के विषय–वस्तु का ज्ञान केवल व्यवसायिक ज्ञान न होकर–एक प्रकार से विषय की तकनीकी एवं अद्वितीय समझ के माध्यम से परखा जाना चाहिए।"

शिक्षक के ज्ञान का व्यापक वर्गीकरण

शैलमन की इस अवधारणा को अधिक सरलता से समझाने के लिए सारणी में शिक्षक के ज्ञान का व्यवस्थित वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है–

शैलमन प्रारूप

क्रमांक	ज्ञान का प्रकार/क्षेत्र	ज्ञान के अन्तर्गत आने वाले व्यापक बिन्दु
1)	शिक्षणशास्त्र का सामान्य ज्ञान	ज्ञान के इस प्रकार के अन्तर्गत विषय वस्तु के हस्तांतरण के लिए प्रयोग में आने वाले मुख्य सिद्धान्त कक्षा प्रबन्धन के लिए व्यूह रचनाएँ एवं प्रविधियों को सम्मिलित किया गया है।
2)	अधिगमकर्ता का ज्ञान एवं अभिलाक्षणिक	इसके अन्तर्गत शिक्षकों से शैक्षिक मनोविज्ञान, अधिगमकर्ता तथा अधिगम एवं उसके अभिलाक्षणिक के सम्बन्ध में ज्ञान की अपेक्षा रखी गयी है।
3)	शैक्षिक परिप्रेक्ष्य का ज्ञान	समूह एवं कक्षा में कार्य करने हेतु स्थानीय ज्ञान, समुदाय, जिले तथा विद्यार्थियों के सन्दर्भ में ज्ञान।
4)	शैक्षिक उद्देश्यों, लक्ष्यों एवं मूल्यों का ज्ञान	इस क्षेत्र में शैक्षिक उद्देश्यों के दार्शनिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को सम्मिलित किया है।
5)	तत्व या अवयव का ज्ञान	इस वर्ग में विषय से सम्बन्धित ज्ञान को शीर्षक, उपशीर्षक तथा तत्व के सन्दर्भ में पारंगत होने से है।
6)	पाठ्यचर्या का ज्ञान	औपचारिक शिक्षा के सन्दर्भ में इस वर्ग में पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकें सम्मिलित है।
7)	विषय के तत्वों का शैक्षणिक ज्ञान	इस वर्ग में विषय के अनुसार शिक्षक की व्यावसायिक शिक्षण कौशल को सम्मिलित किया है।

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि एक शिक्षक को व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत रूप से पारंगत होने के लिए उपरोक्त सात वर्गों में सम्मिलित क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। शैलमन के शिक्षक के ज्ञान के सन्दर्भ में इन व्यापक 7 क्षेत्रों में से कुछ क्षेत्र बहुत सामान्य हैं एवं हम सभी इनका पूर्व में ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं किन्तु विषय का **अन्तर्विषय ज्ञान या तत्व ज्ञान (Content Knowledge)** और **विषय के तत्वों का शैक्षणिक ज्ञान या शैक्षणिक अन्तर्विषय ज्ञान (Pedagogical content Knowledge of Subject)** सम्बन्धी अवधारणा नवीन है। शैलमन द्वारा इन दोनों अवधारणाओं का विस्तार पूर्वक विवरण प्रस्तुत किया गया है। शिक्षक की दक्षता एवं व्यवसायिक दृष्टिकोण में वृद्धि के लिए इन दोनों अवधारणाओं को गहराई से समझना आवश्यक है। आगे वर्णित अनुच्छेदों में हम उपरोक्त 7 क्षेत्रों में से महत्वपूर्ण दो क्षेत्रों का वर्णन विस्तारपूर्वक करेंगे।

अन्तर्विषय ज्ञान (Content Knowledge)

सामान्यतः देखा जाए तो तत्व ज्ञान की अवधारणा से अभिप्राय ज्ञान और सूचना की सामग्री से है जो विषय के सन्दर्भ में एक शिक्षक प्रदान करता है और विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती है कि वह उसे प्राप्त करें। इस प्रकार तत्व ज्ञान से सीधा तात्पर्य विषय से सम्बन्धित तथ्यों, अवधारणाओं, प्रत्ययों एवं सिद्धान्तों के ज्ञान से है, जो एक कक्षा विशेष अथवा पाठ्यक्रम विशेष के लिए आवश्यक है।

शैलमन (1986) एवं उनके सहयोगी द्वारा शिक्षक के ज्ञान क्षेत्र में महत्वपूर्ण अवधारणा "अन्तर्विषय ज्ञान" या "तत्व ज्ञान" [Content Knowledge] के रूप में प्रस्तुत की गई अन्तर्विषय का ज्ञान शिक्षण की अद्वितीय विधा है, जो विषय के ज्ञान एवं विशिष्ट व्यावसायिक ज्ञान के मध्य सेतु का कार्य करता है। दो दशकों के पश्चात् वर्तमान में भी ज्ञान और अभ्यास के मध्य का यह सेतु उतने ही प्रभावशाली घटक के रूप में स्थापित है। शिक्षण में मात्र विषय सम्बन्धी सूचनाओं का आदान–प्रदान नहीं होता है अपितु इसमें विषय में निहित विषय वस्तु, अन्तर्वस्तु अथवा तत्वों का प्रभावी सम्प्रेषण भी आवश्यक है। एक शिक्षक जब अपने

Scanned by CamScanner

विषय को प्रभावशाली एवं सफलता पूर्वक, अधिगमकर्ता तक पहुँचाना चाहता है तो उसे इस कार्य के लिए मात्र विषय का सामान्य ज्ञान ही नहीं अपितु अन्तर्विषय का ज्ञान भी आवश्यक है। अन्तर्विषय या तत्व ज्ञान (Content Knowledge) विषय के सतही ज्ञान से अधिक व्यापक अवधारणा है और यह विशेष रूप से शिक्षक की व्यवसायिक कुशलता को मापने में सहायक है।

शैलमन की इस अवधारणा से पूर्व यह समझा जाता था कि शिक्षक को विविधता एवं नवाचार के प्रत्येक क्षेत्र में उदाहरण के लिए अधिगमकर्ता का ज्ञान, प्रक्रिया एवं संरचना शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया, प्रबन्धन का ज्ञान ही प्रशिक्षण के लिए आवश्यक है। एक शिक्षक के रूप में उसकी व्यक्तिगत क्षमताओं एवं उसके क्रियान्वयन के क्षेत्र में वर्तमान समय तक बहुत अधिक न तो शोध किए गए न ही विशेष बल दिया गया। NCTE-2009 के पश्चात् यह तीव्रता से समझा जाने लगा कि यदि शिक्षक–प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षक शिक्षकों को शिक्षक की ज्ञान की अवधारणा एवं उसके प्रकार से परिचित नहीं कराया गया तो शिक्षक एक व्यवसायिक रूप में कभी सफल नहीं हो पाएगा। अतः इसी तारतम्य में अन्तर्विषय के ज्ञान को अधिक महत्व दिया जाने लगा।

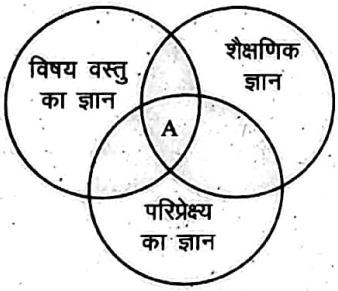

एकीकृत प्रारूप

चित्र 1.3

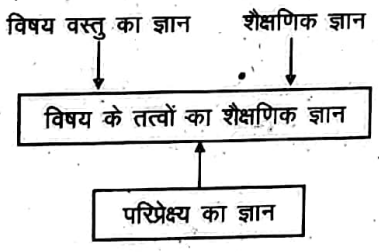

परिवर्तनकारी प्रारूप

चित्र 1.4

चित्र से स्पष्ट है कि अन्तर्विषय ज्ञान से अभिप्राय विषय विशेष के सन्दर्भ में शिक्षक के सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ उस प्रत्यय तथा अवधारणा को समझने अथवा अधिगमकर्ता तक सम्प्रेषित करने के लिए, व्यापक समझ से है।

उदाहरण के लिए– यदि विज्ञान शिक्षक के अन्तर्विषय के ज्ञान की बात करें तो एक विज्ञान शिक्षक के रूप में उसका उद्देश्य, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तार्किकता जिज्ञासा प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है किन्तु यदि उसे विज्ञान विषय का एक प्रकरण 'ध्वनि' पढ़ाना है, उस स्थिति में शिक्षक की अन्तर्विषय ज्ञान का तात्पर्य यह होगा कि वह, अधिगमकर्ता के पूर्वज्ञान के साथ कितनी सफलतापूर्वक अपने अध्यापन हेतु प्रकरण तक सम्बन्धित कर पाए। इस प्रकार अन्तर्विषय ज्ञान के अन्तर्गत शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि विषय वस्तु को अधिगमकर्ता के सामान्य जीवन, पूर्वज्ञान, व्यक्तिगत उपलब्धियों के आधार पर सामंजस्य स्थापित करे। ज्ञान का यह क्षेत्र विषय के व्यापक ज्ञान से अलग हटकर शिक्षक के सामंजस्य और सफलतापूर्वक क्रियान्वयन पर निर्भर है। ज्ञान का यह क्षेत्र स्थिति, प्रशिक्षण अभिवृत्ति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

अन्तर्विषय ज्ञान का महत्व (Importance of Content Knowledge)

उपरोक्त अनुच्छेदों के आधार पर हम कह सकते हैं कि विषयवस्तु ज्ञान के क्षेत्र में वृद्धि के लिए अन्तर्विषय ज्ञान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अन्तर्विषय का ज्ञान ही शिक्षण व्यवसाय की नींव है। शिक्षण–प्रशिक्षण के दौरान इस विषय के महत्व को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझ सकेंगे–

1) **व्यवसायिक दक्षता में वृद्धि**–अर्न्तविषय के ज्ञान के द्वारा शिक्षक व्यवसायिक दक्षता प्राप्त कर सकता है। पूर्व में शिक्षण की दक्षता को बढ़ाने के लिए मात्र शिक्षण तकनीक पर ही ध्यान दिया जाता था। शैलमन के प्रारूप के पश्चात् यह धारणा परिवर्तित हो गई और यह समझा जाने लगा कि विषय की व्यापक समझ के साथ, अन्तर्विषय के ज्ञान के बिना, शिक्षण में दक्षता लाना संभव नहीं है। प्रविधियों एवं तकनीकों को हम तभी सफलतापूर्वक क्रियान्वित कर पाएंगे जब हममें विषय के प्रकरण के सिद्धान्त, प्रत्यय एवं तथ्य में सामन्जस्य की क्षमता होगी। यह क्षमता अन्तर्विषय के ज्ञान से ही सम्भव है।

2) **तकनीक में वृद्धि**–शॅलमन एवं ग्रासमन के अनुसार अन्तर्विषय का ज्ञान, शिक्षक की तकनीक में वृद्धि की कुन्जी है। इस ज्ञान के द्वारा शिक्षक अपने व्यापक एवं वृहत विषय ज्ञान को शिक्षण के लिए उपयोगी ज्ञान में परिवर्तित करता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप क्रमशः उसके शिक्षण तकनीक में वृद्धि होती रहती है।

3) **विषय वस्तु के संयोजन का ज्ञान**–अन्तर्विषय ज्ञान के द्वारा सर्वाधिक लाभ विषयवस्तु के संयोजन के लिए है। ज्ञान के इस क्षेत्र में शिक्षक विषय वस्तु के ज्ञान के अन्तर्गत उनके व्यवस्थित संयोजन का ज्ञान भी प्राप्त करता है। इस बिन्दु को हम निम्न चित्र के माध्यम से अधिक आसानी से समझ सकते हैं।

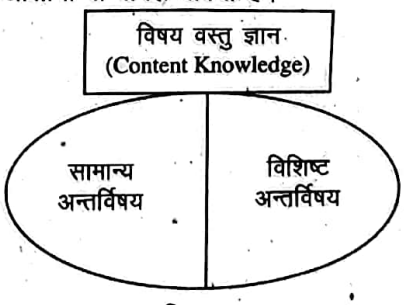

चित्र 1.5

उदाहरण के लिए–एक गणित शिक्षक के लिए यह बहुत सामान्य समझ है कि यदि अधिगमकर्ता को 305–162 कर दिया जाए तो सामान्यतः उत्तर 143 किस प्रकार आया उसकी विवेचना से सभी अवगत है। इस प्रकार गणित के शिक्षक का यह ज्ञान सामान्य अन्तर्विषय ज्ञान के अन्तर्गत आता है।

210
305
− 162
143

Scanned by CamScanner

इसी प्रकार उत्तर देना भी अधिगमकर्ता के लिए 305–162 = 143 लिए सामान्य बात है। यह ज्ञान भी शिक्षक के लिए सामान्य अर्न्तविषय का ज्ञान होगा। इस प्रकार यदि शिक्षक दोनों स्थितियों से भिन्न यदि कोई नवीन प्रयोग करते हैं और अधिगमकर्ता उसे ग्रहण करने की स्थिति में रहता है अथवा नहीं, इसकी पहचान आवश्यक है।

शिक्षण में इन सामान्य गल्तियों के अतिरिक्त उन पहलुओं और आयाम को पहचानने की आवश्यकता है जिसमें गणित शिक्षण सफल हो सके। इस प्रकार निम्न गणनाओं पर पुनः विचार कीजिए।

307	307	307
−168	−168	−168
1	139	2
60		30
200		107
130		139

गणित की ये तीनों गणनाएँ अपने–अपने स्वरूप में सही हैं किन्तु यह उन अधिगमकर्ता के लिए आसान नहीं है जिन्होंने सीधे–सामान्य प्रयोग द्वारा घटाना सीखा है। इस प्रकार गणित शिक्षक का कार्य घटाने की अवधारणा को समझाने के लिए मात्र यह कह कर समाप्त नहीं हो जाता हैं कि ऊपर की संख्या छोटी है तो काटकर अगले अंक से 1 उधार ले लो।

इस प्रकार शिक्षक को विशिष्ट अन्तर्विषय ज्ञान से तात्पर्य है कि शिक्षक को प्रक्रिया का तर्क संगत ज्ञान, शब्दावली का अर्थ एवं अवधारणाओं की व्याख्या करना भी आवश्यक है। एक गणित शिक्षक के रूप में गणना के उत्तर को सही या गलत करना ही उसका कार्य नहीं है अपितु उसके गणना के प्रतीक की व्याख्या, स्पष्टीकरण एवं महत्व को समझाना भी आवश्यक है और यही ज्ञान विशिष्ट अन्तर्विषय ज्ञान कहलाता है।

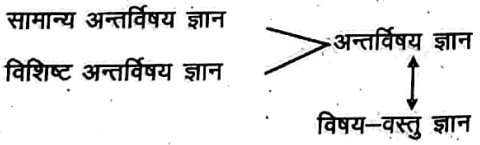

शैक्षणिक अन्तर्विषय ज्ञान [Pedagogical Content Knowledge (PCK)]

शैलमन के प्रारूप में अन्तर्विषय ज्ञान की अवधारणा के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण अवधारणा प्रस्तुत की गई। इस नवीन अवधारणा को शैलमन द्वारा "शैक्षणिक अन्तर्विषय ज्ञान" PCK का नाम दिया गया। वास्तव में PCK की अवधारणा ने दो दशकों से शिक्षक ज्ञान के क्षेत्र में क्रान्तिकारी पहल की है। PCK की अवधारणा से सामान्य अभिप्राय शिक्षक के लिए सभी सम्भव प्रयासों अथवा विभिन्न क्षेत्रों के समायोजन से है। इस प्रकार PCK में अन्तर्विषय ज्ञान तथा शिक्षाशास्त्र का समायोजन है।

एक शिक्षक अपने विषय को अन्तर्विषय ज्ञान के आधार पर शिक्षाशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग करते हुए किस प्रकार प्रभावपूर्ण प्रस्तुति कर सकता है। PCK में इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि किस प्रकार किसी प्रकरण या विषय वस्तु को या समस्या को संयोजित, व्यवस्थित या प्रस्तुत किया जाए। इस पूरी प्रक्रिया के लिए शिक्षक को अपने शिक्षाशास्त्र का ज्ञान, विषय–वस्तु के ज्ञान का उचित सम्मिश्रण करना होता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि "PCK एक अध्यापक की विषय समझ की विशेष श्रेणी है" इस अवधारणा को हम निम्न चित्र द्वारा अधिक आसानी से समझ सकते हैं।

चित्र 1.6–PCK की अवधारणा

इस प्रकार हम कह सकते है PCK से तात्पर्य शिक्षक की इन योग्यताओं से है–

1) विषय से सम्बन्धित केन्द्रीय समझ, कौशल एवं अभिवृत्ति।
2) विषयों के शीर्षक जिन्हें कठिन अवधारणाओं से निकाल रुचिकर बनाना है।
3) विषय के केन्द्रीय समझ के लिए उदाहरण का चयन एवं विकास करना।
4) शीर्षक के बारे में प्रभावशील प्रश्न कौशल।
5) अवधारणाओं के तारतम्य का ज्ञान।

अतः शैलमन के शब्दों में शिक्षण के लिए प्रयोग में आने वाला सबसे महत्वपूर्ण माध्यम जिसमें विचारों का सबसे अधिक प्रयोग में आने वाला माध्यम, दृष्टान्त, उदाहरण, व्याख्या एवं प्रदर्शन के साथ कौशल का व्यवस्थित समायोजन ही शैक्षणिक अर्न्तविषय ज्ञान कहलाता है।" PCK में शिक्षक को विषय की सरल अथवा कठिन अवधारणाओं का विभेदीकरण भी सम्मिलित है। अवधारणाओं एवं पूर्व अवधारणाओं के मध्य सेतु बनाने का कार्य PCK द्वारा होता है।

PCK के तत्व

PCK में मुख्य रूप में निम्न तत्व शामिल किए जाते हैं–

1) पाठ्यचर्या,
2) अधिगमकर्ता का ज्ञान एवं अधिगम प्रक्रिया,
3) शिक्षाशास्त्र का सामान्य ज्ञान।
4) अनुदेशात्मक ज्ञान।
5) परिप्रेक्ष्य का ज्ञान।
6) कक्षा प्रबन्धन।

उदाहरण–

PCK के प्रयोग का व्यवहार समझने के लिए हम विषयगत उदाहरणों की चर्चा करेंगे–हम अब तक अवगत हो चुके हैं कि अर्न्तविषय ज्ञान और शिक्षण ज्ञान का समायोजन ही प्रक्रिया PCK कहलाता है। इस प्रकार यदि हम विज्ञान के लिए उदाहरण लें, उस स्थिति में–

विज्ञान के भौतिक का ज्ञान
+
(ऊर्जा) अन्तर्विषय ज्ञान (शीर्षक का ज्ञान)
+
(क्रियाविधि) कक्षागत अभ्यास
+
(दैनिक जीवन से सम्बन्धित उदाहरण) रचनात्मक उदाहरण
(बाहरी जीवन के परिप्रेक्ष्य) रचनात्मक उदाहरण
+
(बाहरी जीवन के परिप्रेक्ष्य) = बोधगम्य व्याख्या / PCK

चित्र 1.7

Scanned by CamScanner

अन्तर्विषय ज्ञान (CK) एवं शैक्षणिक अन्तर्विषय ज्ञान (PCK) में अन्तर (Difference between Content Knowledge and Pedagogical Content Knowledge (PCK))]

हम पिछले अनुच्छेदों में CK एवं PCK के विषय में विस्तार में चर्चा कर चुके है किन्तु ये दोनों अवधारणा एक समय पर प्रयुक्त होती है तो दोनों में विभेद करने में समस्या उत्पन्न हो जाती है अतः हम CK और PCK के बीच स्पष्ट अन्तर का वर्णन् कर रहे हैं–

क्रमांक	अवधारणा	अन्तर्विषय ज्ञान (CK)	शैक्षणिक अन्तर्विषय ज्ञान (PCK)
1)	क्षेत्र	यह विषय–वस्तु की समझ के अन्तर्गत आता है। CK का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित है।	इसका क्षेत्र व्यापक है इसके अन्तर्गत CK, पाठ्यचर्या, अधिगमकर्ता का शिक्षणशास्त्र का ज्ञान भी सम्मिलित है।
2)	महत्व	शिक्षक की विषय–वस्तु के प्रति रचनात्मक समझ को बढ़ावा दिया जाता है।	इसमें शिक्षक, अधिगमकर्ता एवं तकनीक तीनों का प्रभावी समायोजन है जो शिक्षक की शैक्षिक दक्षता में वृद्धि करते हैं।
3)	अवयव	CK में शिक्षक तथा उसकी व्यक्तिगत समझ ही सम्मिलित है। इसमें अधिगमकर्ता का कोई स्थान नहीं है।	इसमें अधिगमकर्ता एवं अधिगम विधि भी सम्मिलित है।
4)	पक्ष	CK, शिक्षण के ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित है इसमें कौशल सम्मिलित नहीं है।	PCK, में ज्ञानात्मक मनोगत्यात्मक एवं भावात्मक तीनों पक्षों का समावेश है। कौशल इसका महत्वपूर्ण अंग है।
5)	सीमाएँ	इसमें विषय की अवधारणा तथ्य, सिद्धान्तों का समायोजन विद्वतापूर्ण किया जाता हैं। इसमें मुख्य रूप से शिक्षक के व्यक्तिगत ज्ञान के विकास को महत्व दिया जाता है। 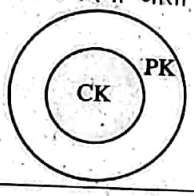	यह व्यवसायिक दक्षता के लिए उपयोगी है। 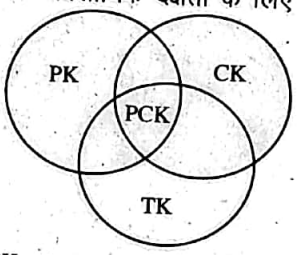 PK = Pedagogical Knowledge TK = Technical K

ग्रॉसमैन का प्रारूप,1990

शैलमन के उपरान्त 1990 में ग्रॉसमन ने अपना प्रारूप प्रस्तुत किया तथा उसमें विशेष नवीन अवधारणा को सम्मिलित न करते हुए सभी ज्ञान के क्षेत्र को संयोजित एवं सम्बन्धित किया।

निष्कर्ष (Conclusion)

शिक्षक की व्यवसायिक पक्ष को यदि समझे तो शिक्षक अधिगमकर्ता एवं शिक्षक के बीच विचारों के सम्प्रेषण के साथ अनेक पक्ष सम्मिलित है। शिक्षक ज्ञान के क्षेत्र में CK, PCK एवं SMK (Subject Matter Knowledge) की अवधारणा अधिक प्राचीन नहीं है। शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं में लगातार इस विषय पर विवाद बना रहता है कि कौशल विकास को PCK में सम्मिलित किया जाए अथवा नहीं। भारत में भी अभी इस क्षेत्र में अधिक अनुसंधान नहीं हुए हैं। अतः NCTE-2009 की भूमिका के साथ यह बात स्पष्ट हो गई है कि भारत में भी शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम में, शिक्षक की व्यवसायिक दक्षता में वृद्धि के लिए प्रतिबद्ध होना होगा। शिक्षण एक यान्त्रिक प्रक्रिया नहीं है जिसे शिक्षक मात्र निर्देशों पर आधारित बना लें। शिक्षण एक भावात्मक एवं रचनात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यवसायिक उत्कृष्टता एवं विशिष्टता को प्राप्त करने के लिए शिक्षक को उत्साह और उमंग के साथ नवाचार एवं रचनात्मक दृष्टिकोण का विकास करना होगा।

अध्ययन विषय के विकल्प (ALTERNATIVES TO DISCIPLINARITY)

प्रश्न 4– अध्ययन विषय के विकल्पों पर सविस्तार चर्चा कीजिए।

Discuss in detail the alternatives to disciplinarity.

उत्तर– हम जानते है कि अकादमिक अनुशासन विशेष रूप सें ज्ञान का व्यवस्थित संग्रह है किन्तु प्रश्न यह उठता है कि यह कैसे निर्धारित किया जाए कि अनुशासन कितने हो? किस अनुशासन के अन्तर्गत कितने विद्यालयी विषय सम्मिलित किए जाऐं? इन सभी प्रश्नों के निराकरण के लिए शिक्षाविदों ने समय–समय पर अपने मत प्रस्तुत किए हैं। सभी के मत उनके अनुसार विशिष्ट हैं। यदि हम इन मतों पर विचार करें तो इस निर्णय पर आते है कि सभी के विचारों का केन्द्रीय भाव समान है, विकल्प या वर्गीकरण भिन्न हो सकते हैं। इस अनुच्छेद में हम कुछ प्रमुख विचारकों के अकादमिक विकल्प अथवा वर्गीकरण पर चर्चा करेंगे।

1) अरस्तु का वर्गीकरण (Aristotle's Classification)

Scanned by CamScanner

2) संहिताकरण फ्रेमवर्क (Codification Framework)
3) प्रतिमान विकास के स्तर का फ्रेमवर्क (Level of Paradigm)
4) मतैक्य के स्तर का फ्रेमवर्क (Level of Consensus)
5) बिगलैन का प्रारूप (Biglan Model)

उपरोक्त सभी विकासों में विचारकों ने अनुशासन के वर्गीकरण की अलग–अलग विधा एवं तर्क को महत्व दिया है। हम यहाँ इन सभी फ्रेमवर्क का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत करेंगे–

अरस्तु का वर्गीकरण (Aristotle's Classification)

सर्वप्रथम **अरस्तु** ने ज्ञान के क्षेत्र में उनके उद्देश्य के आधार पर तीन वर्गो में विभाजित किया। प्रत्येक अकादमिक अनुशासन में विशेष प्रकार की विषय–वस्तु एवं क्षमता की आवश्यकता होती है। ये विकल्प निम्न प्रकार के हैं– सैद्धान्तिक, प्रायोगिक, उत्पादक।

1) **सैद्धान्तिक (Theoretical)**–अरस्तु ने इस वर्ग में ज्ञान के उस क्षेत्र अथवा विषय को विकल्प के रूप में रखा जिसमें ज्ञान का उद्देश्य जानना एवं समझना होता है। इस प्रकार इस वर्ग में गणित एवं प्रकृति विज्ञान को सम्मिलित किया है। गणित और विज्ञान, ज्ञान की वह शाखा है जिसमें अध्ययनकर्ता को, तार्किकता, अर्मूतता एवं सिद्धान्तों की व्यापक अनुसन्धान एवं विकास की आवश्यकता रहती है। यह अनुशासन, ज्ञान के एकाकी तर्क पर नहीं अपितु सामान्यीकरण सिद्धान्त पर आधारित है। इस प्रकार कहा जाता है कि भौतिकी, मात्र एक तथ्य पर नहीं अपितु तथ्यों के एकीकरण के सामान्यीकरण (Invariant associations) पर कार्य करता है।

   इस प्रकार अनुशासन के निर्धारण के विकल्प में अरस्तु ने, गणित एवं प्रकृति विज्ञान को सैद्धान्तिक विकल्प के अन्तर्गत रखा है।

2) **प्रायोगिक अनुशासन**–सैद्धान्तिक अनुशासन के विपरीत अरस्तु ने इस वर्ग में उन अनुशासन को विकल्प रूप में रखा है जिसके अन्तर्गत विषय वस्तु निरन्तर परिवर्तनशील है। **उदाहरण के लिए** समाज, व्यवस्था, शिक्षा का प्रारूप निरन्तर परिवर्तनशील है। यह समय, कालखण्ड, एवं उद्देश्यों पर आधारित विषय है। अरस्तु ने इस वर्ग में उन विषयों का समावेश किया है जिनमें ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त किया जा सके। मुख्य रूप से इसमें नीतिशास्त्र, राजनीति एवं शिक्षा को सम्मिलित किया है।

3) **उत्पादक अनुशासन**–इस अनुशासन के अन्तर्गत वे विषय सम्मिलित किए गए जिसका मुख्य उद्देश्य रचना करना है। उत्पादक अनुशासन में अभियांत्रिकी, ललित कला, व्यवहार कला सम्मिलित है जिसमें रचना के लिए विशेष कौशल एवं सृजनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।

   अरस्तु का वर्गीकरण वर्तमान समय में भी सार्थक है। परम्परागत कुछ अनुशासन को छोड़कर अधिकांश उच्च शिक्षा के अनुशासन व्यवहारिक, गतिक एवं अपेक्षाकृत नवीन है **जैसे**– प्रबन्धन, सूचना प्रौद्योगिकी, आन्तरिक रचना या दन्त चिकित्सा।

संहिताकरण फ्रेमवर्क (Codification Framework)

संहिताकरण से तात्पर्य ज्ञान को अलग–अलग श्रेणी में समेकित अथवा संग्रहित करके उनका कूट नाम (Code Name) प्रदान करना है। इस फ्रेमवर्क के अनुसार, ज्ञान के क्षेत्र को उनके ज्ञानात्मक आयाम को उच्च–निम्न अवधारणा को एकरूपता के आधार पर संहिताकृत किया जाता है। इस प्रकार विषयों को उनकी उच्च–निम्न अवधारणा की समानता के आधार पर वर्गीकृत करके कोडीकरण या संहिताकरण किया जाता है।

प्रतिमान विकास के स्तर का फ्रेमवर्क (Framework of Level of Paradigm Development)

इस फ्रेमवर्क के विकास का श्रेय सर्वप्रथम कुहन (Thomas S. Kahn) को जाता है इसके अनुसार अनुशासन का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो वर्गों में किया जाना चाहिए–अकादमिक नियम (Academic Law) और प्रौढ़ विज्ञान (Mature Sciences).

इस प्रकार प्रतिमान विकास फ्रेमवर्क के अनुसार, अनुशासन में विषय के विकल्प को दो ही आधार प्रदान किए गए। पहले वर्ग में वे विषय सम्मिलित किए जाते हैं जिनमें ज्ञान और सामाजिक संरचना का सहसम्बन्ध स्थापित हो तथा जिसके आधार पर सामाजिक नियम प्रतिपादित होते है। इस प्रकार "अंकादमिक नियम" में समाजविज्ञान, राजनीति जैसे विषयों का विकल्प रखा गया है। इसके विपरीत वे विषय जिनमें ज्ञान को परिभाषित करने नियोजित करने एवं खोज करने के लिए व्यवस्थित एवं निर्धारित, विकसित प्रतिमान हो **जैसे**– भौतिकी प्रौढ़ विज्ञान के अन्तर्गत विकल्प स्वरूप आते हैं। इसी श्रृंखला के अन्तिम छोर में शिक्षा तथा समाज शास्त्र को स्थान मिला है।

मतैक्य फ्रेमवर्क (Consensus Framework)

किसी सिद्धान्त विधि तकनीक एवं समस्या के प्रति मतैक्य की दशा ही, प्रतिमान विकास की अवस्था है। इस प्रकार, किसी समस्या या तथ्य के प्रति एक मत के साथ एकत्रित होना ही मतैक्य कहलाता है। इस प्रकार विषयों के विकल्प में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि मतभेदों के आधार पर ज्ञान मतैक्य के क्रम में सबसे निचले स्तर पर तथा मत की समानता अथवा एकरूपता के आधार सबसे शीर्ष पर रखा गया।

उदाहरण के लिए– भौतिक विषय में उसकी अवधारणा, तथ्यों एवं सिद्धान्तों में मतभेद न होने की स्थिति में उसे शीर्ष स्थान पर इसके विपरीत समाजशास्त्र में अपेक्षाकृत मतभेद अधिक होने की स्थिति में निचले स्तर पर रखा गया है।

बिगलैन का प्रारूप (Biglan Model)

Anthony Biglan द्वारा एक विस्तृत Taxonomy प्रस्तुत की गयी जिसमें विषय–वस्तु को उनकी प्रतिमान को स्थिति के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया गया–

1) **प्रतिमान की कोटि के आधार पर**–कठोर एवं कोमल अनुशासन (Hard and Soft Discipline)
2) **विषय–वस्तु की उपयोगिता के विस्तार पर**–व्यवहारिक एवं शुद्ध
3) **जीवित एवं अकार्बनिक श्रेणी के आधार पर**–जीवित एवं निर्जीव

Scanned by CamScanner

Biglan ने अनुशासन के इन तीन वर्गीकरण को पुनः आठ वर्गों में विभक्त किया एवं उनके अनुसार विषयों को विकल्प के रूप में अलग–अलग श्रेणी में रखा।

निम्नलिखित सारणी में हम यह वर्गीकरण अधिक सरलता से समझ सकते हैं–

	कठोर (Hard)		कोमल (Soft)	
	निर्जीव (Non-Living)	सजीव (Living)	निर्जीव (Non-Living)	सजीव (Living)
शुद्ध (Pure)	खगोलविज्ञान	वनस्पति विज्ञान	अंग्रेजी	एंथ्रोपोलॉजी
	रसायन	कीट विज्ञान	जर्मन	राजनीति विज्ञान
	भूगर्भविज्ञान	सूक्ष्म विज्ञान	इतिहास	मनोविज्ञान
	गणित	शारीरिक विज्ञान	दर्शन	समाजशास्त्र
	भौतिकी	जन्तु विज्ञान	रूसी	सम्प्रेषण
व्यवहारिक (Applied)	अभियान्त्रिकी	कृषि विज्ञान	लेखांकन	शैक्षिक प्रशासन
	कम्प्यूटर विज्ञान	डेयरी विज्ञान	वित्त	उ. माध्यमिक शिक्षा
	यान्त्रिकी	बागवानी	अर्थशास्त्र	विशेष शिक्षा,
			कृषि अर्थशास्त्र	व्यवहारिक शिक्षा

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अकादमिक अनुशासन का विकास एवं अभिलाक्षणिक एवं अनुशासनं के विकल्प, एक स्थिर एवं निश्चित रचना नहीं है। यह क्षेत्र निरन्तर विकास समाज की अपेक्षाओं एवं उद्देश्यों के आधार पर निरन्तर प्रगतिशील है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य एवं व्यवहारिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार विषय की अन्तर्विषय वस्तु परिवर्तनशील है।

अन्तर्विषय में परिवर्तन, नवीनता एवं उपयोगिता के आधार विषय एक अनुशासन से अन्य अनुशासन में हस्तान्तरणीय हैं। विशेष स्थिति एक से अधिक विषयों की अन्तर्विषयवस्तु समान होती है तब अन्तः अनुशासन शिक्षा की आवश्यकता होती है। शिक्षा के प्रतिमान एवं अनुशासन का चयन प्रत्येक समाज की आवश्यकता एवं उपयोगिता के आधार पर होता है।

Scanned by CamScanner

अध्याय–2

अध्ययन विषयों की प्रकृति में प्रतिमान विस्थापन
PARADIGM SHIFT IN THE NATURE OF DISCIPLINES

अध्ययन विषयों का इतिहास एवं परिप्रेक्ष्य (HISTORY AND PERSPECTIVES OF PEDAGOGIC SUBJECTS)

प्रश्न 1– अध्ययन विषयों के इतिहास पर टिप्पणी लिखिए।
Write a short note on History of Disciplines.

उत्तर– अध्ययन विषयों का इतिहास (History of Disciplines)
विभिन्न विषयों के विकासवादी इतिहास का पता लगाना आसान काम नहीं है। अध्ययन विषय विकसित होते हैं एवं उनमें पर्याप्त अंतर भी हैं। अध्ययन विषय का विकास ज्ञान के साथ शुरू होता है जो किसी विशेष सांस्कृतिक परिवेश के व्यक्तिगत अनुभव के रूप में मानव मन और पर्यावरण के बीच सामाजिक अनुभव या बातचीत के माध्यम से विकसित होता है, जो सामान्य अर्थों के साथ हो सकता है और सार्वभौमिक रूप से लागू शर्तों में अनुवादित भी हो जाता है। इसके उद्देश्य संकल्पनात्मक रूप में, सभी सांस्कृतिक और अनुभवात्मक अवरोधों को काटता है एवं इस प्रकार अध्ययन विषय के रूप में तैयार हो जाता है।

अध्ययन विषय शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1231 ई. में फ्रान्स के पेरिस विश्वविद्यालय में किया गया। उस समय चार प्रमुख विषयों का अध्ययन कराया जाता था। ये विषय निम्नलिखित थे–

1) **धर्मशास्त्र (Theology)**–इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से दो विषयों, दर्शन शास्त्र एवं मनोविज्ञान का अध्ययन कराया जाता था।
2) **कैनन विधि (Canon Law)**–इसके अन्तर्गत अर्थशास्त्र एवं मानविकी का अध्ययन कराया जाता था।
3) **कला (Art)**–कला के अन्तर्गत अभिनय एवं प्रदर्शन कला का अध्यापन किया जाता था।
4) **औषधि (Medicine)**–औषधि विज्ञान के अन्तर्गत चिकित्सा सम्बन्धी औषधियों का अध्यापन किया जाता था।

अधिकतर शैक्षणिक विषयों का उद्भव 19वीं शताब्दी के मध्य में हुआ जब पारम्परिक पाठ्यक्रम गैर प्रतिष्ठित विषयों भाषा, साहित्य के पूरक के रूप में होता था। इस प्रकार राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, प्रकृति विज्ञान, एवं तकनीकी विषय **जैसे**– भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान एवं अभियन्त्रिकी विषय प्रकाश में आए।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ और नवीन विषयों **जैसे**– शिक्षा एवं मनोविज्ञान को सम्मिलित किया गया। 1970 एवं 1980 ई. में शैक्षणिक विषयों में व्यापक वृद्धि हुई इस दौरान मीडिया अध्ययन, महिला सम्बन्धी अध्ययन आदि सम्मिलित किए गए। छात्रों के भविष्य निर्माण एवं विकास हेतु बहुत से शैक्षणिक विषयों का निर्माण किया गया इसके द्वारा विभिन्न व्यवसायों **जैसे**– नर्सिंग, अतिथ्य प्रबन्धन एवं सुधार इत्यादि को विश्वविद्यालयों में अध्ययन हेतु प्रारम्भ किया गया।

अन्ततः अन्तःविषयी अध्ययन के वैज्ञानिक क्षेत्र **जैसे**– जैव–रसायन (Biochemistry) एवं भू–भौतिकी (Geophysics) आदि का विस्तृत अध्ययन प्रारम्भ हुआ।

20वीं सदी के उत्तरार्ध में धीरे–धीरे यही व्यवस्था अन्य देशों द्वारा अपनाई गई तथा विषयों में एक सामन्जस्य स्थापित हुआ।

20वीं शताब्दी में ही विज्ञान विषयों के अन्तर्गत भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, भू–विज्ञान एवं खगोल विज्ञान को सम्मिलित किया गया। सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान को रखा गया।

20वीं शताब्दी से पहले विषय वर्ग अत्यधिक विस्तृत होते थे जिसमें अध्ययनकर्ता कम रुचि लेते थे। विज्ञान का शिक्षा प्रणाली से अलग एक व्यवसाय के रूप में भी कुछ अस्तित्व था। उच्चतर शिक्षा वैज्ञानिक जाँच के लिए संस्थागत ढाँचा एवं आर्थिक सहायता प्रदान करता है। शीघ्र ही वैज्ञानिक सूचना की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई और लोगों को वैज्ञानिक गतिविधियों के छोटे क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करने के महत्व का ज्ञान हुआ। इसके परिणामस्वरूप वैज्ञानिक विशेषज्ञताओं में वृद्धि हुई तथा विश्वविद्यालयों में आधुनिक वैज्ञानिक विषयों में भी सुधार हुआ।

अध्ययन विषय के विकास के इतिहास को निम्नलिखित मार्गों के माध्यम से समझा जा सकता है–

ज्ञान (Knowledge)
(यह मानव अनुभव, संस्कृति, परंपराओं, कौशल, अवधारणाओं और सिद्धांतों आदि का कुल योग है।)

↓

ज्ञान का विशिष्टीकरण एवं खण्डीकरण
(Specialisation and Fragmentation of Knowledge)
(यह मनुष्य की जिज्ञासा और पर्यावरण को और अधिक व्यापक रूप से एवं विशेष रूप से समझने के प्रयासों के कारण होता है।)

↓

अनुशासन (Discipline)
(यह ज्ञान का एक अलग / विशिष्ट क्षेत्र है / अधिक ध्यान केंद्रित दृष्टिकोण वाले अध्ययन के स्वतंत्र क्षेत्र।)

↓

अध्ययन विषय के भीतर ज्ञान का विविधीकरण एवं विशिष्टीकरण
(Diversification and Specialisation of Knowledge within the Disciplines)

Scanned by CamScanner

अध्ययन विषय के भीतर ज्ञान के विविधीकरण एवं विशिष्टीकरण निम्नलिखित तरीके है–

1) ज्ञान की दो या अधिक शाखाओं को मिलाकर एवं स्वयं की विशिष्ट विशेषताओं का विकासकर एक नए अध्ययन विषय का निर्माण किया जाता हैं। **उदाहरण के लिए–** जैव रसायन (Bio-chemistry) एवं जैव भौतिकी (Biophysics)
2) एक सामाजिक और व्यावसायिक गतिविधि कई विषयों के लिए आवेदन का एक क्षेत्र बन जाती है और अध्ययन के एक स्वतंत्र क्षेत्र के रूप में मान्यता प्राप्त होती है। **उदाहरण के लिए–** शिक्षा, सामाजिक कार्य, प्रबंधन, चिकित्सा विज्ञान, कृषि, प्रौद्योगिकी और इंजीनियरिंग आदि।
3) जब कई अध्ययन विषय किसी महत्वपूर्ण क्षेत्र में गतिविधि करने के लिए एकजुट हो जाते हैं एवं परिणामस्वरूप दोनों के संवर्धन के लिए विचारों का दो तरफा प्रवाह होता है। यह विभिन्न विषयों में एक अंतःविषयक दृष्टिकोण है।

प्रश्न 2–अध्ययन विषयों के दार्शनिक, सामाजिक एवं शैक्षिक परिप्रेक्ष्य की तुलना कीजिए।
Compar the study of Pedagogic Subjects of Philosophical, Sociological and Educational Perspective.

उत्तर– परिप्रेक्ष्य शब्द ज्ञान की व्यक्तिपरक प्रकृति एवं इसके अंतर्निहित दृश्य–स्थानिक रूपक, कुछ विशिष्ट तरीकों आदि को दर्शाता है। परिप्रेक्ष्य किसी व्यक्ति के दृष्टिकोण या कुछ के बारे में विश्वास को दर्शाता है, चाहे वह परिप्रेक्ष्य अल्पावधि हो या अधिक टिकाऊ हो या नहीं हो। एक अलग अर्थ में, एक परिप्रेक्ष्य, चिंताओं, प्रश्नों, दृष्टिकोणों और सोचने के तरीके का उल्लेख कर सकता है जो साझा स्थितियों, भूमिकाओं में व्यक्तियों के एक वर्ग के लिए सामान्य हो सकता है।

दूसरे शब्दों में, परिप्रेक्ष्य देखने और सोचने का एक तरीका है जो सिद्धांतों की एक प्रणाली, व्यावसायिक ज्ञान, एक अध्ययन विषय, या एक प्रवचन समुदाय के प्रति प्रतिबद्धता पर आधारित है। एक अध्ययन विषयात्मक परिप्रेक्ष्य, विशेष रूप से एक परिप्रेक्ष्य है, जो विशेष रूप से विशेषज्ञ ज्ञान–निर्माण समुदायों से जुड़ा हुआ है, जो मानविकी, कला, सामाजिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान और जैविक विज्ञान के भीतर विशेषताओं के रूप में पाया जाता है। अध्ययन विषयों के तीन मुख्य परिप्रेक्ष्य निम्नलिखित हैं–

1) दार्शनिक परिप्रेक्ष्य (Philosophical Perspective),
2) सामाजिक परिप्रेक्ष्य (Sociological Perspective) और
3) शैक्षिक परिप्रेक्ष्य (Educational Perspective)

दार्शनिक परिप्रेक्ष्य (Philosophical Perspective)
शैक्षणिक विषयों का दार्शनिक दृष्टिकोण एकता एवं अनेकता की अवधारणा पर आधारित है। दार्शनिक परिप्रेक्ष्य को निम्नलिखित माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

1) **सामान्य दृष्टिकोण (General Outlook)**–इसे निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–
   i) शैक्षणिक विषयों का हल दार्शनिक स्वयं अपने ज्ञान के आधार पर प्रस्तुत करता है जो ज्ञान वास्तविकता से सम्बन्धित होता है। इस सन्दर्भ में प्लेटो का मानना है कि "विश्व की एकता विश्व के ज्ञान के विषय में मिलती–जुलती है। इसका तात्पर्य यह है कि अधिकांश दार्शनिकों का झुकाव वास्तविकता एवं ज्ञान के एक एकीकृत सिद्धान्त के निर्माण में है।
   ii) पारम्परिक दार्शनिक दृष्टिकोण से शैक्षिक विषयों की केवल ज्ञान की विशेष शाखाएँ होती हैं जो एक साथ मिलकर पूरी तरह से ज्ञान या ज्ञान की एकता बनाते हैं इसीलिए विषयों का एक दूसरे से सम्बन्ध होता है तथा उन्हें सैद्धान्तिक रूप में भी व्यापक सिद्धान्त या ज्ञान की व्यवस्था के रूप में एकीकृत किया जा सकता है।
   iii) 20वीं सदी के प्रारम्भ में 'तार्किक सकारात्मक' नाम का एक नया शैक्षिक दार्शनिक विचार आया। तार्किक सकारात्मक वाद ने विज्ञान एवं ज्ञान की एकता को पुनर्स्थापित करने के लिए निर्धारित किया जिससे शैक्षणिक विषयों एवं अनुसंधान कार्यों में तेजी आई। तार्किक सकारात्मकवादियों ने दावा किया कि प्रकृति के उद्देश्य, विशेषताओं के आधार पर विज्ञान एक संचयी प्रक्रिया है। तार्किक सकारात्मकवाद तर्कशास्त्र, तर्कसंगतता या तर्कसंगत तर्क द्वारा तथा संचालित अनुभवजन्य अवलोकन द्वारा प्रेरित करने का विचार करता है।
   iv) तार्किक वस्तुनिष्ठवाद विभिन्न पक्षों से आक्षेप के अन्तर्गत आ गया। तार्किक वस्तुनिष्ठवाद तर्कसंगत विरोधियों के दावे की प्राथमिकता एवं तार्किकता का विरोध करता है।
2) **विशेष अन्तर्दृष्टि (Special Insights)**–शैक्षणिक विषयों में इस समस्या को प्रदर्शित किया गया है कि विश्व ज्ञान को बड़ी संख्या में शाखाओं में विभाजित किया गया है। तर्कसंगत सकारात्मकवाद ने वैज्ञानिक तर्क संगतता के मूलभूत सिद्धान्तों को ज्ञान की एकता के रूप में सुधारने की कोशिश की जो सभी वैज्ञानिक विषयों में सम्मिलित किया जाएगा। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञान विषय के कुछ भागों में सामाजिक निर्माणवाद का एक बहुत लोकप्रिय एवं प्रभावशाली स्थान रहा है। लेकिन ज्ञान एवं सत्य की प्रकृति के कारण इस विषय को हमेशा आलोचना का सामना करना पड़ता है। फिर भी विषयों का सामाजिक रूप से निर्माण किया जा रहा है जो नवीन ज्ञान के निर्माण में एवं ज्ञान के मूल्यांकन के लिए महत्वपूर्ण है। इसी सन्दर्भ में **डेविड ब्रिज** ने तर्क दिया है कि विषयों में न केवल तर्कसंगत लोगों का समूह सम्भव है बल्कि अनुशासन की विशिष्टता बनाए रखने पर वैज्ञानिक अनुसन्धान की विश्वसनीयता को भी बढ़ावा मिलता है। अनुशासनात्मक विषयों को अतः विषयों के रूप में भी जाना जाता है।
3) **दार्शनिक परिप्रेक्ष्य की प्रासंगिकता (Relevance of Philosophical Perspective)**–अनुशासन एवं अनुशासनात्मक विषयों का दार्शनिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि यह केवल समग्र अन्तः विषयक एक साइड शो है जैसा कि व्यावहारिक आयाम एवं अनुशासन या अन्तःविषयों के निहितार्थ शायद ही कभी माना जाता है। दार्शनिक दृष्टिकोण ने इस परिप्रेक्ष्य का समर्थन किया है कि स्कूल के विषय ज्ञान के क्षेत्रों से या विषयों से प्राप्त होते हैं।

Scanned by CamScanner

सामाजिक परिप्रेक्ष्य (Sociological Perspective)

शैक्षणिक विद्यालयी विषयों के सामाजिक परिप्रेक्ष्य श्रम के व्यवसायीकरण एवं विभाजन पर आधारित है। इस परिप्रेक्ष्य को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

1) **सामान्य दृष्टिकोण (General Outlook)**–शैक्षणिक विषयों के किसी भी विशेष सामाजिक दृष्टिकोण की बात करना भी बहुत कठिन है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य विशेष रूप से सभी सामाजिक विज्ञानों में सबसे व्यापक एवं सबसे अधिक समावेशित है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य के सामान्य दृष्टिकोण का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है–
   i) सामाजिक परिप्रेक्ष्य का एकीकृत प्रतिमान या अनुसन्धान का कोई एक एकीकृत उद्देश्य नहीं है। इसे कम से कम 30 से 40 उपविषयों में विभाजित किया गया है। 20वीं शताब्दी के दौरान समाजशास्त्रीय अनुशासन ने बहुत सी सफलताएँ हासिल की लेकिन वर्तमान समय में इसकी अनेक समस्याएँ भी हैं।
   ii) समाजशास्त्र एक अध्ययन विषय है जिसे परिभाषित करना बहुत ही कठिन है। अनुशासन के प्रारम्भिक विचारकों ने तर्क दिया है कि "समाजशास्त्री एक ऐसा व्यक्ति होता है जो एक निश्चित तरीके से समाज के तथ्यों का अध्ययन करता है। दार्शनिकों की तरह समाजशास्त्री भी मानव जीवन की सम्पूर्णता में दिलचस्पी लेते हैं सामान्यतया समाजशास्त्र का दृष्टिकोण यह है कि मानव व्यवहार, सामाजिक व्यवहार एवं सामाजिक संगठनों द्वारा बड़े पैमाने पर निर्धारित होता है। इसी दृष्टिकोण से मानव व्यवहार व सामाजिक समूह का विश्लेषण किया जा सकता है।
   iii) व्यावसायिकता भी एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से लोगों को जीवन यापन करने के लिए अनेक गतिविधियाँ मिलती हैं। व्यवसायी एक ऐसा व्यक्ति होता है जो किसी व्यक्ति से उच्च स्तरीय कौशल एवं ज्ञान के साथ निश्चित गतिविधियाँ कर सकता है।

2) **विशिष्ट अन्तर्दृष्टि (Special Insights)**–श्रम का विभाजन आधुनिकता की परिभाषाओं में से एक है तथा सामाजिक संगठन की बढ़ती तर्कसंगतता की अभिव्यक्ति है। शैक्षणिक विषयों में सामाजिक परिप्रेक्ष्य के विशिष्ट अन्तर्दृष्टि की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–
   i) व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक योग्यता के प्रमाणीकरण पर विज्ञान सम्बन्धी स्वायत्तता है।
   ii) ज्ञान एवं कौशल का एक समूह है जो पाठ्यचर्या के रूप में व्यवस्थित है।
   iii) शैक्षणिक विषयों की सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अलग–अलग व्यावसायिक नैतिकता है तथा व्यवसायिकों का एक समूह है जो एक अलग व्यवसायिक तरीके बताता है।

3) **सामाजिक परिप्रेक्ष्य की प्रासंगिकता (Relevance of Sociological Perspective)**–समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण शैक्षिक विषयों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह शैक्षिक व्यवसायों में क्या हो रहा है? किस प्रकार के कार्य होने चाहिए आदि के विषय में चिकित्सकों या व्यावसायिकों के विशेष समूह की भावनाओं को पहचानता है। शिक्षा के क्षेत्र में इसका तात्पर्य यह है कि उपनिवेशवाद के बड़े रुझान के कारण अनुशासनात्मक संरचनाएँ भी खतरे में है। समाजशास्त्रियों द्वारा व्यापक सामाजिक प्रवृत्तियों को विषयों एवं अनुशासन के रूप में देखा जा रहा है।

शैक्षिक परिप्रेक्ष्य (Educational Perspective)

शैक्षिक परिप्रेक्ष्य शिक्षण एवं शिक्षा की अवधारणा पर आधारित है। शिक्षण एवं शिक्षा के शैक्षिक परिप्रेक्ष्य पर निम्नलिखित प्रकार से चर्चा की जा सकती है–

1) **सामान्य दृष्टिकोण (General Outlook)**–शैक्षिक परिप्रेक्ष्य अनुशासन एवं अन्तःविषय पर एक अलग परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। शिक्षा या शिक्षण एक नया अध्ययन विषय है जो मनोविज्ञान, इतिहास, दर्शन एवं कुछ व्यावहारिक अध्ययनों के पहलुओं को जोड़ती है। शैक्षिक विषय वर्तमान समय का एक अनिवार्य विषय है जिसका प्रयोग शिक्षक एवं विश्वविद्यालय के व्याख्याताओं के प्रशिक्षण के लिए किया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह अनुसन्धान का एक क्षेत्र है जिसका उद्देश्य शिक्षा की सामाजिक वास्तविकता को समझना है। शैक्षिक परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित अध्ययन विषय को सामान्य दृष्टिकोण इस प्रकार से है–
   i) छात्र–छात्राओं को पाठ्यचर्या से सम्बन्धित सामग्रियों को पढ़ाया जाएगा।
   ii) शिक्षण पद्धति सम्बन्धी पठन–सामग्री को सिखाया जाएगा।
   iii) शिक्षण के ज्ञान एवं कौशल के अतिरिक्त अन्य शैक्षणिक उद्देश्यों का पालन किया जाना चाहिए।

2) **विशिष्ट अन्तर्दृष्टि (Special Insights)**–शैक्षिक परिप्रेक्ष्य शिक्षण को बहुत जटिल स्वरूप प्रदान करता है। अनुशासनिक शिक्षा स्कूल शिक्षा एवं अध्ययन के पाठ्यक्रमों का आयोजन करने का सर्वप्रमुख तरीका है। अध्ययन विषय स्नातक स्तर की पाठ्यचर्या में शिक्षण संगठन के लिए कुछ सामान्य संरचनाएँ प्रदान करता है। शैक्षिक परिप्रेक्ष्य से यह भी पता चलता है कि अन्तःविषयक विषय पाठ्यचर्या के लिए समग्र रूप से एक मजबूत प्रवृत्ति है। सभी विषयों के विस्फोट एवं ज्ञान के विखण्डन के कारण कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही हैं। शिक्षकों को उनके छात्रों के लिए वास्तविक प्रासंगिकता क्या है यह चुनने में कठिनाई होती है। इसके लिए शैक्षणिक दृष्टिकोण से यह तर्क दिया गया है कि शैक्षिक परिप्रेक्ष्य की बढ़ती जटिलता को दूर करने के लिए तथा शिक्षण एवं अनुसन्धान के लिए आवश्यक अन्तःविषय दृष्टिकोण बनाना होगा। इसके लिए अन्तः विषयक अनुशासनिक शोधकर्ता ने तर्क दिया कि पहले छात्रों को अपने अन्तःविषयक अनुसन्धान के हितों के विकास से पहले अनुशासनात्मक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

3) **शैक्षिक परिप्रेक्ष्य की प्रासंगिकता (Relevance of Educational Perspective)**–प्रभावी शिक्षण के लिए प्राधिकरण सन्दर्भ एवं संरचना की आवश्यकता होती है। विश्वविद्यालय अभी भी स्वयं को उच्च शिक्षा का संस्थान घोषित करते हैं जबकि शिक्षा उनका मुख्य व्यवसाय बन गया है। यह एक चिन्ता का विषय है। विषयों द्वारा बनाई गई पाठ्यचर्या के बिना एक शैक्षिक संस्था को चलाना या कुछ शिक्षण इकाइयों को चलाना असम्भव है। आधुनिक

Scanned by CamScanner

विश्वविद्यालय वर्तमान समय में शैक्षणिक विषयों में अनुशासनात्मक विषयों का निर्माण करके तथा उसे उपयुक्त प्रशिक्षण कर्मियों को प्रदान करके उच्च शिक्षा को एक नया आकार प्रदान कर रहे है।

दार्शनिक, सामाजिक एवं शैक्षिक परिप्रेक्ष्य की तुलना (Comparison of Philosophical, Sociological and Educational Perspective)

दार्शनिक, सामाजिक एवं शैक्षिक परिप्रेक्ष्य की तुलना को निम्नलिखित तालिका के आधार पर प्रस्तुत किया गया है–

अन्तर के आधार	दार्शनिक परिप्रेक्ष्य	सामाजिक परिप्रेक्ष्य	शैक्षिक परिप्रेक्ष्य
पैराडाइम	ज्ञान	सामाजिक संगठन	व्यक्तित्व विकास
अनुशासनात्मकता को प्रभावित करने वाले कारक	भाषाई खेल/ व्याख्यान	व्यावसायीकरण/ अधिकार संरचना	पाठ्यचर्या एवं संरचित या अनुशासित (विषयों) को सीखने की आवश्यकता
अन्तर/ अन्तःविषयों को प्रभावित करने वाले कारक	ज्ञान का सार्वभौमीकरण	व्यावसायों का सामाजिक परिवर्तन/ झुकाव	शिक्षण के लिए नवीन संरचनाओं/ नवीन दृष्टिकोणों में बदलाव
सन्तुलन	सत्यता के दावे को मान्य करने के लिए अनुशासनात्मक (विषयों की) आवश्यकता	बल समूहों के स्वहित के कारण अनुशासनात्मक संरचनाओं को दूर करने में कठिनाई।	शिक्षकों का अनुशासनात्मक (विषय) शिक्षा के पक्ष में अधिक जागरूक करने की आवश्यकता।

विषयों की समझ UNDERSTANDING oFF SUBJECTS)

प्रश्न 3– विद्यालयी विषय से आप क्या समझते हैं? विद्यालयी विषयों की आवश्यकता और महत्व पर प्रकाश डालिए।

What do you mean by School Subject? Describe the characteristics, need and Importance of School Subject?

उत्तर– विषय की अवधारणा (Concept of Subject)

विषय से अभिप्राय ज्ञान की उस शाखा से है जिसका अध्ययन अथवा अध्यापन किया जाता है। विद्यालय में छात्र विभिन्न विषयों **जैसे**– विज्ञान, गणित, अर्थशास्त्र, इतिहास, नागरिकशास्त्र एवं भाषा इत्यादि का शिक्षण एवं अधिगम करता है। ज्ञान की शाखा के रूप में विषय शिक्षा के उद्देश्यों के अनुसार व्यवस्थित किए जाते हैं।

'विषय' शब्द को अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त किया जाता है यह कौन, क्या क्रिया कर रहा है ये भी बताता है **जैसे**–

1) मैं टेनिस खेलता हूँ। इस वाक्य में 'मैं' विषय है।
2) शाही अथवा राजतन्त्र में राज्य के सदस्यों के सम्बोधन में प्रयोग **जैसे**–राजा अपनी प्रजा (Subject) को सम्बोधित करता है।

इस वाक्य में प्रजा शब्द अंग्रेजी के 'Subject' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है।

विद्यालयी विषय का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of School Subject)

विद्यालयी विषय का तात्पर्य उन परम्परागत शैक्षणिक विषयों से है जिन्हें विद्यालय में पढ़ाया जाता है। **जैसे**– गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, रसायन विज्ञान आदि। एक विद्यालयी विषय का गठन इस प्रकार से किया जाता है जिससे वह पाठ्यचर्या सामग्री, शिक्षण एवं अधिगम की सुनियोजित संरचना तैयार करने में सहायता प्रदान कर सके। एक विद्यालयी विषय का विद्यालयी पाठ्यचर्या के अन्तर्गत इस प्रकार गठन किया जाता है कि वे संस्थान में ज्ञान के क्षेत्र, अभ्यास एवं शिक्षण–अधिगम को परिभाषित कर सके। आजकल कुछ नए अपरम्परागत विषयों का समावेश विद्यालयी विषयों के रूप में हुआ है। **जैसे**– पर्यटन एवं अतिथि सत्कार। शैक्षणिक विद्यालयी विषय (**जैसे**– गणित, रसायन विज्ञान, भूगोल, इतिहास एवं वाणिज्य आदि) को अनिवार्य रूप से छात्रों को पढ़ाया जाता है। इन विषयों को शिक्षक द्वारा कक्षा शिक्षण के समय छात्रों के सम्मुख उचित रूप से प्रस्तुत करना होता है जिससे कक्षा में शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया प्रभावशाली रूप में सम्पन्न हो सके।

विद्यालय में, बच्चे गणित, विज्ञान, भाषा, इतिहास, धर्म, संगीत, कला, नृत्य, स्वास्थ्य जैसे कई विषयों को सीखते हैं। ये विषय ज्ञान की शाखाएँ हैं, जिन्हें अक्सर शिक्षा के लक्ष्यों को पूर्ण करने के लिए समायोजित किया जाता हैं। विद्यालयी विषय पाठ्यचर्या के अनुरूप ज्ञान के अधिगम का एक क्षेत्र है जो शिक्षण–अधिगम द्वारा व्यवहार में लाया जाता है। विद्यालय विषय, ज्ञान का एक क्षेत्र है जिसे विद्यालय में अध्ययन करते हैं।

विद्यालयी विषय पारम्परिक शैक्षिक विषय हो सकते है, **जैसे**– गणित, इतिहास, भूगोल, रसायन विज्ञान और अर्थशास्त्र जिनका अपने मूल शैक्षिक विषय से सीधा सम्बन्ध है। कुछ अपरम्परागत विद्यालयी विषय, **जैसे**– पर्यटन और खातिरदारी, शैक्षिक विषयों से कम सम्बन्ध रखते है। विद्यालयी विषय शैक्षिक उद्देश्यों के लिए, विशिष्ट, सोद्देश्य निर्मित उद्यमों तथा विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मांग तथा चुनौतियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बनता है।

कारमन के अनुसार, "एक विद्यालयी विषय एक संगठनात्मक ढांचे का गठन करता है जो कि पाठ्यचर्या, विषय सूची, अध्यापन और सीखने की गतिविधियों को अर्थ तथा आकार देती है।"

According to Karmon (2007), "A School Subjects constitutes an organising framework that gives meaning and shape to curriculum, content, teaching and learning activities."

ब्रिटानिका एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार, "स्कूल विषय को 'ज्ञान का एक क्षेत्र, जिसे स्कूल में पढ़ाया जाता है' के रूप में परिभाषित किया गया है।"

According to Britannica Encyclopaedia, School subject is defined as "an area of knowledge that is studied in school."

डेंग और ल्यूक (2008) के अनुसार, "स्कूल विषय सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक वास्तविकताओं तथा आवश्यकताओं के जवाब में मानव निर्माण है। ये विशिष्ट उद्देश्यों के लिए शैक्षिक कल्पना के साथ तैयार किए गए शैक्षिक उद्यम हैं।"

Scanned by CamScanner

विद्यालयी विषय की विशेषताएँ (Characteristics of School Subject)

विद्यालयी विषय की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1) **कक्ष शिक्षण का सुनिश्चयन**–शैक्षणिक विषयों की विषय वस्तु की आवश्यकता शिक्षण में एक पथ् के रूप में होता हैं। यह कक्षा कक्ष शिक्षण को सुनिश्चित करता है।

2) **ज्ञान एवं कौशल के स्थानान्तरण**–इसके निर्माण में विषय–वस्तु के ज्ञान के चयन एवं संगठन को सम्मिलित किया जाता है। विद्यालयी विषय का उपयोग कक्षा–कक्ष में ज्ञान एवं कौशल के स्थानान्तरण के लिए किया जाता है।

3) **अपेक्षाओं एवं क्रियाओं का महत्त्व**–विद्यालयी विषय का निर्माण समाज की अपेक्षाओं एवं शिक्षण की क्रियाओं के अनुसार होता है।

4) **पाठ्यचर्या प्रारूप निर्माण में सहायक**–यह अधिगम क्रियाओं, शिक्षण, विषय–वस्तु एवं पाठ्यचर्या का आकार संगठन एवं अर्थ के प्रारूप का निर्माण करता है।

5) **लक्ष्यों की पूर्ति**–विद्यालयी विषय विभिन्न उपक्रमों के उद्देश्यों का निर्माण करता है। यह विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक शिक्षा के लक्ष्यों हेतु मांग एवं चुनौती होती है।

6) **अध्ययन की एक प्रक्रिया**–प्रत्येक विषय के अध्ययन की एक प्रक्रिया होती है। उसी के अनुसार शिक्षक अपनी शिक्षण प्रक्रिया तथा छात्र अपनी अधिगम प्रक्रिया का संचालन करता है।

विद्यालयी विषयों की आवश्यकता और महत्त्व (Need and Importance of School Subjects)

विश्व के कई हिस्सों में पारम्परिक स्कूल पाठ्यक्रमों को प्रगतिशील प्रकारों द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा है। विद्यालयी विषयों के विषय में अध्ययन करके हम देख सकते हैं कि विद्यालय के विषय अनिवार्य रूप से सामाजिक और राजनीतिक निर्माण हैं।

विद्यालयी विषयों का सम्बन्ध सामाजिक संरचना से है। सामाजिक सम्बन्ध एवं सांस्कृतिक प्रसारण की प्रक्रिया में भी योगदान देते है। विद्यालयी विषय समाज एवं इसके बारे में समस्याओं के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

विद्यालयी विषयों की आवश्यकता और महत्त्व निम्नलिखित है–

1) ज्ञान और कक्षा अध्यापन के बीच के लिंक की जांच के लिए विद्यालयी विषय का अध्ययन करना आवश्यक है।

2) विद्यालयी विषयों को अब सांस्कृतिक और ऐतिहासिक घटना के रूप में माना जा रहा है, इसलिए उनके बारे में अध्ययन करना जरूरी है।

3) विद्यालयी विषयों का अध्ययन करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि वे स्कूल के ज्ञान और प्रथाओं की एक स्पष्ट तस्वीर प्रदर्शित करते हैं।

4) विद्यालयी विषयों का अध्ययन इस प्रकार 'सामग्री के सिद्धांत' की समझ को समझता है जो कि सामग्री में सन्निहित शैक्षिक क्षमता को प्रकट करने के लिए महत्त्वपूर्ण है।

5) विद्यालयी विषयों का उद्देश्य शैक्षणिक संस्कृति को बनाए रखना और छात्रों की बौद्धिक क्षमता विकसित करना है। भविष्य के नागरिकों को आवश्यक ज्ञान, कौशल और पूंजी के साथ लैस करके आर्थिक और सामाजिक उत्पादकता को बनाए रखने और बढ़ाने के प्राथमिक उद्देश्य के लिए स्कूल विषय तैयार किए गए हैं।

6) विद्यालय के छात्रों को सार्थक सीखने के अनुभव प्रदान करने वाले छात्रों को मुहैया कराने के लिए और सामाजिक गतिविधि का कारण बनना आवश्यक है।

7) विद्यालयी विषय निर्माण के लिए अनुमति दी जाती है और आगे के अनुभव वाले छात्रों को प्रदान करते हैं जो उनके बौद्धिक विकास में योगदान करते हैं। स्कूल पाठ्यक्रम एक स्कूल विषय के निर्माण के लिए एक शिक्षार्थी–उन्मुख दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है जो छात्रों को अध्ययन के अपने चुने हुए क्षेत्रों में उनकी आवश्यकताओं और रुचियों के अनुसार जानने की अनुमति देता है। वैश्वीकरण और ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था की चुनौतियों का सामना करने के लिए विद्यालय विषय छात्रों को सामान्य कौशल और सीखने की क्षमता से परिपूर्ण करते हैं।

8) विद्यालयी विषय छात्रों को उनके दृष्टिकोणों को व्यापक बनाने, उनकी सामाजिक जागरूकता बढ़ाने, सकारात्मक व्यवहार और मूल्यों को विकसित करने और समस्या को सुलझाने और महत्त्वपूर्ण सोच कौशल विकसित करने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार, विद्यालय के विषयों का अध्ययन छात्रों के लिए एक विस्तृत क्षितिज प्रदान करने के लिए प्रबुद्धता के लिए अग्रणी नए गलियारों का निर्माण और पता लगाने के लिए खड़ा है।

9) शिक्षकों को स्कूल विषय जानने के लिए उन्हें 'कंटेंट ऑफ थिअरी'– पता होना चाहिए कि किस प्रकार सामग्री का चयन किया गया है, किस प्रकार पाठ्यक्रम के रूप में तैयार किया गया है और इसे कैसे बदला जा सकता है ताकि शिक्षार्थियों के अपने ज्ञान का निर्माण किया जा सके।

10) विद्यालयी विषयों का अध्ययन करने से हमें यह विश्लेषण करने में मदद मिलती है कि किसी राष्ट्र के समाज, संस्कृति और मूल्यों से स्कूल विषय कैसे प्रभावित होता है।

प्रश्न 4– विद्यालयी पाठ्यक्रम में विषयों को शामिल करने के उद्देश्य बताइए। अध्ययन विषयों एवं विषय के मूल तत्व का वर्णन करते हुए विद्यालयी विषय एवं अध्ययन विषयों के बीच समानताएँ एवं असमानताएँ लिखिए।

Explain the objectives of including subjects in the school syllabus. Describel the basic elements of Disciplines and Subject and write similarities and disimilarities between School Subjects and Disciplines.

या

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

Write short notes on the following:

1) विद्यालयी विषय और विषयों के बीच समानताएँ (Similarities between School Subjects and Disciplines)

Scanned by CamScanner

2) विषय एवं अध्ययन विषयों में असमानताएँ (Disimilarities between School Subject and Disciplines)

उत्तर– विद्यालयी पाठ्यक्रम में विषयों को शामिल करने के उद्देश्य (Objectives of Including Subjects in School Syllabus)

विद्यालयी पाठ्यक्रमों में शामिल विषयों के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1) पढ़ने, लेखन और अंकगणित जैसे बुनियादी कौशल विकसित करने के लिए।
2) छात्रों को अपने समाज की समझ, उनके राष्ट्र, मानव दुनिया और भौतिक वातावरण को बढ़ाने के लिए।
3) छात्रों को स्वतंत्र विचारक बनने में सहायता करने के लिए ताकि वे व्यक्तिगत और सामाजिक परिस्थितियों को बदलने के लिए उपयुक्त ज्ञान का निर्माण कर सकें।
4) छात्रों को महत्त्वपूर्ण सोच कौशल, रचनात्मकता, समस्या सुलझाने के कौशल, संचार कौशल और सूचना प्रौद्योगिकी कौशल समेत जीवन भर की सीख के लिए कई कौशल विकसित करना।
5) छात्रों को जीवन के प्रति सकारात्मक मूल्यों और दृष्टिकोण का विकास करने में सहायता करने के लिए, ताकि वे समाज, देश और विश्व के सूचित और जिम्मेदार नागरिक हो जाएं।
6) बच्चे के सर्वांगीण विकास और शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए।

अध्ययन विषयों एवं विषय के मूल तत्व (Basic Elements of Disciplines and Subject)

ब्रूनर ने अपनी पुस्तक 'Structure of Discipline' में कुछ उदाहरणों से इस प्रश्न को हल करने का प्रयास किया कि विषयों के मूल तत्व क्या होते हैं, उन्होंने इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं–

1) ब्रूनर के दृष्टिकोण से जीव–विज्ञान की संरचना बाह्य अभिप्रेरणा तथा गमनशील क्रिया के बुनियादी सम्बन्धों पर आधारित है।
2) ब्रूनर ने भाषा की संरचना का आधार वाक्य गठन तथा उस विषय को माना जिसके द्वारा अर्थ बदले बिना भाषा के रूप में विविधता लाई जा सकती है।
3) बीजगणित की संरचना गुणन, वितरण तथा सह–सम्बन्धों पर आधारित है। उनके अनुसार ये तीन आधारभूत तत्व बीजगणित की विविध क्रियाओं को समझने का आधार प्रदान करते हैं।
4) कभी–कभी किसी विषय का आधार समानान्तर स्थितियों की खोज हो सकती है।

विद्यालयी विषय एवं अध्ययन विषयों के बीच समानताएँ एवं असमानताएँ (Similarities and Disimilarities between School Subjects and Disciplines)

विद्यालयी विषय एवं अध्ययन विषयों के बीच समानताओं एवं असमानताओं का वर्णन इस प्रकार है।

विद्यालयी विषय और विषयों के बीच समानताएँ (Similarities between School Subjects and Disciplines)

विद्यालयी विषयों और शैक्षिक विषयों के बीच तीन व्यापक समानताएँ पाई जाती है–

1) **विषय एवं अध्ययन विषय अनिवार्य रूप से सतत् होते हैं**–सतत् भाग छात्रों के बौद्धिक क्षमता के विकास के लिए अध्ययन विषय के ज्ञान के स्थानान्तरण में महत्त्वपूर्ण होता है। अध्ययन विषय के सिद्धान्त कहते हैं कि– विषय अस्वीकृत रूप में होता है तथा इसका संगठन अध्ययन विषय के अनुसार किया जाता है।
2) **विषय एवं अध्ययन विषय मूल रूप से असतत् होते हैं**–विद्यालयी विषय एवं अध्ययन विषय का उद्देश्य एवं सार असतत् होता है। विषय का निर्माण व्यवसाय, पेशा तथा वृत्तिक सन्दर्भ में किया जाता है। अध्ययन विषय व्यवसाय में वास्तविक ज्ञान की आवश्यकता में वृद्धि करते हैं।
3) **विषय एवं अध्ययन विषय भिन्न परन्तु परस्पर सम्बन्धित होते हैं**–विषय एवं अध्ययन विषय एक–दूसरे से भिन्न होते हुए भी परस्पर एक–दूसरे से सम्बन्धित होते है। इसमें निम्नलिखित प्रकार का सम्बन्ध पाया जाता है–
   i) अध्ययन विषय, स्कूल विषय में वृद्धि करता हैं एवं स्कूल विषय, अध्ययन विषय में वृद्धि करता है।
   ii) विद्यालय के विषय शैक्षणिक विषयों से पहले होते हैं, और विषय मुख्यतः अध्ययन विषय का रूपान्तरण होता है।
   iii) विषयों और विषयों के बीच का सम्बन्ध विरोधाभासी है अर्थात् दोनों परस्पर विरोधी होते हैं।
   iv) ज्ञान के विकास में दोनों की समान्तर भूमिका होती है।
   v) दोनों में संयोजन होता है अर्थात् अध्ययन विषय, विद्यालय विषय के निर्माण में अन्तिम रूप तक सहयोग करता है तथा विद्यालय विषय अध्ययन विषय को समझने में सहयोग करता है।

इस प्रकार विद्यालयी विषय का शैक्षणिक अध्ययन का विषय से विभिन्न परिवर्तनीय सम्बन्ध है जो उनके उद्देश्यों, प्रकरणों एवं विकास के चरणों पर निर्भर करता है।

विषय एवं अध्ययन विषयों में असमानताएँ (Disimilarities between School Subject and Disciplines)

विषय एवं अध्ययन विषय में असमानताओं को इस प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं–

अध्ययन विषय	विषय
1) विषयों के अन्तर्गत विभिन्न विषयों सम्बन्धी शिक्षक, कक्ष एवं विषय सम्बन्धी शिक्षण सामग्री उपलब्ध रहती है।	जबकि विषय, विषयों का एक भाग है।
2) अध्ययन विषय शैक्षिक अध्ययनों की शाखा है।	जबकि विषय ज्ञान की शाखा है जिसका अध्ययन अथवा अध्यापन किया जाता है।
3) अध्ययन विषय का मुख्य उद्देश्य विषय विशेषज्ञों को उत्पन्न करना है।	जबकि विषय का उद्देश्य बालक को विषय से सम्बन्धित सामान्य ज्ञान प्रदान करना है।
4) अध्ययन विषय शिक्षण का एक वृहत भाग है।	जबकि विषय, विषयों का एक सूक्ष्म प्रभाग।
5) अध्ययन विषय के आधार पर ही समस्त विषयों का अध्ययन सम्भव हो पाता है।	विषय सम्बन्धी शिक्षण को अध्ययन का विषय प्रभावी बनाता है।
6) विषय के शिक्षण हेतु अध्ययन के विषय की आवश्यकता होती है।	जबकि विषय की समझ द्वारा ही अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है।
7) अध्ययन का विषय एक नियमावली है जिसकी घर, विद्यालय एवं बाह्य प्रशासनिक क्षेत्रों में आवश्यकता होती है।	विषय की आवश्यकता छात्रों को विषयी ज्ञान हेतु होती है।

Scanned by CamScanner

8) अध्ययन का विषय अपने–आप में सम्पूर्ण है।	जबकि विषय के अपने विभिन्न क्षेत्र एवं भाग होते है।
9) अध्ययन विषय निपुणता लाती है जिससे विशेषज्ञों का निर्माण होता है।	जबकि विषय सामान्य विषय–वस्तु से सम्बन्धित सामान्य ज्ञान रखने वाले व्यक्ति का निर्माण करती है।
10) स्थान एवं कार्य विशेष के अनुसार अध्ययन विषय परिवर्तनशील है।	जबकि विषय प्रायः एक सा रहता है।
11) अध्ययन विषय के प्रति छात्र व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है तथा वह उसमें अध्ययन के द्वारा निपुणता प्राप्त करता है।	जबकि विषय सम्पूर्ण विद्यालय, कार्यालय एवं क्षेत्र के सम्पूर्ण व्यक्तियों के लिए होता है।
12) अध्ययन विषय का उदाहरण सामाजिक विज्ञान एवं वाणिज्य है।	जबकि विषय का उदाहरण इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र इत्यादि है।

विद्यालयी स्तर पर विषयों का निर्माण (FORMATION OF SUBJECTS AT SCHOOL LEVEL)

प्रश्न 5– पैराडाइम का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए एवं उसकी उपयोगिता भी बताइए।
Write the meaning and definition of paradigm and also explain its utility.

या (or)

विद्यालयी विषयों के निर्माण में कोठारी आयोग के सुझाव का वर्णन कीजिए तथा अध्ययन विषय के रूप में विज्ञान का प्रारूप बताइए।
Describe the suggestion of the Kothari Commission in the formation of school subjects and describe the framing of science as a Discipline.

उत्तर– विद्यालयी विषयों का निर्माण (Formation of School Subjects)
विद्यालयी विषय के निर्माण में तीन स्तर सम्मिलित हैं–

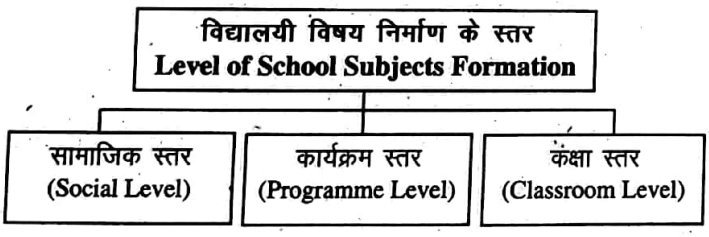

उपर्युक्त तीनों, स्तरों को विद्यालयी पाठ्यचर्या के अन्तर्गत रखकर स्पष्ट करेंगे।

1) **सामाजिक पाठ्यचर्या (Social Curriculum)**–सामाजिक पाठ्यचर्या आदर्श पाठ्यचर्या होती है। इसके नियम एवं नीति, किसी संस्थान, विद्यालय संस्कृति एवं समाज को संतुलित करती है।

2) **कार्यक्रम पाठ्यचर्या (Programme Curriculum)**–तकनीकी अथवा आधिकारिक पाठ्यचर्या, कार्यक्रम पाठ्यचर्या होती है। **जैसे**– सामग्री एवं पाठ्यक्रम का विद्यालय एवं कक्षा में प्रयोग।

3) **कक्षा पाठ्यचर्या (Classroom Curriculum)**–कक्षा पाठ्यचर्या, क्रियाशील पाठ्यचर्या कार्यो एवं क्रियाओं का मिश्रण होता है। इसका विकास शिक्षक एवं छात्र समूह के प्रयास से किसी निश्चित विकास संस्थान के सन्दर्भ में किया जाता है।

कोठारी आयोग एवं विद्यालयी विषय (Kothari Commission and School Subject)
भारत सरकार ने 1964 में **डॉ. डी.एस. कोठारी** की अध्यक्षता में एक व्यापक शिक्षा आयोग का गठन किया जिसने विभिन्न विद्यालयी आँकड़ों पर आधारित भारतीय आवश्यकताओं के अनुसार विषयगत् पाठ्यचर्या में कई सुधारों के लिए संशोधन और सुझाव दिए जिससे शिक्षा में क्रमबद्धता आ सके। आयोग ने विद्यालयी विषयों के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिए–

1) **निम्न प्राथमिक स्तर (Lower Primary Level)**–कोठारी आयोग ने इस स्तर पर कहा कि औपचारिक विषयों का दबाव बहुत कम होना चाहिए। इस स्तर पर केवल भाषा एवं प्रारम्भिक गणित पर ही विशेष बल दिया जाना चाहिए। इस दृष्टि से आयोग ने इस स्तर पर (कक्षा 1–4 तक) निम्नलिखित विषयों को निर्धारित किया हैं–
   i) एक भाषा – मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा।
   ii) गणित।
   iii) वातावरण का अध्ययन (कक्षा 3 एवं 4 में विज्ञान तथा सामाजिक अध्ययन)।
   iv) सृजनात्मक क्रियाएँ।
   v) कार्य–अनुभव तथा समाज सेवा।
   vi) स्वास्थ्य–शिक्षा।

2) **उच्चतर प्राथमिक स्तर (Higher Primary Level)**–उच्चतर प्राथमिक स्तर कक्षा पाँच से कक्षा सात तक का होता है। आयोग के अनुसार इस स्तर पर पाठ्यचर्या थोड़ा व्यापक हो जानी चाहिए। इस स्तर पर निम्नलिखित विषयों को निर्धारित किया गया हैं–
   i) **दो भाषाएँ**–
      a) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा,
      b) हिन्दी या अंग्रेजी। (एक तीसरी भाषा का अध्ययन वैकल्पिक आधार पर),
   ii) गणित,
   iii) विज्ञान,
   iv) सामाजिक अध्ययन (इतिहास, भूगोल एवं नागरिक शास्त्र),
   v) कला
   vi) कार्य–अनुभव एवं समाज सेवा,
   vii) शारीरिक शिक्षा एवं
   viii) नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

3) **माध्यमिक स्तर (Secondary Level)**–माध्यमिक स्तर कक्षा आठ से कक्षा दस तक का होता है। इस स्तर पर निम्नलिखित विषयों को निर्धारित किया गया हैं–
   i) तीन भाषाएँ–
      अहिन्दी भाषी क्षेत्रों हेतु
      a) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।
      b) उच्च अथवा निम्न स्तर की हिन्दी।
      c) उच्च या निम्न स्तर की अंग्रेजी।
      हिन्दी भाषी क्षेत्रों हेतु
      a) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।
      b) अंग्रेजी या हिन्दी (यदि अंग्रेजी मातृभाषा के रूप में ली गई हो।)
      c) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा।

Scanned by CamScanner

उपर्युक्त भाषाओं के अतिरिक्त शास्त्रीय भाषा का अध्ययन वैकल्पिक आधार पर किया जा सकता है।
ii) गणित,
iii) विज्ञान,
iv) इतिहास, भूगोल एवं नागरिक शास्त्र,
v) कला
vi) कार्य–अनुभव एवं समाज सेवा,
vii) शारीरिक शिक्षा एवं
viii) नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

4) **उच्चतर माध्यमिक स्तर (Higher Secondary Level)**– उच्चतर माध्यमिक स्तर कक्षा ग्यारह से कक्षा बारह का स्तर है। आयोग ने शिक्षा अवधि के बारे में महत्त्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा है कि 10 वर्षीय सामान्य शिक्षा (विद्यालयी शिक्षा) के बाद एक सार्वजनिक हाई स्कूल (High School) परीक्षा का आयोजन किया जाना चाहिए। इस परीक्षा को उत्तीर्ण करने के बाद छात्र उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए कक्षा ग्यारह में प्रवेश ले सकेंगे। आयोग का मानना है कि इस स्तर पर बालकों का विशिष्ट रुचियों एवं योग्यताओं का निर्माण हो चुका होता है। अतः उन्हें व्यवसाय की ओर अग्रसर किया जा सकता है। इस स्तर पर 50% छात्रों को सामान्य शिक्षा तथा 50% छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाए। सामान्य शिक्षा के विषय इस प्रकार होने चाहिए–
   i) कोई दो भाषाएँ (जिनमें कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा एवं कोई एक शास्त्रीय भाषा सम्मिलित हो।)
   ii) निम्नलिखित में से कोई तीन विषय– एक अतिरिक्त भाषा, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, कला, भौतिकी, रसायनशास्त्र, गणित, जीव विज्ञान, भूगर्भशास्त्र एवं गृह विज्ञान।
   iii) कार्य अनुभव एवं समाज सेवा।
   iv) कला अथवा शिल्प।
   v) शारीरिक शिक्षा।
   vi) नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (National Curriculum for Elementary and Secondary Education)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (N.C.E.R.T.) ने 1988 ई. में प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा हेतु एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का निर्माण किया। इस पाठ्यचर्या के निर्माण में जिन सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक एवं आर्थिक मुद्दों को विशेष ध्यान में रखा गया है उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1) सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण।
2) शैक्षिक अवसरों की समानता।
3) संवैधानिक प्रावधान।
4) चरित्र निर्माण एवं मूल्यों का प्रतिपादन।
5) राष्ट्रीय अस्मिता एवं एकता का सुदृढ़ीकरण।
6) व्यापक सार्वभौमिक दृष्टिकोण।
7) सीमित परिवार का मानदण्ड।
8) पर्यावरण की सुरक्षा एवं राष्ट्रीय संसाधनों का संरक्षण।
9) सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा।
10) भविष्योन्मुख शिक्षा।
11) सृजनात्मक अभिव्यक्ति।
12) शिक्षा का बाल–केन्द्रित उपागम।
13) सामान्य पाठ्यक्रम।
14) अधिगम का न्यूनतम स्तर।
15) संचार माध्यमों एवं शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग।
16) सतत् एवं व्यापक शिक्षा।
17) शिक्षा एवं कार्य संसार के मध्य एकरूपता।
18) वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन।

कक्षा I से X तक अध्ययन विषय

स्तर (Stage)	अवधि (Duration)	विषय (Subject)	समय का आवंटन (Distribution Time)
1) प्रारम्भिक शिक्षा i) प्राथमिक स्तर	8 वर्षीय	i) एक भाषा–मातृभाषा / प्रादेशिक भाषा	30%
		ii) गणित	15%
		iii) पर्यावरण शिक्षा प्रथम एवं द्वितीय	15%
		iv) कार्य–अनुभव	20%
		v) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा	10%
		vi) कला शिक्षा	10%
		कुल	**100%**
ii) उच्च प्राथमिक स्तर	3 वर्षीय	i) तीन भाषाएँ (1968 की शिक्षा नीति के अनुसार)	32%
		ii) विज्ञान	12%
		iii) गणित	12%
		iv) सामाजिक विज्ञान	12%
		v) कार्य–अनुभव	12%
		vi) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा	10%
		vii) कला शिक्षा	10%
		कुल	**100%**
2) माध्यमिक शिक्षा	2 वर्षीय	i) तीन भाषाएँ	30%
		ii) विज्ञान	13%
		iii) गणित	13%
		iv) सामाजिक विज्ञान	13%
		v) कार्य–अनुभव	13%
		vi) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा	9%
		vii) कला शिक्षा	9%
		कुल	**100%**

Scanned by CamScanner

N.C.E.R.T. ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के निर्देशन में 10 वर्षीय सामान्य पाठ्यचर्या का निर्माण किया जिसे विभिन्न स्तरों पर लागू करने का प्रयास किया जा रहा है।

विद्यालयी स्तर पर अध्ययन विषयों के प्रारूप का प्रतिमान (Paradigm of Framing Disciplines at School Level)

यदि हम विविध विषयों के प्रारूप की संरचना पर विचार करते हैं तो विद्यालयी सन्दर्भ में इसका मुख्य सम्बन्ध पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्य–पुस्तक से लगाया जाता है क्योंकि विषयों का सर्वोत्कृष्ट उपयोग इन तीनों व्यवस्थाओं में ही होता है। पाठ्यचर्या में प्रत्येक तथ्यों को क्रमबद्ध एवं सुसंगठित आधार पर प्रस्तुत किया जाता है ताकि पाठ्यचर्या अपने निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल हो सके। इसी प्रकार पाठ्यक्रम के लिए भी उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन समस्त गतिविधियों के मध्य समन्वयन की प्रक्रिया का विकास विषयों के द्वारा ही किया जाता है। इसी प्रकार पाठ्य–पुस्तक का स्वरूप भी क्रमबद्धता, सुसंगठितता तथा वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण के आधार पर ही उत्तम बनता है। अतः विषय की संरचना के आधार पर पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्य–पुस्तक को प्रभावी एवं सर्वोत्तम रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं किन्तु इससे पहले पैराडाइम के विषय में जानना आवश्यक है।

पैराडाइम किसी समस्या, उपकल्पनाओं, विधियों, पद्धतियों, कार्यों मान्यताओं आदि की रूपरेखा का समूह है। पैराडाइम समस्या से सम्बन्धित निष्कर्षों तक पहुँचने का मार्ग, ढाँचा या रूपरेखा है। यह रूपरेखा अत्यन्त व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध होती है। इस प्रकार किसी कार्य के लिए हम जो व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध रूपरेखा बनाते हैं, वही पैराडाइम है। पैराडाइम (Paradigm) शब्द को स्पष्ट करते हुए **'करलिंगर'** ने कहा है, "ग्राफ, रेखाचित्र, शाब्दिक कथन आदि सभी पैराडाइम के अंग हैं।"

करलिंगर ने पैराडाइम को किसी कार्य का ऐसा फ्रेमवर्क या रूपरेखा बताया है, जिसमें अनुसन्धानकर्ता अपने कार्य को नियोजित, व्यवस्थित, संगठित तथा निर्देशित कर निष्कर्षों तक पहुँचने का प्रयास करता है।

होल्ड के अनुसार, "पैराडाइम अनुसन्धान कार्य का एक प्रत्ययात्मक प्रतिमान होता है।"

थ्योडेरसन (Theoderson) ने पैराडाइम को किसी भी कार्य की रूपरेखा (Outline) तथा डिजाइन (Design) का नाम दिया है। यह समस्या के विश्लेषण का एक उपागम (Approach) है तथा समस्या के सन्दर्भ में निष्कर्ष निकालने में सहायता करता है।

थ्योडेरसन के अनुसार, "पैराडाइम किसी समस्या के अध्ययन को न केवल सरल तथा सुगम ही बनाते हैं बल्कि कार्य से सम्बन्धित सभी उपकार्यों को व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध रूप प्रदान करते हैं।"

क्रोनबैक (Croneback) ने भी पैराडाइम की व्यवस्था इन्हीं कार्यों में की है। क्रोनबैक किसी भी कार्य के लिए पैराडाइम को अपरिहार्य मानते हैं। पैराडाइम के अभाव में कार्य कभी भी सीधे प्रकार से बिना किसी बाधाओं के अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच सकता है।

थॉमस कोहन (Thomas Kuhn) ने अपनी पुस्तक **'द स्ट्रक्चर ऑफ सांइटिफिक रिवोल्यूशन' (The Structure of Scientific Revolution)** में पैराडाइम के सम्बन्ध में लिखा है कि, "प्रत्येक समाज और समुदाय की अपनी कुछ विशिष्ट मूल्य, विश्वास, मान्यताएँ या धारणाएँ होती हैं। संक्षिप्ततः इन्हें पैराडाइम कहा जाता है। जहाँ तक कार्यों का सम्बन्ध है अवधारणाओं, नियमों, प्रयोगसिद्ध विधियों आदि के व्यवस्थित तथा अनुशासनात्मक ढाँचे को पैराडाइम कहते हैं।"

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि पैराडाइम किसी कार्य से सम्बन्धित समस्याओं, अवधारणाओं, व्यवस्थाओं, उपकल्पनाओं, प्रविधियों, पद्धतियों की ऐसी रूपरेखा है जो कार्य को व्यवस्थित, क्रमबद्ध रूप प्रदान कर निष्कर्ष निकालने में सहायता प्रदान करती हैं।

पैराडाइम की उपयोगिता (Utility of Paradigm)

शोध कार्य के लिए पैराडाइम की क्या उपयोगिता है, यह बहुत कुछ पैराडाइम के कार्य से ही स्पष्ट हो जाता है फिर भी इसकी उपयोगिता तथा महत्त्व को और अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से इसका उल्लेख निम्नलिखित रूपों में किया जा रहा है–

1) पैराडाइम अनुसन्धान कार्य को व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध रूप प्रदान करते हैं।
2) पैराडाइम कार्य से सम्बन्धित सभी पहलुओं, अवधारणाओं, कल्पनाओं आदि को स्पष्टता प्रदान करते हैं।
3) पैराडाइम कार्य को असम्बन्धित तथा बाधक तत्वों से बचाकर समय व श्रम की बचत करते हैं।
4) अलग–अलग अनुसन्धान कार्य के लिए अलग–अलग पैराडाइम होते हैं जो एक कार्य को दूसरे कार्य से पृथक करते हैं तथा एक शोध कार्य को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं इसलिए एक कार्य का निष्कर्ष दूसरे कार्य के निष्कर्षों से भिन्न होता है।
5) पैराडाइम एक ऐसी आधारशिला का कार्य करते हैं जिस पर पूरा शोधकार्य आधारित होता है।
6) पैराडाइम समस्या के सम्बन्ध में नवीन एवं स्पष्ट दृष्टिकोण प्रदान कर कार्य को सरलता तथा सहजता प्रदान करते हैं।
7) पैराडाइम अनुसन्धान के लिए उपयुक्त योजनाएँ प्रस्तावित करते हैं।
8) पैराडाइम कार्य के परिणामों तथा निष्कर्षों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करने में सहायता करता है। इसके लिए यह भी प्रस्तावित करता है कि प्रस्तुतीकरण के लिए किन तालिकाओं, ग्राफ़ों, रेखाचित्रों तथा तथ्यात्मक वर्णन की आवश्यकता होगी।
9) पैराडाइम कार्य का परिसीमन प्रस्तुत करते हैं। इससे शोध कार्य निर्धारित सीमाओं से बाहर नहीं जाते फलस्वरूप कार्य एक निर्धारित सीमा में सम्पन्न होता है। इससे शोधकार्य असम्बन्धित तथा बाधक तत्वों से बचता है।
10) पैराडाइम किसी भी कार्य के लिए डिजाइन तथा रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि किसी भी शोधकार्य के लिए पैराडाइम न केवल उपयोगी ही है बल्कि आवश्यक एवं अपरिहार्य भी हैं।

Scanned by CamScanner

अध्ययन विषय के रूप में विज्ञान का प्रारूप (Framing of Science as a Discipline)

विद्यालयी स्तर पर अध्ययन विषय के रूप में विज्ञान का प्रारूप निम्न है–

विषय–वस्तु का ज्ञान

1) विज्ञान का परिचय,
2) मानव एवं विभिन्न सजीव प्राणी,
3) पदार्थ की प्रकृति,
4) जीवन निरन्तरता एवं संरक्षण,
5) बल एवं गति,
6) जीवन और ऊर्जा,
7) पर्यावरण सन्तुलन एवं प्रबन्ध,
8) समाज में तकनीकी एवं औद्योगिक विकास, तथा
9) खगोलशास्त्र एवं बाह्य अन्तरिक्ष की खोजें।

1) **विज्ञान का परिचय**
   i) विज्ञान की भूमिका,
   ii) विज्ञान की समझ,
   iii) वैज्ञानिक खोजों की भूमिका,
   iv) भौतिक मात्रा एवं मापन,
   v) वैज्ञानिक अन्वेषण की भूमिका, एवं
   vi) वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं अच्छे मूल्य।

2) **मानव एवं विभिन्न संजीव प्राणी**
   i) कोशिका–जीवन की इकाई
   ii) विभिन्न जीव एवं उनका वर्गीकरण
   iii) विविधता
   iv) पौधों एवं जानवरों का वर्गीकरण
   v) सूक्ष्म जीव और उनका जीवन पर प्रभाव
   vi) सूक्ष्म जीवों का वर्गीकरण एवं महत्त्व

3) **पदार्थ की प्रकृति**
   i) पदार्थ की अवस्था
   ii) पृथ्वी पर विभिन्न संसाधन
   iii) हमारा वायुमण्डल
   iv) जल एवं विलयन
   v) भूमि एवं इसके संसाधन
   vi) पदार्थ एवं तत्व
   vii) कार्बन के घटक

4) **जीवन निरन्तरता एवं संरक्षण**
   i) हमारी इन्द्रियों के माध्यम से दुनिया
   ii) पोषण
   iii) रक्त संचरण एवं परिवहन
   iv) श्वसन
   v) उत्सर्जन
   vi) निषेचन
   vii) वृद्धि
   viii) शारीरिक समन्वय
   ix) आनुवांशिकता एवं विभिन्नता
   x) पोषण एवं भोजन का उत्पादन

5) **बल एवं गति**
   i) गतिकी
   ii) सहयोग एवं संचलन
   iii) गति

6) **जीवन और ऊर्जा**
   i) ऊर्जा के प्रकार एवं उनके स्रोत
   ii) उष्मा एवं उष्मा का संचालन
   iii) विद्युत
   iv) चुम्बकत्व एवं वैद्युत्व चुम्बकत्व
   v) विद्युत उत्पादन एवं विद्युत आपूर्ति
   vi) आणुविक ऊर्जा
   vii) ऊर्जा एवं रसायनिक आवेश
   viii) प्रकाश, रंग एवं दृश्य

7) **पर्यावरण सन्तुलन एवं प्रबन्ध**
   i) जैव विविधता
   ii) जीव निर्भरता एवं पर्यावरण
   iii) पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षा

8) **समाज में तकनीकी एवं औद्योगिक विकास**
   i) शक्ति एवं स्थिरता,
   ii) मशीन,
   iii) इलेक्ट्रॉनिक्स,
   iv) औद्योगिक रसायन,
   v) आहार उत्पादन एवं आहार तकनीकी,
   vi) उद्योगों में प्रयुक्त सिंथेटिक वस्तुएँ, एवं
   vii) इलेक्ट्रॉनिक एवं सूचना प्रसारण तकनीकी।

9) **खगोलशास्त्र एवं बाह्य अन्तरिक्ष की खोजें**
   i) खगोलशास्त्र एवं
   ii) अन्य अन्तरिक्ष विज्ञान।

अध्ययन विषय के रूप में सामाजिक विज्ञान का प्रारूप (Framing of Social Science as a Discipline)

विभिन्न स्तरों के सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम की रूपरेखा के अन्तर्गत विषयों का अध्ययन किया जाता है–

1) **स्थानीय समाज का सामाजिक एवं आर्थिक सर्वेक्षण**–इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दु आते हैं–
   i) परिवार का सामाजिक एवं आर्थिक इकाई के रूप में अध्ययन,
   ii) जलवायु,
   iii) व्यवसाय तथा उद्योग,
   iv) कृषि,
   v) वाणिज्य तथा वाणिज्य से सम्बन्धित व्यवसाय,
   vi) यातायात, एवं
   vii) जनसंख्या का वितरण।

2) **जिले के इतिहास का अध्ययन**

3) **स्थानीय शासन व्यवस्था**

4) **सामुदायिक स्वास्थ्य विज्ञान**

5) **भोजन**–इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का विवेचन किया जाता है–
   i) भोजन के उत्पादन के विभिन्न स्तर,
   ii) स्थानीय फसलों का विवेचन,
   iii) लोगों के रहन–सहन का विवेचना,
   iv) आधुनिक खाद्य व्यवस्था, एवं
   v) सिंचाई व्यवस्था।

Scanned by CamScanner

6) **वस्त्र**–इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पोशाकें या वस्त्र आते हैं–
   i) राष्ट्रीय पोशाक,
   ii) प्राचीन भारत की पोशाकें, एवं
   iii) वस्त्रों के निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री– रूई, खोलें आदि।

7) **आवास**–इसके अन्तर्गत निम्नलिखित आवासों का वर्णन किया जाता है–
   i) विभिन्न युगों में रहने वाले लोगों के आवास
   ii) आवास निर्माण में प्रयोग होने वाली सामग्री
   iii) विभिन्न युगों एवं स्थानों के लोगों के आवास

8) **शक्ति**–इसके अन्तर्गत छात्रों को निम्नलिखित बातों से अवगत कराया जाता है–
   i) मानव–शक्ति
   ii) पशु–शक्ति
   iii) जल–शक्ति
   iv) भाप–शक्ति
   v) अणु–शक्ति

9) **मशीनरी**–इसके अन्तर्गत छात्रों को निम्नलिखित बातों से अवगत कराया जा रहा है–
   i) प्राचीन काल के यन्त्र
   ii) लकड़ी के यन्त्र
   iii) लोहे तथा इस्पात का उत्पादन
   iv) भारत में औद्योगिक क्रान्ति
   v) उद्योगों का विकेन्द्रीकरण

10) **यातायात**–इसके अन्तर्गत छात्रों को निम्नलिखित बातों का अध्ययन कराया जाता है–
   i) समुद्री मार्ग
   ii) भारत में रेलों का विकास
   iii) सड़क यातायात
   iv) प्राचीन काल के संचार साधन
   v) यात्तायात एवं संचार के साधनों का मानव जीवन पर प्रभाव
   vi) भारत के प्राकृतिक भाग

11) **व्यापार**

12) **सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन**–इसके अन्तर्गत छात्रों को निम्नलिखित बातों का अध्ययन कराया जाता है–
   i) सामाजिक विकास के विभिन्न स्तर
   ii) भारतीयों का वर्तमान सामाजिक जीवन
   iii) सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी जातियों का उत्थान
   iv) भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ
   v) भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों की संस्कृति
   vi) गुप्तकालीन संस्कृति
   vii) राजपूत कालीन सभ्यता
   viii) मुस्लिम संस्कृति एवं भारतीय संस्कृति पर उनका प्रभाव
   ix) पाश्चात्य सभ्यता
   x) राजकीय एवं केन्द्रीय स्तर पर शासन–व्यवस्था
   xi) विभिन्न क्रियाएँ
   xii) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति एवं उनका मानव जीवन पर प्रभाव।

विद्यालयी पाठ्यचर्या में अध्ययन विषय के रूप में भाषा का प्रारूप (Framing of Language as a Discipline)

विद्यालयी पाठ्यचर्या में अध्ययन विषय के रूप में भाषा का प्रारूप निम्न हैं–

1) संज्ञा	2) सर्वनाम
3) विशेषण	4) कारक
5) क्रिया	6) उपसर्ग और प्रत्यय
7) शब्द–विलोम	8) विराम चिह्न
9) वचन	10) काल
11) लिंग	12) मुहावरे और लोकोक्तियाँ
13) वाक्याँशों के लिए एक शब्द	14) सन्धि
15) समास	16) पत्र–लेखन

हिन्दी साहित्य का प्रारूप (Framing of Hindi literature)

कविता–वह चिड़िया जो, हम पंछी उन्मुक्त गगन के, एक तिनका आदि।

कहानी–नादान दोस्त, लाख की चूड़ियाँ, जब सिनेमा ने बोलना सीखा, शाम एक किसान आदि।

यात्रा–वृत्तांत–बस की यात्रा.....आदि।

संस्मरण–बचपन, वीर कुँवर सिंह, चिट्ठियों की अनूठी दुनिया।

निबन्ध–कामचोर नौकर, मिठाईवाला, अक्षरों का महत्त्व।

एकांकी–ऐसे–ऐसे आदि।

अन्तःविषय, बहुविषय एवं ट्रान्सविषयी उपागम (INTERDISCIPLINARY, MULTIDISCIPLINARY AND TRANSDISCIPLINARY APPROACH)

प्रश्न 6– अन्तःविषय उपागम पर विस्तृत लेख लिखिए।
Write a detailed note on Interdisciplinary Approach.

या (or)

अन्तःविषय उपागम की अवधारणा स्पष्ट कीजिए। अन्तःविषय उपागम की विशेषताओं, आवश्यकता एवं महत्त्व की विवेचना कीजिए।
Explain the concept of Interdisciplinary Approach. Discuss the characteristics, need and importance of Interdisciplinary Approach.

या (or)

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
Write short notes on the following:

1) **अन्तःविषय उपागम की विशेषताएँ (Characteristics of Interdisciplinary Approach)**
2) **अन्तःविषय उपागम की बाधाएँ (Barriers of Interdisciplinary Approach)**
3) **अंतःविषय उपागम के लाभ (Advantages of Interdisciplinary Approach)**

उत्तर– अन्तःविषय उपागम की अवधारणा (Concept of Interdisciplinary Approach)

अन्तःविषयक या अन्तर्विषयक विषय से अभिप्राय दो या दो से अधिक अकादमिक, वैज्ञानिक या कलात्मक विषयों का आपस में

Scanned by CamScanner

सम्मिलित होना अर्थात् विभिन्न विषयों के मध्य अन्तःसम्बन्ध (सह–सम्बन्ध) स्थापित होना। इसके तहत विस्तृत स्तर पर प्रैक्टिकल एवं प्रासंगिक (Relevant) विषयों को पाठ्यचर्या में सम्मिलित कर छात्रों को आवश्यक विषयों एवं समाज का एक साथ अधिगम कराया जाता है।

अन्तःविषयक उपागम छात्रों को विषयों को अधिक गहराई से समझने, अन्वेषण करने आदि के लिए जिज्ञासु बनाती है। इसमें वे विषय का ज्ञान एकांगी रूप से नहीं प्राप्त करते हैं बल्कि वे उसके व्यावहारिक पक्ष को भी समझते हैं। इसमें केवल कला वर्ग या साहित्यिक विषय नहीं आते बल्कि विज्ञान वर्ग के विषयों को भी सम्मिलित किया जाता है।

अन्तःविषय (Interdisciplinary) शब्द शिक्षा एवं शैक्षणिक प्रशिक्षण में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग परम्परागत अध्ययन क्षेत्रों एवं कुछ विषयों की स्थापना में आन्तरिक रूप से तथा विधियों में प्रयोग किया जाता है। अन्तःविषय में शोधकर्ता, शिक्षार्थी एवं शिक्षा के एक लक्ष्य से जुड़े होते हैं और इसमें एकीकृत कुछ शैक्षिक विद्यालयों के विचार एवं व्यवसाय तथा तकनीकी सम्मिलित होती है।

इसमें अनेक शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं, अध्यापकों और विद्यार्थियों की एक ही कार्य में अनुभव की गयी विचारधाराएँ संयुक्त की जाती है जिससे एड्स (AIDS) एवं ग्लोबल वार्मिंग (Global Warming) जैसे जटिल विषयों की समस्याओं को हल करने के तरीके प्राप्त हो सकें।

अन्तःविषय शिक्षा के उन क्षेत्रों में अधिकतर प्रयोग किया जाता है जहाँ शोधकर्ता दो या दो से अधिक विषयों पर अपने उपागमों का प्रयोग करते हैं और उन्हें संशोधित करके समस्या रहित सर्वश्रेष्ठ रूप में विचारों को प्रस्तुत करते हैं। इसी क्रम में विद्यार्थियों को शिक्षण के माध्यम से अनेक पारम्परिक विषयों का ज्ञान दिया जाता हैं तो उसके साथ–साथ जैविक विज्ञान, रसायन विज्ञान, अर्थशास्त्र, भूगोल और राजनीति विज्ञान की भी शिक्षा प्रदान की जाती है।

अन्तःविषयों का विकास (Interdisciplinary Development)

अन्तःविषय शब्द का प्रयोग बीसवीं शताब्दी में किया गया था। इसकी अवधारणा ग्रीक दर्शन के आधार पर इतिहास से ली गई है।

जूली थामसन किलिन (Julie Thompson Kleen) के अनुसार, "इस अवधारणा की जड़ में बहुत से विचार स्थित थे जो परस्पर वार्तालाप के द्वारा समझ में आ रहे थे। ये विचार जो सर्वकालिक विज्ञान, सामान्य ज्ञान, विषयों के मिश्रण एवं ज्ञान के एकीकरण पर आधारित थे।" वास्तविकता यह है कि किसी भी उदारवादी मानवीय परियोजना से अन्तःविषय सम्मिलित होता है। इतिहास बताता है कि सत्रहवीं शताब्दी में भाषण, अर्थशास्त्र, प्रबन्धन, नैतिकता, कानून, दर्शन, राजनीति आदि में एक सार्वभौमिक व्यवस्था का निर्माण हुआ था।

परम्परागत अध्ययन विषय महत्त्वपूर्ण समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ होते है, उसी में से अन्तःविषय प्रोग्राम कभी–कभी उभरकर सामने आते हैं। **उदाहरण के लिए–** सामाजिक विज्ञान जैसे अध्ययन विषय से **मानवशास्त्र** (Anthropology) एवं **समाजशास्त्र** (Sociology) जैसे विषय उभरकर आए जिसमें बहुत कम सामाजिक विश्लेषण की तकनीकी पर बीसवीं शताब्दी में ध्यान दिया गया। इसके परिणामस्वरूप बहुत से समाजशास्त्रियों ने तकनीकी में रुचि ली और विज्ञान एवं तकनीकी अध्ययन के कार्यक्रमों से जुड़ गए। इससे नए अनुसन्धान विकास क्षेत्र उभर कर आए जैसे – नैनो टैक्नोलॉजी जिसका पता दो या दो अधिक अध्ययन विषय वर्ग के उपागमों के जुड़े बिना नहीं चल सकता है। **उदाहरण के लिए–** Quantum Information Processing में Quantum Physics एवं Computer Science एवं Bio-Informatics जिसमें Molecular Biology Computer Science के साथ जुड़े हुए हैं, उनका एकीकरण सम्मिलित है। संपोषणीय विकास शोध का एक क्षेत्र है जिसकी आवश्यकता आर्थिक, सामाजिक एवं वातावरणीय चक्र को पार कर समस्याओं के समाधान में पड़ती हैं। अधिकांशतः यह एक सामाजिक एवं प्राकृतिक विज्ञान विषयों का गुणात्मक एकीकरण है। बहुविषयक अनुसन्धान स्वास्थ्य विज्ञान के अध्ययन की कुँजी है।

उदाहरण के लिए– जब हम किसी बीमारी की रोकथाम के लिए बहुत से अध्ययन उच्च शिक्षा संस्थानों में करते हैं तो यह स्नातक कार्यक्रम अन्तःविषयों का अध्ययन कहलाता है। अन्तःविषय के अन्तर्गत किसी विशेष क्षेत्र में नुकसानदायक प्रभावों की अधिकता को दूर करने का स्तर देखा जाता है। इसमें एक ही विशेषज्ञ क्षेत्र की कमियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। अन्तःविषय में बिना विशेषज्ञ के एक क्षेत्र का अध्ययन किया जाता है। इसमें विश्लेषक की सलाह की आवश्यकता नहीं होती है। जब अन्तःविषय अनुसन्धान के परिणाम से समस्या का नया समाधान निकलता है तो यह जानकारी बहुत से विषयों को दी जाती है जो उससे जुड़े हैं।

अन्तःविषय उपागम की विशेषताएँ (Characteristics of Interdisciplinary Approach)

अन्तःविषय की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1) अन्तःविषय उपागम छात्रों में जिज्ञासु प्रवृत्ति उत्पन्न करती है।
2) छात्रों को चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाती है।
3) छात्रों को बौद्धिक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्रदान कर आत्मविश्वास का विकास करती है।
4) छात्रों को व्यक्तिगत एवं सहयोगात्मक रूप से कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करती है।
5) छात्रों को विषय क्षेत्रों और विषयों को अलग–अलग दृष्टिकोण से समझने में सक्षम बनाता है।
6) छात्रों को अधिगम, जीवन और काम के लिए कौशल के विकास में सहायता प्रदान करता है।
7) एक साथ विभिन्न विषयों और अन्तःविषयक सम्बन्ध को समझने में सक्षम बनाता है।
8) छात्रों में तुलनात्मक अध्ययन को बढ़ावा प्रदान करता है।

अन्तःविषय उपागम की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Interdisciplinary Approach)

अन्तःविषय ज्ञान की आवश्यकता ज्ञान के विस्तार के कारण बढ़ गयी है। वर्तमान शैक्षणिक विषयों, या व्यवसायों में अन्तःविषय ज्ञान सम्मिलित होता है। नया ज्ञान कोई नवीन वस्तु नहीं है। वह तो एक उभरता हुआ विषयगत वर्ग होता है। जीवन में व्यक्ति बहुत सी चुनौतियों का सामना करता हैं, प्रश्न यह है कि क्या नया ज्ञान इन चुनौतियों से लड़ने के लिए व्यक्ति को

Scanned by CamScanner

सक्षम बनाता है या नहीं अथवा क्या यह नया ज्ञान चुनौतियों से निपटने के लिए उपयुक्त है? मौजूदा विषयगत पहलुओं के साथ एवं उपलब्ध ज्ञान की सहायता से इन उभरती हुई चुनौतियों को शायद पूरा नहीं किया जा सकता है और इन चुनौतियों को पूरा करने के लिए व्यक्ति को नए ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि व्यक्ति के जीवन में चुनौतियाँ बढ़ती जा रही हैं और उनको पूरा करना काफी कठिन होता जा रहा है। अंतःविषय ज्ञान और अनुसंधान महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि–

1) रचनात्मकता को अक्सर अंतःविषय ज्ञान की आवश्यकता होती है।
2) अप्रवासी अक्सर अपने नए क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।
3) अध्ययन विषय अक्सर त्रुटियों को दोहराते हैं जिन्हें दो या दो से अधिक विषयों से परिचित लोगों द्वारा सबसे अच्छा पता लगाया जा सकता है।
4) परंपरागत विषयों में अंतर के आधार पर अनुसंधान के कुछ महत्त्वपूर्ण विषय आते हैं।
5) कई बौद्धिक, सामाजिक, और व्यावहारिक समस्याओं के अंतःविषय दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।
6) अंतःविषय ज्ञान और शोध हमें एकता–के–ज्ञान आदर्श की याद दिलाने के लिए कार्य करता है। अन्तःविषय अपने शोध में अधिक लचीलेपन का आनंद लेते हैं।
7) अधिक संकीर्ण अध्ययन विषय की तुलना में, अंतःविषय छात्रवृत्तियाँ अक्सर नए देशों में यात्रा करने के बौद्धिक समकक्षों के साथ खुद को पेश करती हैं।
8) अंतःविषय आधुनिक अकादमी में भंग संचार अंतराल की सहायता कर सकते हैं, जिससे बड़ी सामाजिक समझदारी और न्याय के कारण अपने विशाल बौद्धिक संसाधनों को जुटाने में मदद मिलती है।
9) विखंडित विषयों को तोड़ने से, अंतःविषय शैक्षणिक स्वतंत्रता की रक्षा में भूमिका निभा सकते हैं।

अंतःविषय उपागम के लाभ (Advantages of Interdisciplinary Approach)

अंतःविषय उपागम के निम्नलिखित लाभ हैं–

1) अंतःविषय अध्ययन के लिए सबसे प्रभावी दृष्टिकोण छात्रों को उनके लिए समझ बनाने वाले पाठ्यक्रमों को चुनकर अपने स्वयं के अंतःविषय मार्ग का निर्माण करने में सक्षम बनाता है। **उदाहरण के लिए**– साहित्य, कला और इतिहास या विज्ञान और गणित में अनुशासनात्मक सीमाओं को पार करने वाला विषय ढूंढना बहुत मुश्किल नहीं है। विषयों को अंतःविषय रूप में अध्ययन करना विषयों को एक साथ विचार लाने का एक तरीका है, जिसके परिणामस्वरूप और अधिक सार्थक तरीके से सीखा जा सकता है। यह छात्रों को अपने स्वयं के विषयों का चयन करने की इजाजत देता है और जब वे अलग–अलग विषयों में वे क्या सीख रहे हैं, के बीच संबंधों को प्रतिबिंबित करते हैं तो उनकी शिक्षा गहराई से होती है।
2) छात्रों को बहुत प्रेरित किया जाता है क्योंकि उनके पास उन विषयों का पीछा करने में जो निहित स्वार्थ होता है जो उनके लिए दिलचस्प हैं। नतीजतन, सामग्री अक्सर जीवन के अनुभवों में निहित होती है, जो सीखने के लिए एक प्रामाणिक उद्देश्य देती है और इसे एक वास्तविक दुनिया के संदर्भ से जोड़ती है। नतीजतन, सीखना सार्थक, उद्देश्यपूर्ण और गहराई से सीखने वाले अनुभवों का परिणाम होता है जो छात्र के साथ एक जीवनकाल के लिए रहते हैं।
3) छात्र अधिक गहराई में विषयों को सीखते हैं क्योंकि वे एकसाथ कई और विविध दृष्टिकोणों पर विचार कर रहे होते हैं।
4) छात्र कई दृष्टिकोणों से विचारों को संश्लेषण करके और ज्ञान प्राप्त करने का एक वैकल्पिक तरीका सीखते हुए सीखना शुरू करते हैं।
5) विषय सीमाओं की एक श्रृंखला में विषयों की खोज से छात्रों को विभिन्न विषय क्षेत्रों में नए ज्ञान का पीछा करने के लिए प्रेरित करता है।
6) महत्त्वपूर्ण सोच, संश्लेषण और अनुसन्धान के हस्तांतरणीय कौशल विकसित किए गए हैं और भविष्य के सीखने के अनुभवों के लिए लागू हैं।
7) अंतःविषय ज्ञान और विभिन्न विषयों के आवेदन से अधिक रचनात्मक हो गई है।

अन्तःविषय उपागम की बाधाएँ (Barriers of Interdisciplinary Approach)

अन्तःविषय की बाधाएँ निम्नलिखित हैं–

1) अन्तःविषय अनुसन्धानों के अधिकांश सहभागी परम्परागत अध्ययन विषयों में प्रशिक्षित होते हैं। वे विभिन्न विधियों एवं यथार्थ चित्रण को समझ नहीं सकते हैं। एक अन्तःविषयी कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसके सदस्य उस अध्ययन विषयों को जैसा है वैसा ही रहने देना चाहते हैं। इस प्रकार उनमें अपने परम्परागत अध्ययन विषयों के प्रति कठोर अभिवृत्ति होती है।
2) दूसरी ओर यदि लोग अपने परम्परागत अध्ययन विषय वर्ग के प्रति यथार्थ एवं स्पष्ट चित्रण रखते हैं तो वे कम कठोर होते हैं तथा उनमें लचीलेपन की प्रवृत्ति होती है। तभी अन्तःविषय के कार्यों को वे देख पाते हैं और उससे अभिप्रेरित हो पाते हैं। यह विश्वास एक बाधा है जो अन्तःविषय कार्यों के रास्ते की रुकावट है। अन्तःविषय अनुसन्धानकर्ता के लिए अपने अनुसन्धान कार्य को करना एक कठिन अनुभव होता है। अन्तःविषय अनुसन्धानों में अनुसन्धानकर्ता किसी प्रकार का वादा नहीं करते हैं क्योंकि वे प्राप्त परिणामों से पूर्णतया अनभिज्ञ होते हैं।
3) यदि अन्तःविषयों को पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त न हो तो कई बार अन्तःविषयी कार्यक्रम असफल भी हो सकता है। **उदाहरणार्थ**– अन्तःविषय के लिए जो संकाय नियुक्त किया जाता है वह दोनों अर्थात् परम्परागत अध्ययन विषयों एवं अन्तःविषय क्षेत्र के लिए उत्तरदायी माना जाता है। **जैसे**– अन्तःविषय के कार्यक्रम महिलाओं का अध्ययन एवं परम्परागत अध्ययन विषय जैसे– इतिहास।
4) परम्परागत अध्ययन विषय में अपने विषयगत अधिकार के आधार पर निर्णय लिए जाते हैं जबकि अन्तःविषय कार्यक्रमों में झिझक रहित होकर कार्य में नवीनता के अनुसार निर्णय लेना चाहता है। इस प्रकार दोनों के मध्य एक बाधा उत्पन्न हो जाती है।

Scanned by CamScanner

5) एक अन्य समस्या यह भी होती है कि ज्यादातर विद्यालयी जर्नल परम्परागत अध्ययन विषयों पर प्रकाशित होती है जो उसी विषय के प्रत्यक्षीकरण का नेतृत्व करते हैं जबकि अन्तःविषय जर्नल का प्रकाशन कार्य कम होता है और इन अनुसन्धानिक कार्यों को छपवाना भी कठिन होता है।

6) अधिकांश परम्परागत अध्ययन विषयों के लिए विश्वविद्यालयों में संसाधन उपलब्ध होते हैं, उनके लिए बजट की व्यवस्था होती है। अधिकांश छात्र परम्परागत अध्ययन विषय से जुड़े होते हैं। उनमें शिक्षकों को वेतन प्रदान किया जाता है। शिक्षण एवं अनुसन्धानों के लिए संसाधनों की व्यवस्था की जाती है जबकि नए अन्तःविषय कार्यक्रमों के लिए न तो बजट उपलब्ध होता है और न ही संसाधन उपलब्ध होते हैं।

प्रश्न 7– निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
Write short notes on the following:

1) **बहु अध्ययन विषय उपागम (Multidisciplinary Approach)**
2) **ट्रान्स अध्ययन विषय के एकीकरण के तरीके (Ways of Transdisciplinary Integration)**

उत्तर– बहु अध्ययन विषय उपागम (Multidisciplinary Approach)

बहुअध्ययन विषय (MultiDiscipline) का ज्ञान एक से अधिक शैक्षिक विषयों एवं व्यवसायों का संयुक्त संगठन है। यह परियोजना विभिन्न शैक्षिक विषयों तथा व्यवसायों के लिए बनाई जाती है। इसमें सभी लोग एक साथ एक सामान्य चुनौती से जुड़े होते हैं। बहुविषय व्यक्ति विभिन्न शैक्षिक विषयों में एक से अधिक डिग्री रखता है। वह अतिरिक्त समय में (Overtime) कार्य करता है। वह किसी शैक्षिक विषय में कभी अधिक कार्य करता है और किसी शैक्षिक विषय में कम। वह कई कार्यों को पूरा करके समुदाय में अपने ज्ञान का वितरण करता है। किसी एक व्यक्ति के लिए कई कार्य करना एक प्रकार से काफी चुनौतीपूर्ण हो जाता है क्योंकि एक व्यक्ति एक कार्य को ही ठीक प्रकार से कर पाता है। बहुविषयी समुदाय अधिक विशिष्ट कठिन तथा प्रभावशाली होते हैं।

ऐसे बहुत से उदाहरण है जिसमें एक व्यक्ति विभिन्न शैक्षिक विषयों में पारंगत होते हैं। बहुविषयी उपागम भविष्य को नवीन आकार प्रदान करने में लोगों की सहायता करता है। बहुविषयी उपागम व्यक्तियों को अधिक क्रियाशील बननें के लिए प्रोत्साहित करता है। नवीन तकनीकी के क्षेत्र में इस प्रकार के बहुविषयी बहुत से व्यक्ति मिल जाते है जिन्हें एक से अधिक विषयों की जानकारी होती है और वे उस ज्ञान का प्रयोग करके केवल अपनी योग्यता का ही परिचय नहीं देते हैं बल्कि चुनौतियों का भी सामना करते हैं। बहुविषयी व्यक्ति बहुप्रतिभाधनी (Multitalented) होते हैं, विभिन्न व्यवसायों में इस प्रकार के व्यक्तियों की अधिक माँग होती है क्योंकि वे एक से अधिक व्यक्तियों का स्थान ग्रहण करने के योग्य होते हैं। वे एक से अधिक विषयों में विशेष समझ तथा योग्यता रखते हैं।

ट्रान्स अध्ययन विषय उपागम (TransDisciplinary Approach)

समस्त अन्तःविषय प्रयासों के संघ के रूप में ट्रान्स विषय (Trans-Disciplinary) के विषय में विचार किया जा सकता है। अन्तःविषय टीमों में उपस्थित कई विषयों के मध्य नया ज्ञान निहित होता है जिसे उत्पन्न किया जाता है। एक ट्रान्स विषयी टीम एक सन्यत्र है ये सभी विषयों को सम्बन्धित करने का प्रयास करती है। ट्रान्स विषय एक प्रकार से अन्य अन्तःविषयों का संघ है। इसमें अन्तःविषयी टीम नया ज्ञान उत्पन्न कर सकती है। चूँकि ज्ञान एक इकाई है तथा शिक्षा का उद्देश्य बालकों को ज्ञान की इस इकाई से परिचित कराना है। शिक्षा का यह उद्देश्य पाठ्य–विषय को अलग–अलग रूप में पढ़ाने से पूरा नही हो सकता है अर्थात् यह कार्य तभी पूरा हो सकता है जब विषयों को एक–दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाए और इस प्रकार सम्बन्धित किया जाए जिससे नया ज्ञान उत्पन्न हो जाए। ट्रान्स विषयी एक संघ के रूप में शिक्षा के इसी उद्देश्य को पूरा करता है। यह एक संघ के रूप में सभी अन्तःविषयों को सम्बन्धित स्वरूप प्रदान कर देता है। इससे ज्ञान को समयबद्ध रूप में प्रदान करना भी आसान हो जाता है। विभिन्न अन्तःविषयों में नया ज्ञान छिपा होता है इन विषयों की टीम के माध्यम से व्यक्ति एक नवीन ज्ञान से परिचित होता है। यह नवीन ज्ञान व्यक्ति को नई रोशनी तथा नए उद्देश्य प्रदान करता है जो अन्य विषयों से सर्वथा भिन्न स्वरूप लिए होते है।

ट्रान्स अध्ययन विषय के एकीकरण के तरीके (Ways of Transdisciplinary Integration)

ट्रान्स अध्ययन विषय के एकीकरण के निम्नलिखित दो तरीके है–

1) **परियोजना आधारित शिक्षण (Project-Based Learning)**–परियोजना आधारित शिक्षा में, छात्रों को एक स्थानीय समस्या से निपटने के लिए तैयार किया जाता है। कुछ स्कूल इसे समस्या–आधारित शिक्षा या स्थान–आधारित शिक्षा भी कहते हैं चार्ड (1998) के अनुसार, परियोजना आधारित शिक्षण पाठ्यक्रम योजना में तीन चरण शामिल हैं–
   i) शिक्षक और छात्र हितों, पाठ्यक्रम मानकों और स्थानीय संसाधनों के आधार पर अध्ययन का विषय चुनते हैं।
   ii) शिक्षक यह पता लगाता है कि छात्र पहले से क्या जानते हैं और उन्हें पता लगाने के लिए सवाल उत्पन्न करने में मदद करता है। शिक्षक छात्रों के लिए संसाधन प्रदान करता है और क्षेत्र में काम करने के अवसर भी प्रदान करता है।
   iii) छात्र अपने काम को एक दूसरे की गतिविधियों के साथ साझा करते हैं। छात्र अपने अन्वेषण के परिणाम प्रदर्शित करते हैं और परियोजना का मूल्यांकन करते हैं एवं मूल्यांकन करते हैं।

   परियोजना आधारित कार्यक्रमों के अध्ययन से पता चलता है कि छात्रों को न्यूनतम प्रयास से कहीं अधिक दूर, खुले प्रश्नों के उत्तर देने के लिए विभिन्न विषय क्षेत्रों के बीच कनेक्शन बनाते हैं, उन्होंने जो कुछ सीख लिया है, वास्तविक जीवन की समस्याओं के बारे में सीखने को लागू करते हैं, कम अनुशासन की समस्याएँ होती हैं।

2) **पाठ्यचर्या तय करना (Constructing the Curriculum)**–ट्रान्स अध्ययन विषय उपागम के इस प्रकार में, छात्र पाठयक्रम के लिए आधार बनाते हैं। रेडनर, पेनसिल्वेनिया के मार्क स्प्रिंगर ने छात्र के साथ एक एकीकृत पाठयक्रम पर बातचीत की। स्प्रिंगर ने 11 वर्षों

Scanned by CamScanner

तक राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञात वाटरशेड कार्यक्रम का नेतृत्व किया। उनके वर्तमान पाठयक्रम, कार्यक्रम ध्वनि हैं। ध्वनि के क्षेत्र में, 8 वीं कक्षा के छात्र अपने स्वयं के पाठयक्रम, शिक्षण विधियों, और रुचि के क्षेत्रों के आसपास के मूल्यांकन का विकास करते हैं। विद्यार्थियों ने विकसित की गई थीम्स में हमारी संस्कृति में हिंसा, हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले चिकित्सा मुद्दों एवं विदेशी वातावरण जीवित रहने में शामिल हैं।

साउंडिंग्स प्रोग्राम जेम्स बीन (1990/1993, 1997) के काम पर आधारित है, जो व्यक्तिगत विकास और सामाजिक मुद्दों के चारों ओर घूमने वाले विषय अध्ययनों का समर्थन करता है। मानकीकृत परीक्षणों पर, ध्वनि के छात्रों ने इस कार्यक्रम के बारे में जो छात्र कार्यक्रम में भाग नहीं लिया है, उसी के रूप में करते हैं। माता–पिता कार्यक्रम के बारे में बहुत सकारात्मक हैं, और उच्च विद्यालय के शिक्षक रिपोर्ट करते हैं कि वाउन्डिंग्स के स्नातक ऐसे कार्यक्रमों पर चर्चा करते हैं जो कार्यक्रम में नहीं होते हैं।

अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्ष (MODERN ASPECTS OF DISCIPLINES)

प्रश्न 8– अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों से आप क्या समझते हैं? अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों का कार्यक्षेत्र एवं आधार बताइए।

What do you understand by modern aspects of Disciplines? Describe the scope and base of the modern aspects of Disciplines.

या (or)

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

Write short notes on the following:

1) **अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों की आवश्यकता (Need of Modern Aspects of Disciplines)**
2) **विषयों के आधुनिक पक्षों के आधार (Bases of Modern Aspects of Disciplines)**

उत्तर– अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्ष से तात्पर्य उस व्यवस्था या प्रणाली से है जिसका उद्देश्य वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ भविष्य की समस्याओं के निराकरण से भी है। **जैसे**– वर्तमान में दी जाने वाली नैतिक मूल्यों की शिक्षा जहाँ वर्तमान में समाज में मानवीय मूल्यों को स्थापित करती है तो दूसरी ओर एक सुन्दर भविष्य का निर्माण करती है।

इस प्रकार शिक्षा प्रणाली में जब भविष्यगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर गतिविधियाँ या पाठ्यक्रम का स्वरूप निर्धारित किया जाता है तो इसे शिक्षा में विषयों के आधुनिक पक्ष के नाम से जाना जाता है। अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों को विद्वानों द्वारा निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया गया है।

श्रीमती आर.के. शर्मा के अनुसार, " अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों का आशय उस शिक्षण नीति से है जो कि बालकों के सर्वांगीण विकास, सृजनात्मक चिन्तन एवं नवाचारों से सम्बन्धित होती है तथा भविष्यगत् समस्याओं के समाधान हेतु कौशलों का विकास करती है।"

प्रो. एस.के. दुबे के शब्दों में, " अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों का आशय उस व्यवस्था से है 'जो वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्यगत समस्याओं के समाधान का कौशल विकसित करे तथा क्रान्तिकारी परिवर्तन की क्षमता विकसित करे।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्ष वर्तमान आवश्यकताओं के साथ–साथ भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तथा मानव के भविष्य को सुरक्षित करते हैं। अभिभावक विद्यालय में छात्र को इसलिए भेजते हैं ताकि उसका भविष्य सुरक्षित रहे। इसलिए विद्यालय में शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत उन सभी माँगों की पूर्ति का प्रयास करना चाहिए जो भविष्य से सम्बन्धित हैं, **जैसे**– वर्तमान समय में पर्यावरणीय शिक्षा भविष्य एवं वर्तमान दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है तथा पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान की योग्यता छात्रों में विकसित करती है।

अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों की आवश्यकता (Need of Modern Aspects of Disciplines)

शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण समाज की वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है, जबकि कई बार इससे भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए शिक्षाशास्त्रियों द्वारा एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की गई जो वर्तमान एवं भविष्य दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। विषयों के आधुनिक पक्ष मानव की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अतः विषयों के आधुनिक पक्षों की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1) **सामाजिक विकास के लिए**–विषयों के आधुनिक पक्षों के अन्तर्गत किसी भी रूढ़िवादी परम्परा एवं सामाजिक बुराइयों को धीरे–धीरे समाज से समाप्त किया जाता है तथा नवीन विचारों का समावेश किया जाता है जिससे सामाजिक विकास की प्रक्रिया अनवरत् रूप से चलती रहे। **जैसे**– समाज में बाल विवाह, दहेज प्रथा एवं लिंग भेद सम्बन्धी समस्याओं को धीरे–धीरे समाप्त करते हुए आधुनिक विचारधारा का समावेश किया गया है।

2) **राजनीतिक विकास के लिए**–प्रजातान्त्रिक मूल्यों की स्थापना एवं प्रजातान्त्रिक सरकार का गठन भी विषयों के आधुनिक पक्षों द्वारा ही सम्भव होता है। वर्तमान समय में सुधारवादी एवं विकासवादी लहर से राजनीतिक व्यवस्था भी पृथक नहीं है। सामान्यतः सम्पूर्ण विश्व में तानाशाही एवं राजतन्त्र की लगभग समाप्ति हो चुकी है क्योंकि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में जब शिक्षित व्यक्ति पहुँचते हैं तो उसमें उदारवादिता आ जाती है।

3) **आर्थिक विकास के लिए**–विषयों के आधुनिक पक्षों में सन्तुलित आर्थिक विकास की अवधारणा छिपी है। इसमें सामान्य रूप से औद्योगिक विकास की गति को समाज की आवश्यकता के अनुरूप किया जाता है। अत्यधिक औद्योगिक विकास मानवीय हितों के लिए तथा पर्यावरणीय संरक्षण के लिए हानिकारक होता है। आर्थिक विकास की

Scanned by CamScanner

गति को सन्तुलित बनाने में शिक्षा की ही भूमिका होती है तथा आर्थिक विसंगतियों को भी विषयों के आधुनिक पक्षों के द्वारा दूर किया जा सकता है।

4) **पोषणीय विकास के लिए**–पोषणीय विकास के लिए भी विषयों के आधुनिक पक्षों की आवश्यकता होती है। इसमें प्रत्येक संसाधन का उपयोग करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि इस संसाधन की उपलब्धता भविष्य में भी बनी रहे। प्राकृतिक संसाधनों के सन्दर्भ में यह शिक्षा पूर्णतः प्रभावी रूप से लागू होती है।

5) **सांस्कृतिक विकास के लिए**–विषयों के आधुनिक पक्षों में सांस्कृतिक विकास का तत्व भी समाहित होता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में मूल्य एवं आदर्शों की भावना इसलिए समाहित होती है क्योंकि भारतीय संस्कृति के प्रमुख स्तम्भ आदर्श एवं मूल्यों को ही माना जाता है। प्रत्येक संस्कृति के महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी तत्वों को संकलन कर एक वैश्विक संस्कृति के विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

6) **व्यावसायिक एवं तकनीकी विकास के लिए**–विषयों के आधुनिक पक्षों में सदैव नवीन तकनीकी एवं नवाचार का स्वागत किया जाता है। इससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया एवं शिक्षा व्यवस्था में शैक्षिक तकनीकी का व्यापक रूप से प्रयोग होता है। इसके साथ ही सामान्य शिक्षा के साथ–साथ छात्रों को व्यवसाय विशेष के लिए भी तैयार किया जाता है। इस आधार पर छात्र अपने जीवन में उस व्यवसाय को चुनने का कार्य करता है जो उसकी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार होता है। इस प्रकार अनुशासन के आधुनिक पक्ष व्यावसायिक एवं तकनीकी विकास के लिए उचित निर्देशन एवं परामर्श का मार्ग प्रशस्त करती है।

7) **मानवीय मूल्यों एवं सार्वजनिक हित का विकास**–विषयों के आधुनिक पक्षों का प्रमुख उद्देश्य मानवीय मूल्यों एवं सार्वजनिक हित का विकास करना है क्योंकि अनेक अवसरों पर देखा जाता है कि शिक्षित व्यक्ति का आचरण भी अमानवीय एवं अमर्यादित होता है। इसलिए छात्रों का दृष्टिकोण व्यापक बनाने के साथ–साथ वर्तमान एवं भविष्य दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। मानवीय मूल्यों के गिरते हुए स्तर एवं स्वार्थवादिता को दूर करने के लिए वर्तमान में किए गए प्रयास ही भविष्य में अपना प्रभाव दिखाते हैं। इस प्रकार सार्वजनिक हित का विकास सम्भव हो पाता है।

8) **सर्वांगीण विकास के लिए**–विषयों के आधुनिक पक्षों में छात्रों के वर्तमान विकास के साथ–साथ उनके भविष्यगत विकास पर भी ध्यान दिया जाता है। छात्रों को शारीरिक शिक्षा इसलिए प्रदान की जाती है ताकि वह शारीरिक रूप से स्वस्थ रहें तथा मानसिक विकास की ओर अग्रसर हो। इस आधार पर छात्र अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफल होते हैं तथा उसके सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि विषयों के आधुनिक पक्ष वर्तमान एवं भविष्य दोनों के लिए आवश्यक हैं जो शिक्षा वर्तमान में सुधार करती है उसका प्रभाव भविष्य पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। वास्तविक रूप से विषयों के आधुनिक पक्ष दूरगामी सोच एवं परिणामों के बारे में विचार करते हैं और हमारे सर्वांगीण विकास का आधार होते हैं।

अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों का कार्यक्षेत्र (Scope of Modern Aspects of Disciplines)

विषयों के आधुनिक पक्षों का क्षेत्र बहुत व्यापक माना जाता है क्योंकि इसके द्वारा मानव के प्रत्येक पक्ष को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया जाता है। इसमें उन परिकल्पनाओं को स्थान दिया जाता है जो कि मानव की विभिन्न गतिविधियों से सम्बन्धित होती हैं। **जैसे**– बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करना, भविष्यगत विकास एवं समाज की भविष्यगत माँग से सम्बन्धित है जिसे वर्तमान में प्रभावी रूप से लागू करने पर उसके सार्थक प्रभाव एवं परिणाम सामाजिक व्यवस्था पर दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

अतः विषयों के आधुनिक पक्षों के प्रमुख कार्य क्षेत्रों का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है–

1) **पर्यावरणीय क्षेत्र**–विषयों के आधुनिक पक्षों में यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रत्येक नागरिक का यह दायित्व है कि वह वर्तमान एवं भविष्यगत आवश्यकताओं के मध्य समन्वयन स्थापित करते हुए विवेकपूर्ण ढंग से पर्यावरणीय साधनों का उपयोग तथा पोषण करें जिससे पर्यावरणीय संसाधन अनवरत् रूप से मानव समाज की आवश्यकता पूर्ति के लिए उपलब्ध रहें।

2) **वैज्ञानिक क्षेत्र**–विषयों के आधुनिक पक्षों में विज्ञान शिक्षा का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। विज्ञान शिक्षा के विकास के साथ मानवीय मूल्यों के विकास पर भी ध्यान दिया जाता है क्योंकि किसी भी अनुसन्धान या प्रयोग के लिए विवेक की आवश्यकता होती है। विषयों के आधुनिक पक्षों द्वारा विज्ञान शिक्षा का उपयोग मानव हित में करने के सम्पूर्ण प्रयास किए जाते हैं न कि जनसंहारक हथियारों के विकास और निर्माण में।

3) **पोषणीय विकास के क्षेत्र में**–विषयों के आधुनिक पक्षों में इस तथ्य का समावेश किया जाता है कि मानव अपने हित के साथ–साथ सार्वजनिक हित के बारे में विवेकपूर्ण निर्णय लें। **जैसे**– व्यक्तिगत विकास के स्थान पर वह सार्वजनिक हित को महत्त्व दें। प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते समय वह इस तथ्य पर ध्यान दें कि आने वाली पीढ़ी के लिए इन साधनों की उपलब्धता बनी रहे।

4) **सामाजिक क्षेत्र**–विषयों के आधुनिक पक्षों द्वारा वर्तमान समय में सुधारात्मक गतिविधियों को क्रियान्वित किया जाता है जिससे भविष्य में एक सुदृढ़ एवं उपयोगी समाज की नींव तैयार की जा सके। समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़िवादियों को अनुशासन के आधुनिक पक्षों द्वारा समाप्त किया जा सकता है तथा समाज में परिवर्तन लाए जा सकते हैं। जाति–पाँति, ऊँच–नीच एवं धार्मिक विभेदों को समाप्त करने में भविष्योन्मुखी शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

5) **राजनीतिक क्षेत्र**–राजनीतिक क्षेत्र को विषयों के आधुनिक पक्षों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया जाता है। वर्तमान समय में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का उद्देश्य मानव को विकास के समान अवसर, विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा भविष्यगत सुरक्षा प्रदान करना है। विषयों के आधुनिक पक्ष राजनीतिक क्षेत्र में भी उदारवादी एवं पारदर्शी व्यवस्था को क्रियान्वित करने में सहायता करते हैं। आज राजनीतिक व्यवस्था में मानव अधिकार, मूल अधिकार एवं बाल अधिकार की व्यवस्था विषयों के आधुनिक पक्षों का ही परिणाम है।

Scanned by CamScanner

6) **आर्थिक क्षेत्र**–आर्थिक विसंगतियों को दूर करने तथा धन के समान वितरण की व्यवस्था विषयों के आधुनिक पक्षों द्वारा ही सम्भव है। इसमें औद्योगिक विकास को सन्तुलित रूप में स्वीकार किया जाता है। प्रत्येक उत्पादन क्षमता या कार्य को स्वहित से जोड़ने का प्रयास न करके वरन् उसको सार्वजनिक हित से जोड़ा जाता है।

7) **आध्यात्मिक क्षेत्र**–आध्यात्मिक क्षेत्र को भी विषयों के आधुनिक पक्षों को प्रमुख माना जाता है। अनुशासन के आधुनिक पक्षों द्वारा मानव को आत्मज्ञान एवं जीवन के आदर्शवादी मूल्यों का ज्ञान प्रदान किया जाता है जिससे मानव में त्याग एवं प्रेम की भावना का विकास हो सके। त्याग एवं प्रेम के अभाव में मानव स्वार्थी हो जाता है। इस प्रकार विषयों के आधुनिक पक्षों द्वारा मानव मूल्यों का विकास करके उसको भविष्य की हानियों से बचाया जाता है।

अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों के आधार (Bases of Modern Aspects of Disciplines)

विषयों के आधुनिक पक्षों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। विषयों के आधुनिक पक्षों का कार्य मात्र भविष्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना नहीं हैं वरन् वर्तमान की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना भी है। इस प्रकार इसके आधारों का स्वरूप भी व्यापक है। अतः हम कुछ प्रमुख आधारों की चर्चा करते हुए विषयों के आधुनिक पक्षों की रूपरेखा तैयार करेंगे–

1) **सृजनात्मक चिन्तन**–सृजनात्मक चिन्तन को विषयों के आधुनिक पक्षों का प्रमुख आधार माना जाता है क्योंकि सृजनात्मक चिन्तन में किसी व्यवस्था के प्रति विचार एवं क्रियाओं का सृजन होता है। जब तक शैक्षिक व्यवस्था के सन्दर्भ में सृजनात्मक चिन्तन नहीं किया जाएगा तो उस शिक्षा व्यवस्था में सुधारात्मक परिवर्तन की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं की जाएगी। जब उस व्यवस्था पर सृजनात्मक रूप से विचार–विमर्श होगा तो उसमें विभिन्न प्रकार के सुधार वर्तमान एवं भविष्यगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किए जाएंगे।

2) **अनुसंधानों को स्थान**–विषयों के आधुनिक पक्षों में अनुसंधानों के परिणामों को व्यापक रूप से महत्त्व दिया जाता है क्योंकि भविष्यगत योजनाओं की सफलता के लिए वर्तमान व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता होती है, **जैसे**– वर्तमान समय में शिक्षा व्यवस्था शिक्षक केन्द्रित न होकर बालकेन्द्रित हो गई है। अनेक अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि बालकेन्द्रित शिक्षा से ही सार्वभौमिक शिक्षा एवं अनिवार्य शिक्षा के भविष्यगत लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

3) **पाठ्यक्रम निर्माण**–यदि हमको भविष्यगत उद्देश्यों की प्राप्ति करनी है तथा छात्रों को भविष्य के प्रति जागरुक बनाना है तो पाठ्यक्रम में परिवर्तन करना आवश्यक है। पाठ्यक्रम में उन सभी तत्वों का समावेश होना चाहिए जो कि भविष्यगत आवश्यकताओं एवं वर्तमान आवश्यकताओं में समन्वयन स्थापित कर सके, जैसे– जब हम यह अपेक्षा करते हैं कि बालक भविष्य में एक बेहतर खिलाड़ी बनें तो हमें पाठ्यक्रम में खेलों से सम्बन्धित सामग्री को समावेश करना होगा। इस प्रकार विषयों के आधुनिक पक्षों का एक प्रमुख आधार पाठ्यक्रम होता है जिसके द्वारा भविष्यगत उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव होती है।

4) **शिक्षण विधियों का निर्धारण**–शिक्षण विधियों का परम्परागत रूप जब शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में सक्षम नहीं होता है तो नवीन शिक्षण विधियों को स्थान दिया जाता है जिससे वर्तमान शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान हो सके तथा भविष्य में आने वाली समस्याओं से बचा जा सके। विकास की प्रक्रिया में नवीन तथ्य स्थान प्राप्त करते हैं तथा परम्परागत तथ्यों/वस्तुओं को हटाया जाता है। जैसे– शिक्षक केन्द्रित शिक्षा प्रणाली से बालकेन्द्रित शिक्षा व्यवस्था।

5) **मस्तिष्क उद्वेलन**–मस्तिष्क उद्वेलन की प्रक्रिया को विषयों के आधुनिक पक्षों का प्रमुख आधार माना जाता है। जब हम किसी कार्य को सम्पन्न करने की प्रक्रिया को परम्परागत रूप से स्वीकार करते हैं तो उसमें न तो मस्तिष्क उद्वेलन सम्भव होता है और न ही भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विचारों का उदय होता है। इसके विपरीत जब एक कार्य को करने की विविध विधियों तथा उपायों पर विचार किया जाता है तो निश्चित रूप से उस प्रक्रिया को सम्पन्न करने की सर्वोत्तम विधि प्राप्त होती है जो हमारी भविष्यगत एवं वर्तमान दोनों ही आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इसके द्वारा विषयों के आधुनिक पक्षों का उदय होता है तथा यह प्रक्रिया मस्तिष्क उद्वेलन के रूप में जानी जाती है।

6) **पोषणीयता**–विषयों के आधुनिक पक्षों का प्रमुख आधार पोषणीयता है क्योंकि जब हम अपने हित के साथ–साथ सार्वजनिक हित के बारे में विवेक से निर्णय ले तो हमारा यह कदम पोषणीयता के अन्तर्गत आता है। प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते समय इस तथ्य पर ध्यान दे कि आने वाली पीढ़ी के लिए इन साधनों की उपलब्धता बनी रहे। इसलिए प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग एवं संरक्षण पर विवेकपूर्ण निर्णय लिया जाए। इस प्रकार के पोषणीय विकास की स्थिति मानवीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विषयों के आधुनिक पक्षों द्वारा उत्पन्न की जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि विषयों के आधुनिक पक्षों के विभिन्न आधार उसके विकास की दिशा निर्धारित करते हैं। इससे सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया वर्तमान से भविष्य तक अनवरत् रूप से चलती रहती है तथा शिक्षा में नवीन विचारों एवं अनुसंधानों का प्रयोग व्यापक रूप से चलता है जो कि सम्पूर्ण विश्व एवं मानव समाज के लिए लाभदायक सिद्ध होता है।

प्रश्न 9– निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
Write short notes on the following:

1) भारत में अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्ष एवं उसका परिदृश्य (Scenario of Modern Aspects of Discipline in India)

2) भविष्य की आवश्यकताओं और सामाजिक आचार संहिता के आधार पर शिक्षा में अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्ष (Modern Aspects of Disciplines in Education on the Basis of Future Needs and Social Ethics)

3) भविष्यबोध एवं सामाजिक आचार संहिता के विकास हेतु गतिविधियाँ (Activities for Development of Future Consciousness and Social Ethics)

उत्तर– भारत में अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्ष एवं उसका परिदृश्य (Scenario of Modern Aspects of Discipline in India)

भारतीय शिक्षा प्रणाली प्राचीन काल से ही भविष्योन्मुखी रही है। भारतीय शिक्षा में सदैव वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के

Scanned by CamScanner

साथ–साथ भविष्य की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा गया है क्योंकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली का यह दायित्व होता है कि वह भविष्य में आने वाली प्रत्येक समस्या का समाधान उपलब्ध कराए। सामाजिक व्यवस्था की ही तरह शिक्षा का उद्देश्य भविष्यगत् सुरक्षा से सम्बन्धित हो जाता है। प्राचीन काल में शिक्षा सीमित व्यक्तियों के लिए थी परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित हो गया है। वर्तमान समय में प्रत्येक अभिभावक अपने बालक को विद्यालय इसलिए भेजतें है ताकि उसका भविष्य सुरक्षित हो सके। वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों से सम्बन्धित परिदृश्य निम्नलिखित प्रकार से दृष्टिगोचर होते हैं–

1) **सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित शिक्षा**–सर्वांगीण विकास हेतु वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विषयों का सर्वप्रमुख आधुनिक पक्ष है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली बालकों को विशेष रूप से प्रत्येक क्षेत्र में विकास करने की प्रक्रिया पर आधारित है। प्रत्येक छात्र में अन्तर्निहित प्रतिभाओं के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उनके अनुरूप गतिविधियों का समावेश विद्यालयी व्यवस्था में हो। इसी कारण वर्तमान में पाठ्यक्रम के साथ–साथ पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था की गई है जो बालकों में अन्तर्निहित प्रतिभाओं से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा व्यवस्था बालकों के लिए सर्वांगीण विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु कार्य कर रही है जिससे भविष्य में प्रत्येक बालक का सर्वांगीण विकास हो सके।

2) **शिक्षा की सार्वभौमिकता**–भारतीय शिक्षा में विषयों का द्वितीय आधुनिक पक्ष सभी के लिए शिक्षा उपलब्ध कराना है जिससे कि सभी व्यक्ति अपने भावी जीवन में अधिकारों का उपयोग कर सकें तथा कर्तव्यों का पालन कर सकें। इसलिए सरकार ने 6 से 14 वर्ष तक के बालक–बालिकाओं के लिए निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया है। इसके साथ ही निःशुल्क पाठ्य–पुस्तक एवं दलित वर्ग के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की है जिससे धनाभाव शिक्षा की सार्वभौमिकता में किसी प्रकार की बाधा न उत्पन्न कर सके।

3) **बालक–बालिकाओं की समान शिक्षा**–वर्तमान में बालक–बालिकाओं को समान शिक्षा प्रदान की जाती है। विद्यालयों में सह–शिक्षा प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक व्यवस्था की गई है। इससे यह स्पष्ट है कि बालक–बालिकाओं में कोई अन्तर नहीं है। पुरुष प्रधान समाज एवं सोच को समाप्त कर समाज में पुरुष एवं महिलाओं को समान दर्जा दिया जा रहा है जो शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है।

4) **सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षा का समन्वयन**–भविष्य की सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए सभी को सामान्य शिक्षा की आवश्यकता होती है इसलिए सामान्य शिक्षा को प्राथमिक से लेकर उच्च माध्यमिक स्तर तक सभी के लिए अनिवार्य बनाया गया है। इसके पश्चात् ही व्यवसाय विशेष या फिर तकनीकी शिक्षा प्रदान की जाती है। इस प्रकार बालक के भविष्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा का समन्वित रूप प्रस्तुत किया जाता है जिससे छात्र भविष्य में अपनी पसन्द की शिक्षा और व्यवसाय चुन सके।

5) **पर्यावरणीय शिक्षा**–पर्यावरण प्रदूषण की बढ़ती भयावह स्थिति को देखते हुए वर्तमान समय में पर्यावरणीय शिक्षा को अध्ययन विषय के आधुनिक पक्ष के रूप में भारतीय शिक्षा प्रणाली को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। पर्यावरणीय शिक्षा के स्वरूप को पूर्णतः प्रभावी मानते हुए सामाजिक जागरूकता एवं वैश्विक स्तर पर जागरूकता के लिए सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ संचालित की जा रही हैं जिससे वर्तमान के साथ एक स्वच्छ भविष्य का निर्माण हो सके।

6) **आदर्शवादी शिक्षा एवं प्रयोजनवादी शिक्षा का समन्वयन**–बालकों में उच्च आदर्शों को स्थापित करने के लिए आदर्शवादी शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। सामान्यतः आदर्शवादी व्यवस्था का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक विकास एवं आदर्शवादी मूल्यों की स्थापना करना है, जिससे कि सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्रदान की जा सके तथा अन्तिम सुख की प्राप्ति हो सके परन्तु आधुनिक समय में ऐसा सम्भव नहीं है और शिक्षाशास्त्री मानते हैं कि वर्तमान युग में प्रयोग एवं विज्ञान के युग में शिक्षा का स्वरूप प्रयोजनवादी होना चाहिए। इसलिए आदर्शवादी शिक्षा को प्रयोजनवादी शिक्षा के साथ सम्बद्ध करके दोनों के सम्मिलित रूप से छात्रों का विकास किया जाना शिक्षा की भविष्यगत् योजना है। इससे छात्र भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास को प्राप्त कर सकेंगे।

7) **वैश्विक संस्कृति एवं सद्भावना की शिक्षा**–वर्तमान शिक्षा प्रणाली वैश्विक संस्कृति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की ओर उन्मुख हो रही है। प्राथमिक स्तर से ही छात्रों को अपने पड़ोसी देशों की संस्कृति एवं शिक्षा व्यवस्था से परिचित कराया जाता है जिससे कि वे एक–दूसरे के समीप आ सके और धीरे–धीरे वैश्विक समाज एवं संस्कृति का निर्माण हो सके। इसके मूल में एक ही उद्देश्य कार्य करता है कि हम सभी मानव समाज के सदस्य हैं और हमें एक–दूसरे के सुख–दुःख एवं सद्भावना के बारे में समझना चाहिए। इस समाज के निर्माण की प्रक्रिया शिक्षा का भविष्यगत् एवं महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता है। इसके लिए पाठ्यक्रम में अन्तर्राष्ट्रीय समझ से सम्बन्धित प्रकरण दिए जाते हैं।

8) **विश्व शान्ति की शिक्षा**–वर्तमान समय में विश्व के कई देश परमाणु सम्पन्न है तथा अन्य देश भी आधुनिक जनसंहारक हथियारों से सम्पन्न हैं। इसलिए वैश्विक मन–मुटाव या टकराव उचित नहीं है। इससे सम्पूर्ण विश्व को खतरा हो सकता है। इसके साथ ही परमाणु हथियारों की होड़ भी बढ़ती जा रही है। ऐसे में विश्व शान्ति की शिक्षा भारतीय शिक्षा प्रणाली की एक महत्त्वपूर्ण देन है। सामान्य रूप से भारतीय संस्कृति विश्व शान्ति का एक सर्वोत्तम उदाहरण है। भारतीय शिक्षा में विश्व–बन्धुत्व एवं विश्व शान्ति के लिए कार्य करने की योजना को भविष्य की योजनाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है।

भविष्य की आवश्यकताओं और सामाजिक आचार संहिता के आधार पर शिक्षा में अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्ष (Modern Aspects of Disciplines in Education on the Basis of Future Needs and Social Ethics)

भविष्य की आवश्यकताओं और सामाजिक आचार संहिता के आधार पर शिक्षा में अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है–

1) **सृजनात्मक चिन्तन**–विषयों के आधुनिक पक्षों की प्रमुख विशेषता सृजनात्मक चिन्तन है। सृजनात्मकता के आधार पर ही भविष्य एवं वर्तमान को सुरक्षित रखा जा सकता है।

Scanned by CamScanner

इसमें छात्रों के समक्ष उन गतिविधियों एवं परिस्थितियों को उत्पन्न किया जाता है जिसमें छात्र अधिक से अधिक सृजनात्मक चिन्तन करते हुए समस्याओं का समाधान कर सकें। इससे भावी जीवन में भी छात्र सृजनात्मक स्तर के आधार पर विकास कर सकेंगे तथा समस्याओं का समाधान कर सकेंगे।

2) **आवश्यकताओं में समन्वयन**–विषयों के आधुनिक पक्षों की प्रमुख विशेषता समन्वयवादी दृष्टिकोण है। इसके अन्तर्गत शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया जाता है कि वह वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करें। **जैसे**– पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग में पोषणीय विकास की अवधारणा विषयों के आधुनिक पक्षों का सर्वोत्तम उदाहरण है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग इस प्रकार किया जाता है कि आने वाली पीढ़ी के लिए भी प्राकृतिक संसाधनों का भण्डार सुरक्षित रहे।

3) **जीवन कौशलों का विकास एवं उपयोगिता के साथ समन्वय**–विषयों के आधुनिक पक्षों में उन गतिविधियों का समावेश किया जाता है जो कि छात्रों में जीवन कौशलों का विकास करती हैं जिससे छात्र आने वाले जीवन की कठिन परिस्थितियों में उसका उपयोग करके विभिन्न संकटों से बच सकें। ये कौशल सामाजिक जीवन, शैक्षिक जीवन, पर्यावरणीय जीवन एवं राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित हो सकते हैं। इस प्रकार विषयों के आधुनिक पक्ष जीवन कौशलों को विकसित करने का पूर्ण प्रयास करते हैं जो वर्तमान एवं भविष्य दोनों में ही छात्रों के जीवन को सुखमय बनाने का प्रयास करते हैं।

इसके साथ ही विषयों के आधुनिक पक्षों का उद्देश्य उपयोगिता में समन्वय स्थापित करता है। वर्तमान उपयोगिताओं को भविष्यगत उपयोगिताओं से संबद्ध करना इसका प्रमुख उद्देश्य है।

4) **नवाचारों का समावेश**–विषयों के आधुनिक पक्षों की प्रमुख विशेषता नवाचारों का समावेश है। इस शिक्षा व्यवस्था में उन सभी तत्वों को स्थान दिया जाता है जो शिक्षा को आधुनिकता के अनुरूप बनाते हैं; जैसे– दल शिक्षण, शिक्षा में तकनीकी का प्रयोग एवं गतिविधि आधारित शिक्षण ने छात्रों की वर्तमान शिक्षण अधिगम समस्या का समाधान किया है तथा भविष्य में आने वाली शैक्षिक समस्याओं के समाधान में शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों को सक्षम बनाया है।

5) **परिकल्पनाओं का निर्माण**–विषयों के आधुनिक पक्षों में अनेक प्रकार की परिकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। इसके आधार पर ही शिक्षा की रूपरेखा तैयार की जाती है। जैसे– पेट्रोलियम पदार्थों के सीमित भण्डार को देखकर ही पर्यावरणविदों ने कल्पना की कि इन पदार्थों के भण्डार के समाप्त होने पर क्या स्थिति उत्पन्न होगी? इस परिकल्पना ने ही पोषणीय विकास की अवधारणा को जन्म दिया जिससे भावी पीढ़ी के लिए संसाधनों को संरक्षित किया जा सके।

6) **वैश्विक सोच का समावेश**–विषयों के आधुनिक पक्षों के अन्तर्गत वैश्विक सोच का समावेश होता है। इसलिए शिक्षा का स्वरूप वैश्विक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही निर्धारित किया जाता है। शिक्षा में विश्व शान्ति की अवधारणा एवं अन्तर्राष्ट्रीय समझ से सम्बन्धित विषय भविष्योन्मुखी शिक्षा व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार अध्ययन विषयों के आधुनिक पक्षों में व्यापक सोच पर आधारित गतिविधियों एवं प्रकरणों को स्थान दिया जाता है।

भविष्यबोध एवं सामाजिक आचार संहिता के विकास हेतु गतिविधियाँ (Activities for Development of Future Consciousness and Social Ethics)

किसी कार्य को करने से पूर्व हमें यह विचार अवश्य करना चाहिए कि उसके परिणाम भविष्य में सुखद होंगे या दुःखद। भविष्यगामी परिणामों एवं सामाजिक आचार संहिता के आधार पर ही हमें उन अनेक कार्यों को त्याग देना चाहिए जो कि वर्तमान में सुख देते हैं तथा भविष्य में दुःख पहुँचाते हैं। **जैसे**– वायु प्रदूषण एवं वैश्विक ताप को कम करने के लिए व्यक्ति को कम से कम ऐसे साधनों का प्रयोग करना चाहिए जो वर्तमान समय में सुख प्रदान करते हैं परन्तु भविष्य में इसके परिणाम सम्पूर्ण मानव समाज के लिए घातक होंगे। इसी प्रकार विद्यालयी स्तर पर तथा शिक्षा व्यवस्था में भी उन गतिविधियों का समावेश होना चाहिए जो कि छात्रों को उनके भविष्य के बारे में तथा सामाजिक आचरण के बारे में बोध करा सकें। भविष्य बोध के आधार पर ही वह प्रत्येक कार्य के विभिन्न पक्षों पर विचार करके उसमें आवश्यक परिवर्तन कर सकेगा।

भविष्य बोध एवं सामाजिक आचार संहिता के पालन की आदत को विकसित करने के लिए विद्यालयों एवं शिक्षा व्यवस्था में निम्नलिखित गतिविधियों का समावेश अवश्य करना चाहिए जिससे वर्तमान को सुखद बनाने के साथ–साथ भविष्य को भी सुखद बनाया जा सके–

1) **सांस्कृतिक कार्यक्रम**–विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का समाज एवं विद्यालय से गहरा सम्बन्ध होता है। इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों के मूल में अनेक शिक्षाएँ छिपी होती हैं। इन शिक्षाओं का सम्बन्ध सामाजिक भविष्यगत उपयोगिता से होता है। **जैसे**– विद्यालय में विभिन्न महापुरुषों की जयन्ती एवं देशभक्ति सम्बन्धी कार्यक्रम होते हैं। जिनमें उन महापुरूषों के विचारों का वर्णन होता है जो छात्रों को एक नवीन ज्ञान एवं दिशा प्रदान करते हैं। इससे छात्रों में प्राथमिक स्तर से ही भविष्य बोध एवं सामाजिक आचार संहिता का भाव उत्पन्न होगा।

2) **प्रदर्शनी एवं गोष्ठी**–विद्यालय में विविध विषयों पर प्रदर्शनी एवं गोष्ठी का आयोजन किया जाए। इसमें छात्रों की विभिन्न घटनाओं एवं क्रियाओं के भविष्यगत् प्रभावों को चित्रों के माध्यम से समझाया जा सकता है। **जैसे**– समाज में मद्यनिषेध, डेंगू, मलेरिया तथा एड्स आदि रोगों से सम्बन्धित भविष्य के प्रभावों को चित्र के माध्यम से समझाया जा सकता है। इससे छात्रों एवं समाज में जागरूकता उत्पन्न होगी। गोष्ठी में उन प्रकरणों का अध्ययन एवं विचार प्रस्तुतीकरण उस विषय को ध्यान में रखकर किया जाए जिसे छात्र आसानी से समझ सकें तथा उसकी भविष्यगत् उपयोगिता भी हो। इससे एक ओर छात्रों में भविष्यबोध की स्थिति उत्पन्न होगी वहीं दूसरी ओर विविध विषयों से सम्बन्धित प्रकरणों पर सारगर्भित विचार जानने को मिलेंगे।

Scanned by CamScanner

3) **पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ**–पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को विद्यालय में व्यापक रूप से स्थान मिलना चाहिए। पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का चयन करते समय छात्रों की योग्यता एवं रुचि के बारे में ज्ञान प्राप्त होना चाहिए तथा छात्र को उस क्रिया के परिणामों के बारे में अवश्य बताना चाहिए। **जैसे**– योग शिक्षा का चयन बालक को पाठ्यक्रम सहगामी क्रिया के रूप में करना है तो शिक्षक को चाहिए कि प्रत्येक आसन को करने से कौन–कौन से लाभ होंगें तथा कौन–कौन सी सावधानी बरतनी चाहिए। इन सभी का वर्णन पूर्णतः शिक्षक को बालक के समक्ष करना चाहिए जिससे वह पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के भविष्यगत् परिणामों को जानकर चयन कर सके।

4) **निबन्ध प्रतियोगिता**–निबन्ध प्रतियोगिता के बारे में भविष्यवादी दृष्टिकोण को ही अपनाना चाहिए। प्रकरणों का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए जिससे कि छात्र स्वाभाविक रूप से भविष्य के बारे में विचार करे सकें। **जैसे**– दहेज प्रथा का समाज पर प्रभाव, बाल–विवाह से होने वाली हानियाँ एवं परमाणु अस्त्रों के प्रयोग से भविष्यगत् हानियाँ आदि। इस प्रकार के प्रकरणों में छात्र भविष्य में होने वाले लाभ एवं हानियों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे। इससे एक ओर छात्रों में भविष्यबोध का विकास होगा वहीं दूसरी ओर वे प्रत्येक घटनां को सामाजिक आचार संहिता के सन्दर्भ में देखने का प्रयास करेंगे।

5) **स्वाध्याय**–छात्रों में प्राथमिक स्तर से ही स्वाध्याय की आदत विकसित करनी चाहिए। छात्रों के स्वाध्याय के लिए पुस्तकालय में उन महापुरूषों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व से सम्बन्धित पुस्तकें होनी चाहिए जिन्होंने अपने दूरगामी सोच से समाज के लिए अनेक प्रकार के उन्नतशील सिद्धान्तों को जन्म दिया। इन महापुरूषों के विचारों को पढ़कर तथा उनकी जीवन सम्बन्धी सफलताओं का ज्ञान प्राप्त करके छात्रों में भविष्यबोध की सोच विकसित होगी।

6) **सामूहिक कार्य**–छात्रों को विविध विषयों पर सामूहिक रूप से प्रोजेक्ट कार्य करने के लिए दिए जा सकते हैं जिसमें उन विषयों के भविष्यगत् प्रभावों का स्पष्ट रूप से वर्णन करने के लिए कहा जाए। **जैसे**– पर्यावरणीय प्रदूषणों के सन्दर्भ में छात्रों को ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं जल प्रदूषण आदि पर प्रोजेक्ट कार्य दिए जाएं। इस प्रकार के सामूहिक कार्यों से सभी छात्रों के एक ही विषय पर विचार जानने को मिलेंगे तथा उनमें भविष्यबोध एवं सामाजिक आचार संहिता के भाव विकसित होंगे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि विद्यालय में सम्पन्न की जाने वाली विविध गतिविधियाँ स्वाभाविक रूप से छात्रों में भविष्यबोध एवं सामाजिक आचार संहिता के पालन की भावना उत्पन्न करती है। इससे छात्रों में कर्तव्यनिष्ठा एवं भविष्यगत् समस्याओं को ध्यान में रखकर मर्यादित व्यवहार करने की आदत विकसित होती है। इसके साथ ही चिन्तन, मनन एवं तार्किक कार्य करने से भी भविष्यबोध एवं सामाजिक आचार संहिता की भावना का विकास होता है।

Scanned by CamScanner

अध्याय–3

अन्तर्विषयक ज्ञान के रूप में शिक्षा

EDUCATION AS INTERDISCIPLINARY KNOWLEDGE

शिक्षा (EDUCATION)

प्रश्न 1– शिक्षा का क्या अर्थ है? बालक के लिए शिक्षा की आवश्यकता बताइए। शिक्षा की प्रकृति तथा क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
What is the meaning of Education. Explain the need of education for children. Describe the nature and scope of education.

या

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write short notes on the following:
1) शिक्षा की विशेषताएँ (Characteristics of Education)
2) शिक्षा का विषय–विस्तार (Scope of Education)
3) शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Education)

उत्तर– शिक्षा मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपना आर्थिक विकास करता है। शिक्षा के अभाव में मनुष्य पशु के समान रहता है। वह अपने आदर्शों, आकांक्षाओं, आशाओं, विश्वास, परम्परा तथा सांस्कृतिक विरासत को विकसित नहीं कर सकता। शिक्षा के द्वारा ही संसार की आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है। प्रसिद्ध शिक्षा–शास्त्री **ड्यूवी के अनुसार**, "जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए भोजन का महत्व है उसी प्रकार सामाजिक विकास के लिए शिक्षा का।" इसी सम्बन्ध में प्रमुख दार्शनिक **लॉक के अनुसार**, "पौधों का विकास कृषि के द्वारा और मनुष्य का विकास शिक्षा के द्वारा होता है।" **एडम्स के अनुसार**, "शिक्षा एक ऐसी सुनियोजित तथा चेतन प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्तित्व ज्ञान के द्वारा दूसरे व्यक्तित्व को उसके विकास हेतु प्रभावित करता है।"

शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Education)
शिक्षा शब्द संस्कृत के 'शिक्ष' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'सीखना' अथवा 'सिखाना' होता है। शिक्षा को अंग्रेजी में 'एजुकेशन' (Education) कहते हैं। 'एजुकेशन' (Education) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'एजुकेटम' (Educatum) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है 'शिक्षित करना'। एजुकेटम भी दो शब्दों से मिलकर बना है – ई (E) और ड्यूको (Duco)। ई का अर्थ 'भीतर से' और ड्यूको का अर्थ 'बाहर निकालना' (To Lead Out) अथवा 'आगे बढ़ाना'। इस प्रकार एजुकेशन अथवा शिक्षा का अर्थ है – 'अन्तः शक्तियों का बाहर की ओर विकास करना'। लैटिन भाषा के दो शब्द 'एजुसीयर' तथा 'एजुकेयर' भी शिक्षा के इसी अर्थ की ओर संकेत करते हैं। 'एजुसीयर' का अर्थ 'विकसित करना' अथवा 'निकालना' है तथा दूसरे 'एजुकेयर' का अर्थ है 'आगे बढ़ाना, बाहर निकालना या विकसित करना'। अतः शिक्षा का अर्थ आन्तरिक शक्तियों अथवा गुणों का विकास करना है।

सुकरात के अनुसार, "शिक्षा का तात्पर्य संसार के उन सर्वमान्य विचारों को प्रकट करने से है, जो प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में निहित है।"

According to Socrates, "Education means bringing out of the ideas of universal validity which are latent in the mind of every man."

विवेकानन्द के अनुसार, "मानव की सम्पूर्णता का प्रकटीकरण ही शिक्षा है।"

According to Vivekanand, "Education is the manifestation of perfection already present in man."

टैगोर के अनुसार, "शिक्षा का अर्थ बालक को उस योग्य बनाना है कि वह शाश्वत् सत्य की खोज कर सके, उसे अपना बना सके और उसकी अभिव्यक्ति कर सके।"

According to Tagore, "Education means enabling the mind to find out the ultimate truth... making truth its own and giving expression to it."

प्लेटो के अनुसार, "शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रशिक्षण से है, जो अच्छी आदतों द्वारा बच्चों में अच्छी नैतिकता का विकास करे।"

According to Plato, "Education develops in the body and in the soul of the pupil all the beauty and all the perfection of which he is capable."

स्पष्ट है कि शिक्षा, व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए ही अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। सारांश रूप में शिक्षा को निम्न शब्दों के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है–

"शिक्षा मानव व्यवहार का परिशोधन है।"

"Education is the amortisation of human behaviour."

शिक्षा की प्रकृति एवं विशेषताएँ (Nature and Characteristics of Education)
शिक्षा की प्रकृति एवं विशेषताओं को निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता हैं–

1) **शिक्षा एक सोद्देश्य व सचेतन प्रक्रिया है (Education is a Purposive and Conscious Process)**–शिक्षा एक निरुद्देश्य व अचेतन प्रक्रिया न होकर एक सोद्देश्य व

Scanned by CamScanner

सचेतन प्रक्रिया होती है, क्योंकि शिक्षा का कुछ न कुछ उद्देश्य होता है और उसकी प्राप्ति के लिए सोच–विचार कर व जानबूझकर प्रयास किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, शिक्षा निश्चित उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण–विधि द्वारा सोच समझकर प्रदान और प्राप्त की जाती है जिसमें 'व्यक्ति' (Individual) तथा 'समाज' (Society) दोनों के हित को ध्यान में रखा जाता है। इस प्रकार दी जाने वाली शिक्षा सप्रयोजन और सचेतन होती है।

2) **शिक्षा अन्तःशक्तियों का सर्वांगीण विकास है (Education is the Allround Development of Inner Powers)**–शिक्षा बालक में अन्तर्निहित शक्तियों का विकास मात्र नहीं है बल्कि यह उनका सर्वांगीण व पूर्ण विकास है। आधुनिक युग में जब से शिक्षा में मनोविज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ तब से बालक में 'अन्तर्निहित शक्तियों' (Inherent Powers) पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। अब शिक्षक बालक के ऊपर बाह्य ज्ञान को लादने का प्रयास न कर उसमें अन्तर्निहित शक्तियों का सर्वांगीण और प्रगतिशील विकास कर उसका जीवन सफल बनाने का प्रयास करता है।

एडीसन के अनुसार, "शिक्षा वह क्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य में निहित शक्तियों एवं गुणों का दिग्दर्शन होता है जिसे शिक्षा के बिना अन्दर से बाहर निकलना नितान्त असम्भव है।"

3) **शिक्षा विकास की प्रक्रिया है (Education is the Process of Development)**–प्रत्येक बालक व व्यक्ति कुछ जन्मजात शक्तियों व सम्भावनाओं को लेकर जन्म लेता है। सामाजिक वातावरण में बालक की उन शक्तियों का विकास होता है। समाज में रहते हुए उसे अनेक नये–नये अनुभव प्राप्त होते हैं। उन अनुभवों से वह अपने व्यवहार में परिवर्तन करके अपना विकास करता है। जिस बालक को जितने अधिक अनुभव प्राप्त होते जाते हैं उसके विकास में भी उतनी ही अधिक वृद्धि होती जाती है। परिवर्तन की इस क्रिया को ही शिक्षा कहा जाता है। अतः शिक्षा को विकास की प्रक्रिया कहा जाता है।

4) **शिक्षा का अर्थ केवल विद्यालयों में प्रदान किए जाने वाले ज्ञान से नहीं है (Meaning of Education is not Limited to School Knowledge only)**–अधिकांश लोग शिक्षा का संकुचित अर्थ लगाते हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि शिक्षा विद्यालय तक ही सीमित नहीं होती बल्कि बालक पर जो–जो तत्व प्रभाव डालते हैं वे सब शिक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत् आते हैं। मनुष्य के लिए संसार के समस्त प्राणी शिक्षण का कार्य करते हैं। भारत में महर्षि कणाद् को ही लीजिए, वे चींटी तथा अन्य छोटे जीव–जन्तुओं को उनके विशेष गुणों के कारण अपना गुरु मानते थे। शिक्षा का व्यापक अर्थ इसी मन्तव्य को प्रकट करता है।

5) **शिक्षा एक प्रगतिशील परिवर्तन है (Education is a Progressive Change)**–वस्तुतः शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपनी क्षमताओं आदि का प्रयोग करते हुए कुछ न कुछ सीखता रहता है। सीखने के परिणामस्वरूप उसके व्यवहार एवं अनुभव में 'प्रगतिशील परिवर्तन' (Progressive Change) होते रहते हैं। एक 'सामाजिक प्राणी' (Social Animal) होने के कारण व्यक्ति को अपने मूल–प्रवृत्यात्मक व्यवहार में परिवर्तन करना आवश्यक भी है ताकि वह समाज में एक सरल, एक शिक्षित व्यक्ति के नाम से जाना जा सके। **कनिंघम के अनुसार**, "समाज एवं व्यक्ति दोनों के लिए शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो परिवर्तनों को लाती है।"

6) **शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया है (Education is a Two-Dimensional Process)**–हमें यह समझ लेना चाहिए कि केवल शिक्षक ही सक्रिय (Active) होकर बालक के मस्तिष्क में ज्ञान भरने का प्रयास नहीं करता है बल्कि वास्तविकता यह है कि इस प्रक्रिया में शिक्षक (Educator) और विद्यार्थी (Educant) दोनों को परस्पर सक्रिय सहयोग करना पड़ता है। इस बात की पुष्टि करते हुए **एडम्स के अनुसार**, "शिक्षा एक द्विमुखी प्रक्रिया (**Bi-polar process**) है जिसमें कि एक व्यक्ति दूसरे के विकास में परिवर्तन के लिए कार्य करता है।"

7) **शिक्षा एक त्रिध्रुवी प्रक्रिया है (Education is a Tri-Polar Process)**–ड्यूवी आदि शिक्षाशास्त्रियों का कहना है कि शिक्षा एक त्रिध्रुवी प्रक्रिया है। शिक्षा के तीन अंग है शिक्षक, बालक और पाठ्यक्रम। शिक्षक और बालक के साथ–साथ पाठ्यक्रम भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। पाठ्यक्रम का अर्थ केवल पुस्तकीय ज्ञान से न होकर उन सब विचारों, भावों, मान्यताओं और अनुभवों से है, जिनसे बालक का सर्वांगीण विकास और समाज का हित होता है। पाठ्यक्रम ही वह महत्वपूर्ण बिन्दु है जो शिक्षक और बालक दोनों बिन्दुओं को मिलाता है इसलिए शिक्षा को त्रिमुखी प्रक्रिया कहा गया है।

8) **शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है (Education is a Life-Long Process)**–शिक्षा प्रक्रिया अनवरत् रूप से जीवन–पर्यन्त चलती रहती है। व्यक्ति सदैव कुछ न कुछ अनुभव प्राप्त करता रहता है और इन्ही अनुभवों से वह कुछ न कुछ सीखता रहता है। स्पष्ट है कि शिक्षा कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं है जो एक निश्चित अवधि अथवा विद्यालय जीवन में ही समाप्त हो जाए। यह तो बिना समाप्त हुए चलती रहती है। इसलिए शिक्षा को एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया (Continuous Process) कहा जाता है।

9) **शिक्षा समायोजन की प्रक्रिया है (Education is a Process of Adjustment)**–व्यक्ति का संतुलित विकास तभी सम्भव है जब वह अपने वातावरण के साथ समायोजन स्थापित कर ले। अपने स्वयं के तथा अपने वातावरण के साथ जब तक व्यक्ति का समायोजन नहीं होगा, व्यक्ति की मानसिक स्थिति ठीक नहीं रहेगी, उसमें चिन्ता तथा तनाव रहेगा। फलतः वह मानसिक उद्वेगों से पीड़ित रहेगा और किसी भी प्रकार के अनुभव प्राप्त नहीं कर पायेगा। शिक्षा के द्वारा बालक में पर्यावरण के साथ समायोजन करने की शक्ति विकसित की जाती है जिससे वह मानसिक संघर्षों से बचता हुआ अपना सन्तुलित विकास कर सके।

शिक्षा का विषय–विस्तार या क्षेत्र (Scope of Education)

शिक्षा का सम्बन्ध जीवन से है, इसलिए शिक्षा के विषय–विस्तार के अन्तर्गत जीवन की क्रियाएँ और समस्याएँ आती हैं शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को उसके पूर्वजों के द्वारा संग्रहित धरोहर, उनकी सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत और उनके संचित अनुभवों का ऐसा ज्ञान दिया जाता है जिससे उसको उसके जीवन की

Scanned by CamScanner

समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती है लेकिन वे अनुभव, विरासत तथा धरोहर इतने व्यापक है कि व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन में भी उनको पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर सकता। अतः मानव की योग्यताओं, क्षमताओं और रुचियों को ध्यान में रखकर उपयोगी विषयवस्तु का पृथक–पृथक विषयों के रूप में चयन कर लिया जाता है जिससे व्यक्ति सहजता, सरलता और स्वाभाविकता के साथ उन्हें सीख सके।

इस प्रकार जीवन के विविध क्षेत्रों में प्राप्त अनुभवों को अलग–अलग विषयों के रूप में प्रस्तुत करके शिक्षा के विषय–विस्तार या क्षेत्र को निम्नलिखित भागों में बाँटा जाता है–

1) **शिक्षा दर्शन**–शिक्षाशास्त्र के अन्तर्गत जीवन के प्रति जो विभिन्न दृष्टिकोण हैं, उनका और उनके आधार पर शिक्षा के स्वरूप, शिक्षा के उद्देश्य और शिक्षा की पाठ्यचर्या आदि का अध्ययन किया जाता है।

2) **शैक्षिक समाजशास्त्र**–समाज और शिक्षा का सम्बन्ध शैक्षिक समाजशास्त्र का विषय है। शैक्षिक समाजशास्त्र शिक्षा को सामाजिक पृष्ठभूमि और समाजशास्त्रीय आधार प्रदान करता है। इसमें समाज की आवश्यकताओं, सामाजिक अन्तःक्रिया, समाजीकरण की प्रक्रिया, शिक्षा के सामाजिक कार्यों और शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन के पारस्परिक सम्बन्धों आदि पर विचार किया जाता है।

3) **शिक्षा मनोविज्ञान**–इसके अन्तर्गत बच्चों की प्रकृति, उनकी योग्यता, रुचियों और अभिरूचियों तथा स्मृति, विस्मृति, चिन्तन और कल्पना आदि शक्तियों का अध्ययन किया जाता है और शिक्षा की प्रक्रिया में उनके उपयोग की सीमा निश्चित की जाती है। शिक्षा मनोविज्ञान में सीखने के स्वरूप; सीखने की दशाओं, सीखने को प्रभावित करने वाले कारकों और सीखने के सिद्धान्तों तथा नियमों का भी अध्ययन किया जाता है।

4) **शिक्षा का इतिहास**–इसके अन्तर्गत हम शिक्षा के इतिहास का अध्ययन इसी दृष्टि से करते हैं जब तक हम आदिकाल से लेकर अब तक शिक्षा का जो स्वरूप रहा है, उसकी जो व्यवस्था रही है और उसके जो परिणाम रहे हैं, उन सबका अध्ययन नहीं करते तब तक हम अपने लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते।

5) **तुलनात्मक शिक्षा**–शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में भी विभिन्न देशों की शिक्षा प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है और उसके गुण–दोषों का विवेचन किया जाता है। इस जानकारी को प्राप्त करके हम अपने देश की शिक्षा–व्यवस्था का मूल्यांकन कर सकते हैं। दूसरे देशों की शिक्षा व्यवस्था के गुणों व अच्छाईयों को हम अपनी शिक्षा–व्यवस्था में अपना सकते हैं और एक उत्तम शिक्षा–व्यवस्था का निर्माण करने में सफल हो सकते हैं।

6) **शैक्षिक समस्याएँ**–इसके अन्तर्गत देश की वर्तमान शैक्षिक समस्याओं पर विचार किया जाता है और उनके समाधान के तरीके ढूँढे जाते हैं। प्रमुख समस्याएँ जैसे – अपव्यय और अवरोधन की समस्या, अनुशासन हीनता, जनसंख्या शिक्षा की समस्या, शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की समस्या आदि। इन समस्याओं के कारणों का विश्लेषण करके उनका समाधान खोजना अत्यन्त आवश्यक है, तभी देश में शिक्षा व्यवस्था सुचारू रूप से चल सकती है।

7) **शैक्षिक प्रशासन एवं संगठन**–इसके अन्तर्गत शिक्षा का संचालन किसके हाथ में है, राज्य का इसमें किस प्रकार सहयोग है, प्रधानाध्यापकों एवं अध्यापकों के गुण एवं कर्तव्यों, बच्चों का प्रवेश, उनका वर्गीकरण आदि के अध्ययन से हम शिक्षा की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने में समर्थ होते हैं।

8) **शिक्षण कला एवं तकनीकी**–शिक्षण प्रक्रिया में सीखना और सिखाना दोनों क्रियाएँ आती हैं भिन्न–भिन्न स्तरों के बच्चों को भिन्न–भिन्न विषयों को पढ़ाने की कौन–कौन सी विधियों का निर्माण हुआ है, उनमें कौन–सी विधियाँ उपयोगी हैं और इन विधियों को अपनाते समय क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए? इन सबकी चर्चा शिक्षण कला एवं तकनीकी के अन्तर्गत् की जाती है।

शिक्षा की आवश्यकता (Need of Education)

नवजात शिशु असहाय तथा असामाजिक होता है। वह न बोलना जानता है और न चलना–फिरना। उसका न कोई मित्र होता है और न शत्रु। यही नहीं, उसे समाज के रीति रिवाजों तथा परम्पराओं का ज्ञान भी नहीं होता और न ही उसमें किसी आदर्श तथा मूल्य को प्राप्त करने की जिज्ञासा पाई जाती है परन्तु जैसे–जैसे वह बड़ा होता जाता है वैसे–वैसे उस पर शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक साधनों का प्रभाव पड़ता जाता है, वही दूसरी ओर उसमें सामाजिक भावना भी विकसित होती जाती है। परिणामस्वरुप वह शनैः शनैः प्रौढ़ व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों को निभाने के योग्य बन जाता है।

शिक्षा मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। शिक्षा एक जीवन–पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा के द्वारा मानव का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। मानव जीवन को उन्नत एवं खुशहाल बनाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की उन्नति कर सकता है।

शिक्षा की मनुष्य के जीवन में आवश्यकताएँ निम्नलिखित है–

1) व्यक्ति के मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए।
2) शारीरिक विकास के लिए।
3) मनुष्य के चारित्रिक/नैतिक विकास हेतु।
4) व्यक्ति के संवेगों में सकारात्मक सुधार के लिए।
5) मनुष्य के आध्यात्मिकता विकास हेतु।
6) मनुष्य को कुशल व्यावसायिक कौशल या आर्थिक कौशल (जीविकोपार्जन) की कला में सहायता प्रदान करने हेतु।
7) राष्ट्रीय विकास में सहायक।
8) अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास में सहायक।
9) मनुष्य में सामाजिकता के विकास हेतु।

संक्षेप में, शिक्षा वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक; तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। इससे वह समाज का एक उत्तरदायी घटक एवं राष्ट्र का प्रखर, चरित्र–सम्पन्न नागरिक बनकर समाज की सर्वांगीण उन्नति में अपनी शक्ति का उत्तरोत्तर प्रयोग करने की भावना से ओत–प्रोत होकर संस्कृति तथा सभ्यता को पुनर्जीवित एवं पुनःस्थापित करने के लिए प्रेरित हो जाता है।

अतः उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा की परम आवश्यकता है। शिक्षा के अभाव में मनुष्य का विकास सम्भव नहीं है।

Scanned by CamScanner

शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Education)

शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1) **शारीरिक विकास से सम्बन्धित उद्देश्य (Objective Related to Physical Development)**–'तुलसीदास' जी ने कहा है, "तुलसी धनधान शरीराहे लौ" अर्थात् शरीर से ही सब कुछ है। स्वस्थ शरीर से ही मनुष्य सभी उद्देश्यों, सभी लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है। अतः शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य शारीरिक विकास करना है। स्वस्थ शरीर से ही सभी इच्छाओं की प्राप्ति की जा सकती है चाहे वह भौतिकता से सम्बन्धित हो या आध्यात्मिकता से।

2) **बौद्धिक या मानसिक विकास से सम्बन्धित उद्देश्य (Objectives Related to Intellectual or Mental Development)**–मस्तिष्क ही मनुष्यों की सभी क्रियाओं एवं गतिविधियों को संचालित करता है। मस्तिष्क के बिना मनुष्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती हैं। मानसिक रूप से विकसित मनुष्य ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों से सम्बद्ध समस्याओं का समाधान कर सकता हैं। सत्य, असत्य, उचित–अनुचित, भाषा का ज्ञान, अध्यात्म का ज्ञान तथा यथार्थता का ज्ञान बालकों के मानसिक विकास से ही सम्भव हो पाता है। मानसिक विकास के द्वारा बालकों में तर्क, मनन, चिन्तन, स्मृति, निरीक्षण एवं निर्णय लेने की क्षमताओं का विकास होता है, अतः बालकों का मानसिक विकास शिक्षा का प्रमुख कर्त्तव्य है।

3) **उत्तम चरित्र के विकास का उद्देश्य (Objectives of Good Character Development)**–समाज के अंतर्गत् मनुष्यों के व्यवहार तथा रहन–सहन से सम्बन्धित कुछ नियम और सिद्धान्त होते हैं। आचार विचार से सम्बन्धित नियमों का पालन करना नैतिकता कहलाती है। नैतिकता के लिए चारित्रिक रूप से सुदृढ़ होना आवश्यक है। बालकों का नैतिक एवं चारित्रिक विकास समाज एवं व्यक्तिगत दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। अतः बालकों का नैतिक एवं चारित्रिक विकास शिक्षा के वैयक्तिक विकास का महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

4) **सांस्कृतिक विकास से सम्बन्धित उद्देश्य (Objectives Related to Cultural Development)**–देश की सांस्कृतिक विचार–धाराओं एवं गतिविधियों के विकास के लिए भी शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा का उद्देश्य बालकों में अपने देश की संस्कृति के प्रति आस्था रखने एवं उन्हें उस संस्कृति के अनुरूप आचरण करने का भी प्रावधान निहित होता हैं।

5) **आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित उद्देश्य (Objectives Related to Spiritual Development)**–पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों को देखते हुए आज शिक्षा का उद्देश्य बालकों में आध्यात्मिक गुणों की वृद्धि करके उनका आध्यात्मिक रूप से विकास करना है। भौतिकवाद के कारण देश की आध्यात्मिकता धीरे–धीरे कम होती जा रही है तथा हम अपनी मूल संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। बालकों में आध्यात्मिक मूल्यों को जाग्रत करने का कार्य शिक्षा के वैयक्तिक विकास के उद्देश्यों में निहित होना चाहिए जिससे बालक उस परम शक्ति को समझ सके जो सम्पूर्ण विश्व का संचालन करती है।

6) **आर्थिक विकास का उद्देश्य (Objectives of Economic Development)**–शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे बालकों में आर्थिक सक्षमता का विकास हो। बालक व्यक्तिगत एवं पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम बन सके तथा ऐसा उद्देश्य शिक्षा के वैयक्तिक विकास में निहित होना चाहिए।

7) **वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास (Development of Scientific Point of View)**–प्रत्येक देश के आर्थिक विकास में विज्ञान एवं तकनीकी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। देश के विकास में योगदान हेतु बालकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होना भी अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा इसे संभव बनाया जाता है।

8) **रुचियों के विकास का उद्देश्य (Objective of Interest Development)**–रुचियों के द्वारा ही बालक सीखने के लिए तत्पर होता है। रुचियाँ ही चरित्र को निर्धारित करती है। शिक्षा का उद्देश्य बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु रुचियों का विकास करना भी होना चाहिए।

9) **नागरिकता की भावना का विकास (Development of Civic Sense)**–एक योग्य नागरिक बनने हेतु बालकों में सामाजिक नेतृत्व का गुण विकसित करना भी शिक्षा के वैयक्तिक विकास का एक उद्देश्य है। योग्य नागरिक बनकर ही बालक देश की प्रगति में सहायक हो सकता है।

10) **समाज एवं वातावरण से समायोजन का उद्देश्य (Objective of Adjusting to Society and Environment)**–बालकों में सामाजिक कार्यों, सामाजिक चेतना एवं सहयोग की भावना को विकसित करना भी शिक्षा के उद्देश्यों में निहित है। शिक्षित व्यक्ति पर्यावरण से सामंजस्य भी स्थापित कर लेता है।

अध्ययन विषय/अध्ययन क्षेत्र के रूप में शिक्षा (EDUCATION AS A DISCIPLINE/ AREA OF STUDY)

प्रश्न 2– अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। शिक्षा को अध्ययन विषय के रूप में देखने के कारण लिखिए। एक अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा का क्षेत्र स्पष्ट कीजिए।

Explain the concept of education as a Discipline. Write about reasons to view education as a Discipline. Explain the scope of education as a Discipline.

या

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write short notes on the following:

1) **शिक्षा को अध्ययन विषय के रूप में देखने के कारण (Reasons to View Education as a Dicipline)**
2) **एक अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा का क्षेत्र (Scope of Education as a Discipline)**
3) **अध्ययन विषय के वर्गीकरण में शिक्षा का स्थान (Place of Education in the Classification of Disciplines)**

उत्तर– शिक्षा, ज्ञान एवं अनुभव के साथ–साथ कौशलों, आदतों एवं व्यवहारों के विकास की प्रक्रिया है। शिक्षा का अर्थ है–

Scanned by CamScanner

अज्ञानता से बाहर होना। स्वामी विवेकानन्द का मानना है कि शिक्षा महले से ही मनुष्य में उपस्थित दैवीय पूर्णता की अभिव्यक्ति है। शिक्षा एक त्रिकोणीय प्रक्रिया है इसमें शिक्षक का अंतर खेल शामिल है। शिक्षक एक ऐसा व्यक्ति जो बच्चे की आदतों एवं व्यवहारों का संशोधन करने का प्रयास करता है। अध्ययन विषय / अध्ययन का क्षेत्र ज्ञान की एक शाखा है जिसे विश्वविद्यालय स्तर पर पढ़ाया जाता है और शोध किया जाता है।

अध्ययन विषयों को अनुसंधान द्वारा परिभाषित करके एवं मान्यता प्रदान करके शैक्षिक पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया है तथा समाज और शैक्षणिक विभागों या संकायों के द्वारा सीखा जाता है। यह ज्ञान के प्रकार, विशेषज्ञता, लोगों के कौशल, परियोजनाओं, समुदायों की समस्या, चुनौतीपूर्ण अध्ययनों का वर्णन करता है। जांच–उपागम और अनुसन्धान के क्षेत्र, शैक्षणिक अध्ययन के क्षेत्र से जुड़े होते है।

उदाहरण के लिए– विज्ञान की शाखाओं को आमतौर पर वैज्ञानिक अध्ययन विषयों के रूप में जाना जाता है, जैसे– भौतिक विज्ञान और गुरुत्व उस विषयक ज्ञान से दृढ़ता से जुड़ा हुआ है।

फ्रांसीसी समाजशास्त्री **पियरे बारडीव (Pierre Bourdieu)** ने सन् 2000 में शिक्षा को अध्ययन विषय रूप में अपना उत्कृष्ट सामाजिक व्यवहार एवं अप्रासंगिक समाजशास्त्रीय तर्क प्रस्तुत किया। इनके अनुसार वृहद शैक्षिक अनुसन्धान के परिणामस्वरूप शिक्षा एक अध्ययन विषय के रूप में होना चाहिए। शार्लोट काउसिंल (Charlotte's Counsel) के जैन ने भी शिक्षा को एक अध्ययन विषय के रूप में माना है। इनके अनुसार शिक्षा के द्वारा ही हम अपने बच्चों में अच्छी आदतों को उत्पन्न करते हैं, जिसके उपरान्त वे अपने वयस्क जीवन की शुरुआत करते हैं।

अध्ययन विषयों की कई शाखाएँ या उप–विषय हैं जो व्यवसायों की व्यवस्था के साथ सह–विकसित होते हैं, विशेष रूप से विषयक क्षेत्र में। अपने अनुशासनात्मक गुणों के कारण, शिक्षा का मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, दर्शन और इतिहास जैसे अन्य अच्छी तरह से स्थापित विषयों के साथ तुलना नहीं की जा सकती। इसके परिणामस्वरूप, इसकी अनुशासनात्मक प्रकृति पर विवाद उत्पन्न हो जाते हैं और शिक्षा के लिए उपयुक्त शैक्षणिक स्थिति का निर्णय करना मुश्किल हो जाता है। एक ओर, शिक्षा में ऐसे गुण होते हैं जिन्हें एक अनुशासन के रूप में पहचाना जाना चाहिए दूसरी ओर, इसमें कई गुण हैं, जो इसे अन्य विषयों से अलग कर देते हैं या कभी–कभी सामान्य अनुशासनात्मक फ्रेम से परे होते हैं। शैक्षणिक स्थिति से सम्बन्धित कई विवादों में शिक्षा के ये अद्वितीय और असामान्य गुण हैं।

शिक्षा को अध्ययन विषय के रूप में देखने के कारण (Resons to View Education as a Dicipline)

एक अध्ययन विषय बनने के लिए एक विषय को अत्यन्त व्यवसायिक होना चाहिए। एक अध्ययन विषय की अपनी स्वतन्त्र भाषा प्रणाली एवं अपनी व्यवसायिक तकनीक होनी चाहिए। इसका अभिप्राय है कि अध्ययन विषय के अपने सिद्धांत होने चाहिए।

अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा पर विचार करने के निम्नलिखित कारण हैं–

1) **शिक्षा अध्ययन विषय के नामकरण के पारम्परिक पक्ष (Traditional Ways of Naming a Discipline)**–इसे निम्नलिखित चार भागों में विभाजित करके स्पष्ट कर सकते हैं–
   i) अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा की स्वयं अपनी एक स्पष्ट परिभाषित विषय वस्तु होती है।
   ii) अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा की स्वयं की अध्ययन विधि होती है। **उदाहरण के लिए**– व्याख्यान, प्रदर्शन, स्पष्टीकरण इत्यादि।
   iii) अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा का स्वयं एक अनुसन्धान अथवा जाँच का क्षेत्र होता है।
   iv) अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा हमारी संस्कृति का सौम्य हिस्सा है।

2) **शिक्षा अध्ययन विषय के नामकरण के सामाजिक–व्यावहारिक पक्ष (Socio-Pragmatic Ways of Naming a Discipline)**–शिक्षा अध्ययन विषय के नामकरण के सामाजिक–व्यावहारिक पक्ष निम्नलिखित हैं–
   i) शिक्षा मानव रुचियों पर आधारित होती है। शिक्षा सकारात्मक अथवा निश्चयात्मक विज्ञान तथा मानक है, इसलिए यह अध्ययन विषय है।
   ii) शिक्षा क्या है तथा क्या होना चाहिए की भी व्याख्या करती है, इसलिए यह अध्ययन विषय है।

3) **शिक्षा अध्ययन विषय के असंबद्ध नामकरण के पक्ष (Discoursive Ways of Naming a Discipline)**–इसके निम्नलिखित पक्ष हैं–
   i) अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा निश्चित ज्ञान प्रदान करता है जो कारण एवं प्रभाव के सम्बन्ध में विश्वास करता है।
   ii) अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा ज्ञान का निर्माण करती हैं।
   iii) अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा चिन्तन की स्वतंत्रता को प्रदीप्त करती है।

4) **यह शिक्षा के प्रमुख केन्द्रीय क्षेत्रों को शामिल करता है**–शिक्षक शिक्षा, शिक्षा मार्गदर्शन और परामर्श, शिक्षा नियोजन और प्रबन्धन, जनसांख्यिकीय शिक्षा, विशेष शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा समावेशी और अंतर सांस्कृतिक शिक्षा, पाठ्यक्रम विकास, शैक्षिक माप और मूल्यांकन शारीरिक शिक्षा, कम्प्यूटर शिक्षा, शांति शिक्षा, मूल्य शिक्षा, आदि शिक्षा के प्रमुख केन्द्रीय क्षेत्र हैं।

अतः शिक्षा के द्वारा बालक के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। शिक्षा द्वारा बालक के प्रवाहित व्यवहारों पर नियन्त्रण लगाएं रखने का प्रयास भी किया जाता है। शिक्षित व्यक्ति को समाज में परिपक्व माना जाता है। अतः शिक्षा एक विषय भी है और एक अध्ययन विषय भी है।

एक अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा का क्षेत्र (Scope of Education as a Discipline)

शिक्षा के क्षेत्र से अभिप्राय अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा के अधीन प्रमुख केन्द्रीय क्षेत्रों से हैं। पिछले कुछ वर्षों की तुलना में वर्तमान शिक्षा अधिक संरचित है जहाँ औपचारिक शिक्षा की कोई उपयुक्त अवधारणा नहीं थी। एक अध्ययन विषय के रूप में शिक्षा का क्षेत्र निम्नलिखित है

Scanned by CamScanner

शिक्षा का स्तर (Levels of Education)

शिक्षा के निम्नलिखित स्तर हैं–

1) **पूर्व–प्राथमिक शिक्षा**–पूर्व प्राथमिक शिक्षा को नर्सरी एजुकेशन, किण्डर गार्डन शिक्षा, जैसे विभिन्न नामों से जाना जाता है। नर्सरी और बालवाड़ी वास्तव में पूर्व–प्राथमिक शिक्षा की पश्चिमी प्रणाली है, जिसे हम भारतीय प्रणाली में अपनाने की कोशिश कर रहे हैं। यहाँ बच्चों को सिखाया जाता है कि कैसे बुनियादी कौशल विकसित करना है। भारत में गांधीजी ने पूर्व–बुनियादी शिक्षा की योजना बनाई थी, बालवाड़ी माण्टेसरी, नर्सरी, प्री–बेसिक स्कूल, डे केयर सेंटर, बालवाडी, आदि इसके उदाहरण हैं।

2) **प्राथमिक शिक्षा**–औपचारिक शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्था में प्राथमिक शिक्षा को शामिल किया गया, यह वह चरण है जब बच्चे की पढ़ाई आरम्भ होती है। इसलिए इसे प्रारम्भिक शिक्षा भी कहतें है। यह शिक्षा 5 या 6 साल की उम्र से आरम्भ होती है। प्राथमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चे को विभिन्न विषयों जैसे विज्ञान, गणित और सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों की सामान्य जानकारी प्रदान करना है।

3) **माध्यमिक शिक्षा**–यह प्राथमिक शिक्षा के अन्त में नवीं कक्षा से आरम्भ होता है। प्राथमिक शिक्षा के अंतिम चरण अर्थात् आठवीं कक्षा के बाद बालक माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर प्रवेश करता है। इसकी शुरूआत आठवीं कक्षा के साथ–साथ और बारहवीं कक्षा के साथ समाप्त होती है, इस चरण को 1991 तक प्री–डिग्री कोर्स के रूप में कॉलेजों से जोड़ा गया था।

4) **उच्च शिक्षा**–उच्च शिक्षा गैर–अनिवार्य शैक्षिक स्तर है जिसमें अंडर ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट शामिल है। व्यावसायिक शिक्षा प्रशिक्षण के साथ आमतौर पर किसी व्यक्ति को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में प्रवेश करने की आवश्यकता होती है।

5) **विशेष शिक्षा**–कुछ ऐसे छात्र हैं जिनके लिए विशेष शिक्षा आवश्यकताओं की आवश्यकता होती है, जो विशेष शिक्षा के माध्यम से IDEA (विकलांग शिक्षा शैक्षिक अधिनियम) के अनुसार संबोधित होते हैं, ऐसे बच्चे को विशेष शिक्षा सहायता की आवश्यकता है, जिसके बाद बच्चे का मूल्यांकन उसकी योग्यता के आधार पर किया जाता है या उसकी योग्यता निर्धारित की जाती है।

6) **प्रौढ़ शिक्षा**–जैसा कि नाम से पता चलता है कि प्रौढ़ शिक्षा वयस्कों को शिक्षित करने का एक प्रयास है। वयस्क शिक्षा के विभिन्न रूप हैं, अर्थात् औपचारिक, कक्षा आधारित शिक्षा, ई–शिक्षा और आत्म निर्देशित शिक्षा।

शिक्षा के पहलू (Aspects of Education)

शिक्षा के पहलू में निम्नलिखित बिन्दु समाहित हैं–

1) **शिक्षा का उद्देश्य**–उद्देश्यों से गतिविधियों को दिशा मिलती है। शिक्षा के उद्देश्य व्यक्ति और समाज एवं सामाज़िक स्थिति की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा का उद्देश्य तैयार किए जाते है।

2) **पाठ्यचर्या**–स्कूली शिक्षा और आगे की शिक्षा का जैविक हिस्सा लंबे समय से एक पाठ्यचर्या के विचार से जुड़ा हुआ है। पाठ्यचर्या, पाठ्यसामग्री को ढंकने के लिए शिक्षक के हाथ में एक उपकरण है। इसमें पाठ्यचर्या के बुनियादी सिद्धांत, विषय वस्तु के आयोजन के तरीके, पाठ्यचर्या निर्माण कार्यान्वयन और मूल्यांकन की प्रवृत्ति शामिल है।

3) **शिक्षण की विधि**–शिक्षण विधि में अनुदेशन के लिए इस्तेमाल सिद्धांत और विधि शामिल है, आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली शिक्षण विधि में व्याख्यान, प्रदर्शन,योजना, समस्या समाधान, चर्चा विधि आदि शामिल हैं। विधि का चुनाव जानकारी या कौशल पर आधारित है। छात्र शिक्षण विधि शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्रीय क्षेत्र है।

4) **शिक्षक की भूमिका**–शिक्षक प्रगतिशील समाज के मुख्य स्तम्भ में से एक हैं जिनके ऊपर शिक्षा का भार और उत्तरदायित्व होता है ये बच्चों के लिए ज्ञान और मूल्य का मुख्य स्रोत हैं। शिक्षक अपने विद्यार्थियों को जानकारी प्रदान करते हैं। आधुनिक समाज में शिक्षकों की प्रमुख भूमिका है।

5) **अनुशासन**–अनुशासन व्यवहार का आंतरिक नियंत्रण है। अनुशासन तीन प्रकारों का हो सकता है सबसे पहले एक प्रभावशाली अनुशासन है जिसमें एक छोटा बच्चा वयस्कों के व्यवहार का अनुकरण करते हुए अनुशासन में रहता है। दूसरा, मुक्त अनुशासन है जिसमें बच्चों को स्वयं परिणाम भुगतना पड़ता है। तीसरा दमनकारी है जिसमें बच्चों को सजा और अधिकार के माध्यम से सिखाया जाता है।

शिक्षा के प्रकार (Types of Education)

शिक्षा की प्रक्रिया को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है– औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा एवं निरौपचारिक शिक्षा।

1) **औपचारिक शिक्षा**–औपचारिक शिक्षा वह शिक्षा है जिसमें शिक्षक नियमित एवं निरन्तर रूप से कक्षा स्थिति में छात्रों को सिखाता है अर्थात् दोनों को एक–दूसरे का सामना करना पड़ता है और समय सारणी के अनुसार पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर शिक्षण कराया जाता है एवं शिक्षण सत्र के अन्त में परीक्षा कराकर अगली कक्षा में पदोन्नति की जाती है। यह कानूनी तौर पर संस्थागत और कठोर है।

2) **अनौपचारिक शिक्षा**–अप्रत्यक्ष तरीके से प्राप्त शिक्षा को अनौपचारिक शिक्षा कहा जाता है। कुछ लोगों ने इसे व्यक्तिगत शिक्षा कहा है। इसके कोई अनुमानित लक्ष्य नहीं है।

3) **गैर–औपचारिक शिक्षा**–इस समूह में स्कूल छोड़ने वालों, नियोजित या कार्यरत व्यक्ति शामिल हैं जो अतिरिक्त संस्थानों से दूर रहते हैं। गैर–औपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा का एक विकल्प या समानांतर नहीं है।

अध्ययन विषय के वर्गीकरण में शिक्षा का स्थान (Place of Education in the Classification of Disciplines)

विभिन्न विद्वानों ने अध्ययन विषयों को अलग–अलग रूप में वर्गीकृत किया हैं हमने अध्याय–1 में इन वर्गीकरणों में से कुछ पर चर्चा की है हालांकि, अध्ययन के विषय के रूप में शिक्षा की प्रकृति से जुड़े विभिन्न विवादों के कारण, इनमें से किसी भी वर्गीकरण में शिक्षा के लिए कोई जगह ढूंढना आसान नहीं है। चूंकि, शिक्षा एक ही समय में कई विषयों की विशेषताओं को शामिल करता है। अतः दी गई श्रेणियों में से किसी एक में इसके वर्गीकरण ने कई सवाल उठाए हैं शायद, इसे सामान्य अनुशासनात्मक फ्रेम से अलग रखना अधिक उचित होगा।

Scanned by CamScanner

शिक्षा के विविध नाम (Different Names of Education)
विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए विभिन्न व्याख्याओं के कारण शिक्षा को विभिन्न नामों से जाना जाता है–

1) एक स्थापित अध्ययन विषय
2) एक उभरती हुआ अध्ययन विषय
3) प्रायोगिक या व्यावसायिक अध्ययन
4) छद्म विज्ञान
5) सम्बन्धित अध्ययन विषयों का एक परिवार
6) अध्ययन का एक क्षेत्र
7) एक व्यावहारिक गतिविधि अन्य विषयों की सामग्री का संचार करती है
8) अंतःविषय / बहुआयामी / ट्रांस अनुशासनात्मक

इन विभिन्न पहचान के कारण, विषयों के वर्गीकरण की श्रेणी में से किसी एक में शिक्षा देना आसान नहीं है। इनमें से कुछ मुख्य वर्गीकरण प्रणालियाँ और इन प्रणालियों में शिक्षा के सम्भावित स्थान पर नीचे चर्चा की गई है–

शैक्षणिक विषयों का सन्निकट वर्गीकरण (Approximate Classification of Academic Disciplines)
अध्ययन विषय का अनुमानित वर्गीकरण विश्वविद्यालयों और कॉलेज़ों में शिक्षकों और विभागों को वर्गीकृत करने और पुस्तकालय के विभिन्न वर्गों के आयोजन में एक सुविधाजनक तरीका है। इस वर्गीकरण में, विभिन्न विषयों को निम्न प्रकारों में से एक में वर्गीकृत किया जाता है–

1) ललित कला,
2) मानविकी,
3) सामाजिक विज्ञान,
4) प्राकृतिक विज्ञान,
5) गणित,
6) व्यवसायिक एवं प्रायोगिक विज्ञान

शिक्षा इनमें से दो श्रेणियों के निकटतम है–

1) **सामाजिक विज्ञान के रूप में शिक्षा**–सामाजिक विज्ञान में नृविज्ञान, पुरातत्व, अर्थशास्त्र, भूगोल, इतिहास, भाषा विज्ञान, राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान जैसे विषय शामिल हैं। उनका कार्य मानव समाज के पहलुओं, उसके विकास और उन सभी प्रक्रियाओं का पता लगाना है, जो इसे प्रभावित करते हैं।

   मेरियम–वेबस्टर डिक्शनरी में सामाजिक विज्ञान की तीन परिभाषाएँ नीचे दी गई हैं–
   i) विज्ञान की कोई भी शाखा जो मानव व्यवहार के सामाजिक सांस्कृतिक पहलुओं से सम्बन्धित है।
   ii) विज्ञान की एक शाखा जो संस्थानों और मानव समाज के कामकाज और समाज के सदस्यों के रूप में व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों के साथ काम करती है।
   iii) मानव विज्ञान के किसी विशेष चरण या पहलू से सम्बन्धित एक विज्ञान (नृविज्ञान या सामाजिक मनोविज्ञान के रूप में)।

   इन परिभाषाओं का शैक्षणिक विश्लेषण दर्शाता है कि शिक्षा भी एक सामाजिक विज्ञान है क्योंकि यह मनुष्य के सामाजिक पहलू की जांच करने से सम्बन्धित है क्योंकि किसी भी समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक पहलू उस समाज की शिक्षा पद्धति को आकार देते है। विद्यालय अपने आप में एक लघु समाज भी है इसलिए, पारस्परिक सम्बन्ध शिक्षा की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अलावा, शिक्षा न केवल हमारे समाज के विशेष चरण या पहलुओं से प्रभावित होती है बल्कि समाज के प्रत्येक पहलू को शिक्षा प्रभावित करती है।

2) **व्यावसायिक या एप्लाइड साइंस के रूप में शिक्षा**–व्यावसायिक विज्ञान एक निश्चित व्यवसाय के साथ काम करते हैं। वे कृषि, वास्तुकला और डिजाइन, व्यवसाय प्रबंधन, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, पत्रकारिता, सूचना प्रौद्योगिकी और अन्य हैं। ये कई विषयों से निविष्टियाँ लेते हैं और समाज की सेवा में संचित ज्ञान लागू करते हैं। विकिपीडिया व्यवसायिक अध्ययन को परिभाषित करता है, व्यवसायिक अध्ययन एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग शैक्षणिक कार्यक्रमों को वर्गीकृत करने के लिए किया जाता है जो केन्द्र में लागू होते हैं या अंतःविषय हैं। एक विशिष्ट व्यवसाय के लिए गैर–शैक्षिक प्रशिक्षण के लिए भी इस शब्द का इस्तेमाल किया जा सकता है। व्यावसायिक अध्ययन आमतौर पर सिद्धांत और अभ्यास–आधारित व्यावसायिक शिक्षा को जोड़ती है, जो ज्ञान के एक शरीर पर ध्यान केंद्रित करता है जो गैर–व्यावसायिक अध्ययनों से अधिक सख्ती से चित्रित और विहित है।

   व्यवसाय के सर्वोत्तम अभ्यास में छात्रों को अपेक्षित मानकों और पर्याप्त सेवा वितरण सुनिश्चित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है

शिक्षा की प्रक्रिया को समझने और सुधारने के लिए कई विषयों से निविष्टियाँ ली जाती है और तदनुसार भविष्य के शिक्षकों में वांछित कौशल और व्यवहार विकसित करती है।

शिक्षण के अलावा, शिक्षा के कई अन्य व्यवसायिकों जैसे शैक्षिक शोधकर्ताओं, पाठ्यक्रम बनाने वाले, नीति निर्माताओं, प्रशासकों, शैक्षिक पर्यवेक्षक और परामर्शदाता भी शिक्षा के अध्ययन के द्वारा तैयार किए जाते हैं। शिक्षा में दोनों, सामाजिक विज्ञानों और व्यावसायिक अध्ययनों की, विशेषताएँ हैं।

शिक्षा की अन्तःविषयक प्रकृति (INTERDISCIPLINARY NATURE OF EDUCATION)

प्रश्न 3– अन्तःविषयक प्रकृति में शिक्षा का स्वरूप निर्धारित कीजिए। शिक्षा का अन्य विषयों से सम्बन्ध का सविस्तार वर्णन कीजिए।
Define the form of education in Interdisiplinary nature. Describe the relation of education with other Disciplines.

उत्तर– विभिन्न अकादमिक अनुशासन एवं उसके अन्तर्गत् आने वाले विषयों की चर्चा से समझ चुके हैं कि विषय परिवर्तनशील है। समय, आवश्यकता और उद्देश्यों के आधार पर हम विषयों को अलग–अलग श्रेणी में रख सकते है किन्तु अलग–अलग अकादमिक अनुशासन के प्रति कठोर नियम का पालन नहीं हो

Scanned by CamScanner

सकता है क्योंकि कुछ उपविषय दो अकादमिक अनुशासन के मध्य सेतु का कार्य करते हैं। इन विषयों को पृथक–पृथक करके नहीं समझा जा सकता है। आज के समय में, ज्ञान के, विस्फोट के युग में, विषयों को अपनी पारम्परिक सीमाओं को तोड़कर सम्मिलन की आवश्यकता होती है। विषयों की यही प्रकृति अन्तःअनुशासक प्रकृति होती है। इसी प्रकृति के कारण नित नए विषयों का प्रार्दुभाव ज्ञान के क्षेत्र में होता जा रहा है। इससे विषयों से सम्बन्ध स्थापित किए बिने ज्ञान का विस्तारण असम्भव है।

उदाहरण के लिए– शुद्ध जीव विज्ञान, चिकित्सा एवं तकनीकी तीनों पृथक विषयों के सम्मिलन से नवीन विषय "जैव तकनीकी" (Biotechnology) का प्रार्दुभाव हुआ। इसी प्रकार अनेक विषय **जैसे**– जीव रसायन, सूक्ष्म जीव विज्ञान, खगोल भौतिक, कम्प्यूटर विज्ञान प्रबन्धन आदि अन्तःअनुशासनात्मक विषय की श्रेणी में आते हैं।

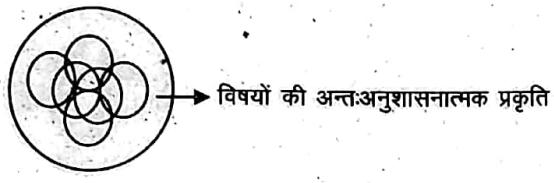

अन्तःअनुशासनात्मक ज्ञान, वास्तविक अकादमिक ज्ञान की सीमाओं और क्षेत्र का विस्तारण है। यह दो विषयों अथवा अनुशासन के मध्य सम्बन्धों को परिभाषित एवं नया रूप प्रदान करता है।

अन्तःविषयक प्रकृति में शिक्षा का रूप (Form of Education in Interdisiplinary Nature)

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इसका निर्धारण कैसे हो कि दोनों विषयों को साथ मिलाकर उद्देश्यों का निर्धारण कैसे हो? कैसे विषयों की अन्तप्रकृति को स्थापित किया जाए। विषयों का आपसी सम्बन्ध कैसा हो? इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए हम शिक्षा को दो रूपों में समझेंगे–

1) शिक्षा (एक विषय/अकादमिक अनुशासन)
2) शिक्षा (एक प्रक्रिया/पद्धति/निकाय)

शिक्षा (अकादमिक अनुशासन) [Education (Academic Discipline)]

जब हम शिक्षा की अवधारणा को एक अकादमिक विषय के रूप में देखते हैं तो यह पाते हैं कि "शिक्षा विषय के रूप में सभी अन्य विषयों से सर्वथा भिन्न है।" शिक्षा अपने आप में सम्पूर्ण है। शिक्षा जब पाठ्यक्रम के स्वतन्त्र भाग के रूप में कार्य करती है तो यह एक विषय का रूप ले लेती है। स्वतन्त्र विषय के रूप में इसके उद्देश्य, लक्ष्य एवं प्रकृति भिन्न हो जाती है। शिक्षा एक विषय के रूप में जब पाठ्यक्रम में स्थापित होती है तो शुद्ध ज्ञान के अतिरिक्त अनेक उपविषयों एवं पृथक विषयों का भी सम्मिलन होना आवश्यक होता है। इस विषय में शिक्षणशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों प्रविधियों के अतिरिक्त, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, दर्शनशास्त्र, इतिहास एवं तकनीकी का भी समावेश आवश्यक है। ज्ञान को अनुपयोगी एवं समयगत परिवर्तनशील होना चाहिए। अतः समाज, तकनीकी, मनोविज्ञान के अन्तर्सम्बन्धों का शिक्षाशास्त्र से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इन विषयों के परिवर्तन से ही शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित होता है और यही सम्बन्ध शिक्षा का अन्तःनुशासनात्मक सम्बन्ध या प्रकृति कहलाता है। इस प्रकार शिक्षा स्वतन्त्र विषय होते हुए भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न विषयों पर निर्भर अथवा सम्बन्धित रहती है।

शिक्षा की इस प्रकृति को हम निम्न चित्र द्वारा सरलता से समझ सकते हैं–

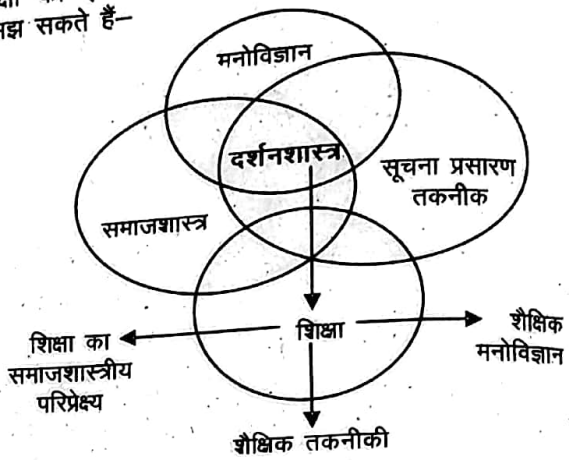

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि जब

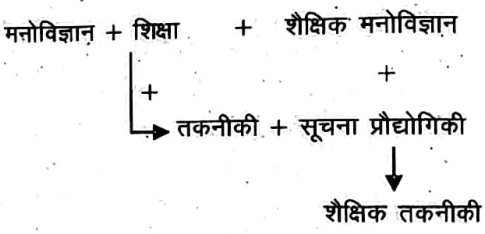

समाजशास्त्र + शिक्षा ⟶ शैक्षिक समाजशास्त्र

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा स्वतन्त्र विषय के रूप में अस्तित्व रखता है किन्तु उसके ज्ञान क्षेत्र के अन्तर्गत अन्य विषयों के ज्ञान का समावेश भी आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार शिक्षा की अन्तःअनुशासनात्मक प्रकृति के कारण नए विषयों का प्रार्दुभाव होता है। शिक्षा की यही प्रकृति उसके ज्ञान को रचनात्मक, नवाचारी (Innovative) एवं प्रयोजनवादी बनाती है।

शिक्षा प्रक्रिया के रूप में (Education as a Process)

हम "शिक्षा" को विषय के रूप में समझने के पश्चात् यहाँ "शिक्षा" को एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया के रूप में समझेंगे–

1) **शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया**–एक बालक शिक्षा केवल औपचारिक एजेन्सी (अर्थात विद्यालय और शिक्षक) से ही नहीं प्राप्त करता अपितु अपने अनुभवों से भी प्राप्त करता है। ये अनुभव उसे समाज, सामाजिक क्रियाकलाप, प्रकृति, परिवेश, जीवमण्डल, व्यक्तित्व से निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं। यह सीखने की प्रक्रिया जन्म से मृत्यु तक अनवरत चलती रहती है। व्यक्ति अपने ज्ञान को अनुभव में परिवर्तित करता है जो उसके व्यवहार में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होते हैं। जीवन के अनुभव से सीखना और व्यवहार में परिवर्तन करना ही शिक्षा है। अतः हम संक्षेप में कह सकते हैं, "जीवन ही शिक्षा है तथा शिक्षा ही जीवन है।" इस दृष्टिकोण से "शिक्षा" जीवन में परिवर्तन की द्योतक है।

Scanned by CamScanner

2) **शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया**–शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज में, समाज के लिए तथा समाज के द्वारा सम्पन्न की जाती है। शिक्षा का अस्तित्व ही समाज के अस्तित्व पर आधारित होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के वह अस्तित्वहीन है। अतः शिक्षा का कार्य केवल व्यक्तिगत विकास तक ही सीमित नहीं होता अपितु इसका कार्य सामाजिक प्रभाव को देखना भी है। यदि शिक्षा "व्यक्ति" के रूप में श्रेष्ठ कार्य कर रही है किन्तु उसके द्वारा यदि सामाजिक गुण (समाजीकरण, सामाजिक सामंजस्य) का विकास नहीं किया जाता तो वह शिक्षा व्यर्थ है। मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। शिक्षा व्यक्तिगत विकास के साथ–साथ सामाजिक प्रक्रिया भी है। इसके द्वारा बालक को समाज में रहने, व्यवहार करने, रीति–रिवाज, लोक व्यवहार का ज्ञान प्रदान किया जाता है; जिससे समाज भी निरन्तर प्रगतिशील होता है। शिक्षा और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

3) **शिक्षा एक गत्यात्मक प्रक्रिया**–शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है। यह स्थिर नही हो सकती है। यह जन्म से प्रारम्भ होकर जीवन के अन्त तक निरन्तर गतिमान होने वाली प्रक्रिया है। जिस समाज ने शिक्षा को स्थिर करने का प्रयास किया वह समाज अस्तित्वहीन हो जाते हैं। नए–नए अनुभव को जीवन में सम्मिलित करना तथा उनके अनुसार व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन ही आवश्यक प्रक्रिया है।

4) **शिक्षा–विकास की प्रक्रिया**–प्रत्येक बालक में जन्म के साथ, उसके कुछ अनुवांशिक लक्षण होते हैं। ये अभिलक्षण, बालक को समाज के अनुरूप विकसित होने में सहायता प्रदान करते हैं। बालक निरन्तर सामाजिक, व्यक्तिगत गतिविधियों द्वारा अपने अनुभव में परिवर्तन करता रहता है। यह अनुभवजन्य परिवर्तन ही व्यवहार में परिवर्तन करते हैं तथा ज्ञान की संरचना करते हैं। शिक्षा निरन्तर बालक को शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक विकास के लिए प्रेरित करने की प्रक्रिया है। दर्शन तथा मनोविज्ञान के अनुसार ज्ञान की संरचना तथा व्यवहार में परिवर्तन सीखना है अतः "शिक्षा" विकास की प्रक्रिया है।

शिक्षा एवं अन्य विषयों से सम्बन्ध (Relation of Education with Other Disciplines)

हम समझ चुके है कि "शिक्षा" विषय या पद्धति दोनों रूप में एक विस्तृत अवधारणा है। इसमें शिक्षण सिद्धान्त, प्रक्रिया विधि के साथ–साथ अन्य विषयों के अध्ययन विधि भी सम्मिलित है। इस प्रकार एक प्रक्रिया के रूप में शिक्षा का अन्य विषय से गहरा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

इस अनुच्छेद में हम "शिक्षा" का अन्य विषयों के साथ सम्बन्ध एवं निर्भरता की विस्तार से चर्चा करेंगे–

1) **शैक्षिक मनोविज्ञान (शिक्षा + मनोविज्ञान)**–मनोविज्ञान की वह शाखा जिसमें ज्ञान का क्षेत्र, समस्या समाधान एवं शोध की दिशा शिक्षा पर निर्भर करती है, शैक्षिक मनोविज्ञान कहलाती है। शैक्षिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा के इन सभी पक्षों को सम्मिलित किया जाता है जिसका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास से सम्बन्ध होता है। हम सभी शैक्षिक मनोविज्ञान की रूपरेखा एवं महत्व से भलीभाँति परिचित है। इस प्रकार शैक्षिक मनोविज्ञान की अधिक चर्चा न करते हुए हम देखते हैं कि जब शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के साथ सम्मिलित होकर नयी विवेचना, नवीन ज्ञान का प्रार्दुभाव करते हैं तो ज्ञान की अलग शाखा या विषय का जन्म होता है।

शुद्ध शिक्षाशास्त्र अपने लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति तब तक नहीं कर सकते जब तक उसमें मनोविज्ञान के ज्ञान को सम्मिलित नहीं किया जाता है। अतः शिक्षा स्वयं एक स्वतन्त्र विषय है किन्तु एक प्रक्रिया के रूप में तब तक अधूरी है जब तक अन्य विषयों का समावेश न हो जाए। यह ज्ञान शिक्षक–प्रशिक्षक को अधिगमकर्ता के विषय में सभी आयामों से परिचित कराने के लिए आवश्यक है।

2) **शैक्षिक समाजशास्त्र (शिक्षा + समाजशास्त्र)**–शिक्षा समाजशास्त्र की प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में कहें तो शिक्षा और समाज अन्योन्याश्रित है। अतः समाजशास्त्र एवं पृथक–पृथक विषय के रूप में अध्ययन करके हम शिक्षा के अकादमिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकते हैं। प्रत्येक समाज एवं समुदाय के अपने विशेष लक्ष्य, उद्देश्य, सामाजिक समीकरण, संस्कृति, स्थान एवं क्रिया–कलाप होते हैं। इन सभी आयामों को एकीकृत करके शिक्षा अनुशासन में, समावेशित करना ही शिक्षा की अन्तःनुशासनात्मक प्रकृति है।

उदाहरण के लिए– भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता आध्यात्मिक परिपक्वता एवं संस्कृति का संरक्षण है। इस कारण भारतीय परिवेश में शिक्षा का उद्देश्य भी सर्वप्रथम संस्कृति का संरक्षण एवं आध्यात्मिक विकास निर्धारित किया गया है। अतः अकादमिक अनुशासन के रूप में शिक्षा समाजशास्त्र से विलग नहीं होकर समानान्तर एवं अन्योन्याश्रित है।

3) **शैक्षिक दर्शन (शिक्षा + दर्शन)**–हम शिक्षा की अवधारणा एवं दर्शन को भली–भाँति समझते हैं। प्रस्तुत अनुच्छेदों में इन दोनों के स्वतन्त्र विषय के रूप में महत्व पर चर्चा न करते हुए उसके अन्तःनुशासनात्मक प्रकृति अथवा संक्षेप में कहें तो आपसी निर्भरता पर चर्चा करेंगे। जीवन दर्शन की कला है, शैली है, विचार श्रृंखला है। जब यह विचार श्रृंखला किसी विशेष वर्ग या समुदाय के लिए सर्वमान्य हो जाती है तो यह उस समुदाय के लिए जीवन दर्शन हो जाती है। इस प्रकार यदि यह जीवन दर्शन समय, काल एवं भौगोलिक सीमाओं से ऊपर उठकर उद्धात स्वरूप ले लेता है तो वह सिद्धान्त का रूप ले लेता है और दर्शन के बाद का निर्माण करता है। **जैसे**– आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद, रचनावाद आदि। इस प्रकार जब दर्शन जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित है तो शिक्षा भी इसका एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हो जाता है। अतः दोनों के समावेश से शैक्षिक दर्शन विषय का जन्म होता है। यह विषय शिक्षा के उद्देश्यों, विधियों, पाठ्यक्रम, शिक्षण, प्रशासन की रूपरेखा निर्माण में सहायता प्रदान करता है।

उदाहरण के लिए रचनावाद के प्रादुर्भाव के साथ शिक्षण विधियों एवं शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन के लिए NCF-2005 प्रस्तुत किया गया। NCF-2005 के दिशा–निर्देश पूर्णतः रचनावाद को ध्यान में रखकर दिए गए हैं। इसी

Scanned by CamScanner

का परिणाम है कि वर्तमान में शिक्षण विधि एवं शिक्षक की भूमिका में तत्परता से परिवर्तन होते दिखाई दे रहे हैं।

4) **शैक्षिक प्रबन्धन (शिक्षा + प्रबन्धन)**–प्रबन्धन अपेक्षाकृत नवीन अकादमिक अनुशासन है। प्रबन्धन, मानवीय योग्यताओं, विशेषताओं और नीतियों का व्यावसायीकरण है। अब प्रश्न उठता है कि शिक्षा में प्रबन्धन का क्या सम्बन्ध हो सकता है? सरल भाषा में देखे तो शलयन के प्रारूप के पश्चात् यह तीव्रता से स्वीकार किया जाने लगा है कि शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में शिक्षक एक अहम् भूमिका में होता है। शिक्षक के व्यावसायिक दृष्टिकोण एवं योग्यता के बिना शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करना असम्भव है। प्रबन्धन, मानवीय गतिविधियों के नियोजन का सिद्धान्त है। इस प्रकार जब शिक्षक की गतिविधियों एवं प्रबन्ध के सिद्धान्तों का समावेश होता है तो "शैक्षिक प्रबन्धन" विषय आकार लेता है। यह विषय मुख्य रूप से विद्यालय प्रशासन स्रोत प्रबन्धन, प्रशासनिक क्षमताओं आदि उप–विषय के क्षेत्र में ज्ञान प्रदान करता है।

5) **शैक्षिक अर्थशास्त्र (शिक्षा + अर्थशास्त्र)**–मानव सभ्यता की विकास दर, वहाँ की अर्थव्यवस्था से जानी जाती है। अर्थशास्त्र, सभ्यता के संरक्षण का सबसे प्रमुख पहलू है। वर्तमान में देश की विकास दर उसके अर्थशास्त्र की नीतियों पर निर्भर करती है। अर्थशास्त्र का शिक्षा नीतियों के साथ समन्वय शैक्षिक अर्थशास्त्र की रचना करता है। इसमें मुख्य रूप से विद्यालय की आर्थिक नीतियाँ, भत्ते, वेतन, आर्थिक दण्ड, शुल्क जैसे विषयों को सम्मिलित किया जाता है। अर्थशास्त्र की नीतियाँ, शिक्षा व्यवस्था में गुणात्मक विकास के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। इसके माध्यम से विद्यार्थियों में बाजार, बचत, बजट जैसी कठिन अवधारणाओं को विकसित एवं समझाने का प्रयास किया जाता है।

6) **शिक्षा एवं मनुष्य जाति का विज्ञान**–शिक्षा, विकासशील है। मनुष्य सृष्टि के प्रारम्भ से ही जिज्ञासु रहा है, यह जिज्ञासा ही उसे विचारशील बनाती है। शिक्षा में मनुष्य के विकास तथा अधिगम के मध्य सम्बन्ध को समझा जाता है। अधिगम प्रणाली, मनोवृत्तियों में, मानव विकास के साथ सम्बन्धों के बारे में ज्ञान शिक्षा एवं मानविकी (Anthropology) में मिलता है। यह मानव की सभ्यता, संस्कृति में शिक्षा की भूमिका की विवेचना प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष–उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि शिक्षा एक वृहत अवधारणा है। यह स्वतन्त्र विषय होकर भी इसका अस्तित्व अन्य विषयों पर निर्भर है। जैसे–जैसे अन्य विषयों की संरचना, अवयव एवं सिद्धान्तों में परिवर्तन होता है वैसे–वैसे ही शिक्षा का स्वरूप भी परिवर्तित हो जाता है।

किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षा विषय तभी सफल माने जाते है जब वह मूलभूत सिद्धान्तों के साथ परिवर्तनशील एवं लचीले हो। दृढ़ एवं अपरिवर्तनशील विषय धीरे–धीरे अपना अस्तित्व खो देते है। आज के ज्ञान के युग में प्रत्येक विषय को एक–दूसरे का सहगामी बनकर विकास करने की आवश्यकता है।

सामाजिक व्यवस्था के रूप में शिक्षा (EDUCATION AS A SOCIALLY CONTRIVED SYSTEM)

प्रश्न 4– "सामाजिक व्यवस्था के रूप में शिक्षा" पर लेख लिखिए।
Write articles on "Education as Social System."

उत्तर– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। शिक्षा के उद्देश्यों में से एक प्रमुख उद्देश्य समाजीकरण अथवा सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सचेत करना भी है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या शिक्षा, समाज को दिशा देती है या समाज शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करता है। वस्तुतः यह प्रमाणित करना कि कौन, किसकी दिशा परिवर्तित करता है। अत्यन्त कठिन एवं शोधपूर्ण कार्य है।

शिक्षा एक अकादमिक विषय के रूप में अन्य विषयों के साथ सम्बन्ध की चर्चा हम पिछले अनुच्छेदों में विस्तार से कर चुके है। यहाँ हम "शिक्षा" को एक क्रिया मानकर विवेचना प्रस्तुत करेंगे। मनुष्य जीवन की गतिशीलता में औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा का गहरा सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध ही मानव को सामाजिक वातावरण में अन्तः क्रियाओं के सम्पादन का माध्यम बनता है। **रॉस (Ross) के अनुसार** "सामाजिक वातावरण के **बिना** वैयक्तिकता का न तो कोई मूल्य है और न ही कोई अर्थ।"

शिक्षा–व्यक्ति को, व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार समाज में अन्तःक्रिया करने योग्य बनाती है शिक्षा की यही प्रकृति उसे सामाजिक प्रक्रिया उसे सामाजिक प्रक्रिया के अविष्कारक के रूप में स्थापित करती है।

शिक्षा समाज के उद्देश्यों की पूर्ति का साधन है। ऐसा साधन, जिससे समाज अपनी पहचान तथा लक्षणों की प्राप्ति को सुनिश्चित करता है। शिक्षा एक व्यक्तित्व का निर्माण करता है। वही व्यक्तित्व अथवा विभिन्न व्यक्तित्व का समूह समाज को निर्मित करता है। इस प्रकार समाज में जीवन–यापन करने के लिए, प्रत्येक समाज को अपनी–अपनी कुछ अपेक्षाएँ होती है। यह अपेक्षाएँ, मान्यताएँ एवं दिशा निर्देश ही व्यक्ति को समाज में जीवन निर्वाह करने योग्य बनाते है।

ये मान्यताएँ, अपेक्षाएँ एवं दिशा निर्देश कौन निर्धारित करता है इनके स्रोत क्या है एवं किन–किन घटक से समाज के प्रारूप में परिवर्तन होता है इसकी चर्चा इस अनुच्छेद में करेंगे।

सामाजिक व्यवस्था के रूप में शिक्षा के विषय में जानने से पूर्व सामाजिक व्यवस्था क्या है? इस पर प्रकाश डालना आवश्यक है

सामाजिक व्यवस्था (Social System)
प्रत्येक क्रिया किसी न किसी नियम के अनुसार चलती है। यही नियम (व्यवस्था) क्रिया को सुचारू रूप से चलाती है। ऐसी ही स्थिति वस्तुतः हमारे समाज की भी होती है। समाज के समस्त क्रियाकलापों को नियन्त्रित करने के लिए बनाई गई व्यवस्था को सामाजिक व्यवस्था कहा जाता है।

Scanned by CamScanner

प्रत्येक समाज के अपने कुछ न कुछ रीति–रिवाज होते ही हैं। इन विभिन्न रीति–रिवाजों का सम्बन्ध मानव के सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं से होता है, जैसे– भोजन, वस्त्र, त्योहार, व्यवहार एवं विवाह आदि। इसी से मानव व्यवहार निर्देशित होता है। प्रत्येक समाज की इन्हीं रीति–रिवाजों को समाज में जो सर्वमान्य कार्य–प्रणालियाँ होती हैं उन्हें ही सामाजिक व्यवस्था के नाम से जाना जाता है।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, "समाज रीति–रिवाजों, कार्य–प्रणालियों, पारस्परिक सहयोगों, नियन्त्रण एवं स्वाधीनता आदि की व्यवस्था है।"

जोन्स के अनुसार, "सामाजिक व्यवस्था वह पद्धति है जिससे कि समाज के विविध भाग एक–दूसरे के साथ एवं सम्पूर्ण समाज के साथ एक सार्थक ढंग से सम्बद्ध रहते हैं।"

पारसन्स के अनुसार, "सामाजिक व्यवस्था सामाजिक क्रियाओं के भीतरी सम्बन्धों में बनती है। समाज की ये अन्तःक्रियाएँ सामाजिक व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण इकाई होती हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि हर समाज में दो प्रकार की शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं–,
1) संगठनात्मक शक्तियाँ एवं
2) विघटनात्मक शक्तियाँ

जहाँ एक ओर संगठनात्मक शक्तियाँ समाज को एक सूत्र में बाँधती हैं एवं समाज की स्थिरता में वृद्धि करती हैं वहीं दूसरी ओर विघटनात्मक शक्तियाँ समाज की एकता एवं स्थिरता को छिन्न–भिन्न अर्थात् विघटित करती हैं. परन्तु ऐसा कोई भी समाज नहीं है जहाँ पर मात्र एक ही प्रकार की शक्ति कार्य करती हो। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक समाज में दोनों प्रकार की ही शक्तियाँ कार्य करती हैं एवं इन दोनों के मध्य सन्तुलन बना रहता है। इस सन्तुलन की स्थिति को ही सामाजिक व्यवस्था की संज्ञा दी जाती है।

सामाजिक व्यवस्था की विशेषताएँ (Characteristics of Social System)

सामाजिक व्यवस्था की विशेषताएँ निम्नलिखित है–

1) **आदर्श लक्ष्यों का समावेश**–उन्हीं अन्तर्क्रियाओं से सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है जो समाज के द्वारा स्वीकृत कुछ आदर्श लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए की जाती हैं। इसके फलस्वरूप समाज में जिस आदर्श सन्तुलन का निर्माण होता है उसे ही सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।

2) **एकता का होना**–जिस प्रकार एक मशीन के समस्त पुर्जे मिलकर किसी मशीन को चलाते हैं एवं वस्तु का उत्पादन करते हैं, ठीक उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न घटक अपने उद्देश्य तक पहुँचाने में सहायता करते हैं। अतः यह कह सकते हैं कि समाज के विभिन्न घटक मिलकर ही सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करते हैं। अतः व्यवस्था में एकता स्थापित होना आवश्यक है।

3) **अन्तर्क्रियाओं की व्यवस्था**–सामाजिक व्यवस्था का कोई भौतिक स्वरूप नहीं होता। इसका कारण बहुत से कर्ताओं की अन्तर्क्रियाओं से होने के कारण, सामाजिक व्यवस्था अमूर्त होती है।

4) **सांस्कृतिक नियन्त्रण**–सामाजिक व्यवस्था में अनेक सांस्कृतिक नियन्त्रणों का समावेश होता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था अपने सदस्यों को अनेक सांस्कृतिक मानदण्डों, मूल्यों एवं प्रतीकों के अनुसार अन्तर्क्रियाएँ करने को बाध्य करती है या प्रोत्साहित करती है। सामाजिक व्यवस्था का यह संस्थात्मक पक्ष होता है।

5) **परिवर्तनशीलता**–कोई भी व्यवस्था सदैव एक सी स्थिति में नहीं रह सकती, उसमें परिवर्तनशीलता एवं गतिशीलता का गुण होना आवश्यक है। इसी परिवर्तनशीलता के कारण व्यवस्था की उपयोगिता सदैव बनी रहती है। बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होकर सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होता है।

6) **सामाजिक एकीकरण**–सामाजिक व्यवस्था का सर्वप्रमुख उद्देश्य व्यक्तियों को उनकी योग्यता एवं कुशलता के आधार पर अनेक श्रेणियों में बाँटकर प्रस्थिति एवं भूमिका का निर्धारण करना होता है। इसी से पारस्परिक सहयोग एवं एकीकरण में वृद्धि होती है। वास्तव में, सामाजिक एकीकरण सामाजिक व्यवस्था का मापदण्ड है। किसी समाज की सामाजिक व्यवस्था जितनी अधिक प्रभावशाली होती है, वहाँ सामाजिक एकीकरण की मात्रा भी उतनी ही अधिक होती है।

7) **क्रमबद्धता**–जिस प्रकार मात्र सीमेन्ट, मिट्टी अथवा ईंटों को ही भवन की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। भवन निर्माण के लिए इन वस्तुओं के मध्य आपसी सहयोग एवं एक क्रम भी अवश्य होना चाहिए उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था के लिए भी क्रमबद्धता अवश्य होनी चाहिए।

8) **सामाजिक परिस्थिति**–प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था का रूप एक–दूसरे से किसी न किसी प्रकार से भिन्न होता है क्योंकि प्रत्येक समाज की सामाजिक परिस्थितियाँ या सामाजिक पर्यावरण एक–दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्तियों की अन्तःक्रियाएँ अपने सामाजिक पर्यावरण से ही प्रभावित होती हैं, अतः किसी भी सामाजिक व्यवस्था को दूसरी व्यवस्था के बिल्कुल समान नहीं पाया जा सकता है।

सामाजिक प्रणाली में शिक्षा की भूमिका (Role of Education in Social System)

शिक्षा ने व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलू में अभूतपूर्व बदलाव लाए हैं। फ्रांसिस जे ब्राऊन के अनुसार शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज के व्यवहार में बदलाव लाती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो प्रत्येक व्यक्ति को समाज की गतिविधियों में प्रभावी रूप से भाग लेने और समाज की प्रगति में सकारात्मक योगदान करने के लिए सक्षम बनाती है।

1) **शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के एक परिणाम के रूप में**–शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के बीच अंतर–निर्भर सम्बन्ध है। एक ओर यह सामाजिक स्थितियों में बदलाव लाता है। दूसरी तरफ यह सामाजिक परिवर्तन से प्रभावित होती है, इसका अर्थ है कि सामाजिक बदलाव शिक्षा प्रसार में सहायता करता है। शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन का अनुसरण करती है। सामाजिक परिवर्तन से पहले और बाद में इसका स्थान है। पहले सामाजिक परिवर्तन होते हैं फिर उन सामाजिक परिवर्तनों के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया बदल जाती है। समाज की जरूरतों के अनुसार शिक्षा प्रणाली बदलती है।

Scanned by CamScanner

2) **शिक्षा सामाजिक नियंत्रण के रूप में**–नई पीढ़ियों तक विचारों और मूल्यों के विषय में संवाद करने एवं जीवन के तरीके को प्रेषित करके व्यक्तिगत व्यवहार को विनियमित करने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

3) **शिक्षा सामाजिक एकता के रूप में**–शिक्षा, मूल्यों का हस्तान्तरण करके, लोगों को व्यापक समाज में भी एकीकृत करता है। विद्यालयी पाठ्यचर्या एवं अतिरिक्त पाठ्यचर्या गतिविधियों और छात्रों और शिक्षकों के बीच अनौपचारिक सम्बन्ध कुछ मूल्यों और सामाजिक कौशल जैसे कि सहयोग या टीम–भावना, आज्ञाकारिता, निष्पक्ष खेल के बारे में संवाद करते हैं।

4) **शिक्षा समाज के राजनीतिक विकास में सहायक**–शिक्षा सभी नागरिकों को अधिकारों और कर्तव्यों के विषय में जानकारी प्रदान कर सभी को जागरूक बनाता है, यह उनका उत्तरदायित्व भी है और कर्तव्य भी है। इसी से वह अपने नागरिक में नागरिकता की भावना को विकसित कर सकता है। विभिन्न राजनीतिक नेताओं और कहानियों के माध्यम से आदर्श नेतृत्व की गुणवत्ता विकसित होती है ताकि भविष्य में नागरिक सामाजिक रूप से उत्तम राज्य निर्मित कर सकें।

5) **शिक्षा समाज के आर्थिक विकास में सहायक**–शिक्षा सभी नागरिकों में व्यक्तिगत रूप से कौशल विकसित करती है और उसे एक उत्पादक नागरिक बनाती है। शिक्षा के माध्यम से हर कोई सीखता है कि कैसे पैसे कमाने के लिए उसे अपनी योग्यता के अनुसार श्रम या नौकरी मिलती हैं। शिक्षा की सहायता से साक्षरता बढ़ती जाती है। सभी को काम मिलता है जिससे प्रति व्यक्ति आय बढ़ती हैं। जैसा कि हम पाते हैं कि सरकार टैक्स के रूप में मदद लेती है और इस प्रकार हमारी अर्थव्यवस्था विकसित होती है क्योंकि शिक्षा के लोग दूसरे देश में पलायन करते हैं और उनकी कमाई समाज, देश को विकसित करने में सहायता करती है। इस प्रकार शिक्षा समाज के आर्थिक विकास को प्रभावित करती है।

6) **व्यावसायिक नियुक्ति के लिए शिक्षा के रूप में**–आजीविका का एक साधन शिक्षा है। शिक्षा व्यक्ति को अपनी आजीविका अर्जित करने के लिए मदद करती है। शिक्षा को भविष्य के व्यावसायिक पदों के लिए छात्र को तैयार करना चाहिए। युवाओं को समाज में उत्पादक भूमिका निभाने के लिए सक्षम होना चाहिए। तदनुसार, व्यावसायिक प्रशिक्षण पर बहुत जोर दिया गया है।

शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन में सम्बन्ध (Relation between Education and Social Change)

दुर्खीम के शब्दों में "शिक्षा का उद्देश्य बालक में एक विशेष प्रकार की शारीरिक, बौद्धिक, तथा भौतिक क्षमताओं को उभारता है तथा विकसित करना होता है जिसे राजनीतिक समाज चाहता है तथा उसकी सामाजिक पर्यावरण आवश्यकता होती है।" अतः समाज अपनी आवश्यकता के अनुसार शिक्षा के माध्यम से समाज का प्रारूप परिवर्तित कर सकते है। इस प्रकार "शिक्षा" समाज द्वारा निर्मित एक व्यवस्था है जो अनेक कारकों पर निर्भर है।

सामाजिक परिवर्तन का "शिक्षा" से क्या सम्बन्ध है क्योंकि ऊपरी तौर पर देखा जाए तो दोनों अलग–अलग विषय है। वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा दोनों अन्योन्याश्रित है। एक का दूसरे पर प्रभाव ही परिवर्तन का कारण है। यह एक चक्र है जिसे चित्र के माध्यम से आगे समझने का प्रयत्न करेंगे।

सामाजिक परिवर्तन से "शिक्षा" के स्वरूप में परिवर्तन को देखने के लिये हम भारतीय समाज का उदाहरण देख सकते है। भारत में नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के परिवर्तन के साथ ही सह–शिक्षा, स्त्रियों की समाज में स्थिति, एकल परिवार, जैसे परिवर्तन दिखाई देने लगे जो शिक्षा के स्वरूप में भी दृष्टिगोचर होते है। इसके अतिरिक्त जनतान्त्रिक प्रौढ़ता के कारण कठोर जाति–प्रथा, अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्ध में भी शिथिलता आ गयी है। ये सभी सामाजिक परिवर्तन शिक्षा के स्वरूप में भी प्रत्यक्ष दिखाई देते है। इन परिवर्तनों के कारण भारत में शिक्षा जनतान्त्रिक मूल्यों के संवर्धन, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव, शान्ति, आध्यात्मिक विकास; अंधविश्वासों के प्रति संचेतना का विकास करने का प्रमुख साधन बनी है।

सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारकों में से ही शिक्षा एक महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षा अनुभवों की पुनर्रचना करके लोगों की अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाती हैं। अभिवृत्ति में परिवर्तन से व्यवहार में परिवर्तन आता है। व्यवहार–परिवर्तन से सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन आता है। सामाजिक सम्बन्धों का परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है। इस तरह से शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख अभिकर्ता के रूप में सामने आती है।

डॉ. एम.एन. श्रीनिवासन ने अपनी पुस्तक **'सोशल चेंज ऑफ मॉडर्न इण्डिया'** में इसके अनेक उदाहरण दिए है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् देश में द्रुतगति से हुए शिक्षा प्रसार से लोगों के दृष्टिकोण एवं मूल्यों में परिवर्तन आया है। वैज्ञानिकता, धर्मनिरपेक्षता आदि को बढ़ावा मिला है।

1) **सामाजिक परिवर्तन की अनुगामी शिक्षा**–वस्तुतः स्वयं में दोषमुक्त स्वस्थ शिक्षा ही सामाजिक परिवर्तन के अभिकर्ता के रूप में काम कर सकती है। चूँकि वर्तमान में शिक्षा राजनीति, समाजनीति आदि के दोषों से प्रभावित है। उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह शासन की अनुगामिनी है। अतः शिक्षा आज सामाजिक परिवर्तन लाने में समर्थ नहीं है अपितु सामाजिक परिवर्तन का अनुगमन करती है तथा अपने स्वरूप में परिवर्तन कर सामाजिक परिवर्तन की पुष्टि करती है। सारांश यह है कि आज शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने में सक्षम नहीं है, बल्कि सामाजिक परिवर्तनों का अनुगमन करती है। सामाजिक परिवर्तन का उसके स्वरूप पर प्रभाव पड़ता है। अतः यह अध्ययन करना महत्वपूर्ण होगा कि शिक्षा पर सामाजिक परिवर्तन के क्या–क्या प्रभाव पड़ते हैं।

2) **सामाजिक परिवर्तन का शिक्षा तथा अन्य शैक्षिक अभिकरणों पर प्रभाव**–आज द्रुतगति से सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं। तेजी से सामाजिक परिवर्तन आधुनिक समाजों की एक विशेषता है। परम्परागत समाज में परिवर्तन इतना धीरे–धीरे होता है कि उससे शिक्षा–प्रणाली में परिवर्तन एवं प्रभाव अनिवार्य नहीं होता किन्तु आधुनिक समाज के सामाजिक परिवर्तन शिक्षा को प्रभावित करते हैं।

3) **विज्ञान तथा तकनीकी विकास का शिक्षा पर प्रभाव**–आधुनिक समाज की सबसे बड़ी विशेषता उसके द्वारा अपनाई गई विज्ञान आधारित तकनीकी है। इससे

Scanned by CamScanner

सामाजिक परिवर्तन ने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। शिक्षा भी इससे प्रभावित हुई है। समस्त शिक्षा–प्रणाली की संरचना ही एक कारखाने की संरचना की तरह हो गई है। विद्यालय के निश्चित कार्य, कारखानों की तरह विद्यालय का प्रारम्भ, एक साथ लोगों का घुसना, घंटी लगने के साथ विद्यालय – कार्य की समाप्ति, बड़े पैमाने पर शिक्षा का उत्पादन, परीक्षाफल का स्तरीकरण, छात्र–अध्यापकों के सम्बन्ध में वैयक्तिक लगाव की कमी, विद्यालय में कार्यों के केन्द्रीयकरण, शिक्षा का व्यवसायीकरण आदि सभी औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप हुआ।

विज्ञान का अनिवार्य विषय के रूप में सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रम में प्रवेश, विज्ञान को वैकल्पिक विषय के रूप में लेने वाले छात्रों की तेजी से बढ़ती संख्या, मेडिकल, इंजीनियरिंग, पॉलीटेक्निक आदि के शिक्षा संस्थानों का तेजी से खुलना, विज्ञान वैज्ञानिकता का सभी विषयों में समावेश होना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को श्रेष्ठ समझा जाना। शिक्षण–विधियों में वैज्ञानिक दृश्य–श्रव्य उपकरणों के प्रयोग का बढ़ना, टेलीविजन, रेडियो द्वारा शिक्षण इत्यादि इस बात का प्रमाण है कि समाज के विज्ञान एवं तकनीकी पर आधारित होने के परिणामस्वरूप शिक्षा के अंग भी उससे प्रभावित हुए हैं। अतः यह प्रमाणित होता है कि समाज में होने वाले परिवर्तनों का शिक्षा पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

4) **सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव के रूप में शिक्षा**–तेजी से हो रहे सामाजिक परिवर्तन को जीवन के सभी क्षेत्रों में यदि नहीं अपनाया जाता है तो सांस्कृतिक विलम्बन की स्थिति आ जाती है जिसे शिक्षा द्वारा ही दूर किया जा सकता है। यदि द्रुत सामाजिक परिवर्तन के साथ शिक्षा में भी द्रुत परिवर्तन नहीं किए जाते तो बहुत हानि की सम्भावना रहती है। इसलिए ऐसी स्थिति में शिक्षा को एक गत्यात्मक नीति अपनाने की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि सामाजिक परिवर्तन शिक्षा को प्रभावित करती हैं और यदि शिक्षा उन प्रभावों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाए तो सामाजिक परिवर्तन लाया नहीं जा सकता। अतः सामाजिक परिवर्तन के प्रभावी रूप में शिक्षा का विस्तार उसकी संरचना, उद्देश्य आदि में परिवर्तन अपरिहार्य होता है।

शिक्षा–सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में (Education as an Instrument of Social Change)

शिक्षा एवं समाज के मध्य बहुत गहरा सम्बन्ध हैं। शिक्षा समाज का महत्वपूर्ण साधन होने के साथ–साथ एक स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर प्रक्रिया भी हैं। शिक्षा अपने उद्देश्यों के निर्धारण के लिए राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा वित्तीय अनुदान के लिए आर्थिक प्रणाली पर निर्भर रहती हैं। अतः कहा जाता है कि शिक्षा राष्ट्र के विकास का फल एवं बीज दोनों है।

1) **शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की स्थिति तथा साधन के रूप में (Education as a Condition and Instrument of Social Change)**–सामान्य धारणा यह है कि शिक्षा के अभाव में सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता हैं। अर्थात् सामाजिक परिवर्तन लाने से पूर्व शिक्षा की व्यवस्था इत्यादि को देखा जाए। शिक्षा के अभाव में सामाजिक परिवर्तन असम्भव हैं।

अतः शिक्षा हीं एक ऐसा साधन है जो सामाजिक कार्यों व सुधारों के बीच की खाई को पाटकर सामाजिक परिवर्तन की गति को तीव्रता प्रदान करती हैं। शिक्षा द्वारा व्यक्तियों के विचारों, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों में परिवर्तन लाया जाता हैं।

शिक्षा आयोग के शब्दों में, "शिक्षा सामाजिक क्रान्ति की वाहक हैं।"

डॉ उमराव सिंह चौधरी के अनुसार, "शिक्षा एक नवीनतम क्रान्ति है, उसकी तुलना गोली की गति के बजाए तितली की उड़ान से की जा सकती हैं। शिक्षा का सामाजिक परिणाम कई बार नहीं मिलता और यदि मिलता है तो काफी विलम्ब से। अतः सैद्धान्तिक धरातल पर सामाजिक परिवर्तन को एक रूप मानने पर सहमति हो सकती है परन्तु व्यावहारिक स्तर पर यह बात बिल्कुल अलग हैं। पुराने औजारों से नई मशीनें नहीं सुधारी जा सकती हैं। उसी तरह परिवर्तन लाने वाली शिक्षा का भी एक अर्थ एवं स्तर होता हैं। शिक्षा के नाम पर चल रही खाना–पूर्ति, रस्म–अदायगी, दुकानदारी और डिग्री–दौड़ राष्ट्रीय विकास या सामाजिक परिवर्तन का गरूड़ नहीं बन सकती।"

2) **शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का परिणाम (Education as a Result of Social Change)**–शिक्षा यदि सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं तो सामाजिक परिवर्तनों के अनुरूप व्यवस्थित की जाएगी। अन्य शब्दों में शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का अनुगमन करती हैं। समाज ही यह तय करता है कि उसके अन्दर दी जाने वाली शिक्षा का स्वरूप कैसा होगा। समाज में परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षा में भी परिवर्तन होता है। इन दोनो परिवर्तनों के सम्बन्ध में ओटावे (Ottaway) का कथन हैं, कभी–कभी यह कहा जाता है कि शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन का एक कारण है। इसके विपरीत यह अधिक सत्य है कि शैक्षिक परिवर्तन अन्य सामाजिक परिवर्तनों को आरम्भ करने के बजाय उनका अनुगमन करता है।

प्रश्न 5– शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।
Describe factors affecting education.

उत्तर– शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Education)

परिवर्तन प्रकृति का सर्वमान्य नियम है। परिवर्तन की प्रकृति तथा प्रक्रिया भी अनियन्त्रित है। यह परिवर्तन ही समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि का निर्माण करते है, जिसके कारण शिक्षा के स्वरूप में भी निरन्तर परिवर्तन वांछित होते है। वर्तमान समय, संक्रमण काल है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तेजी से बढ़ते प्रयोग ने समाज तथा शिक्षा दोनों के स्वरूप में परिवर्तन ला दिया है। जहाँ एक ओर प्रौद्योगिकी ने सूचनाओं के असीमित भण्डार प्रदान किए है वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधन के अनियन्त्रित दोहन ने पर्यावरण संरक्षण एवं जैवविविधता जैसे ज्वलंत प्रश्न भी खड़े कर दिये है। इस प्रकार किसी परिवर्तन से शिक्षा के स्वरूप एवं प्रक्रिया को विभिन्न कारक नियन्त्रित करते है। इसमें से मुख्य कारक निम्नलिखित है–

Scanned by CamScanner

राजनैतिक कारक (Political Factor)
किसी भी समाज में राजनीतिक शासन पद्धति एवं सिद्धान्त का प्रभाव शिक्षा व्यवस्था पर रहता है। भारत के सन्दर्भ में देखे तो 1947 से पूर्व अंग्रेजों द्वारा पोषित "लार्ड मैकाले" की शिक्षा व्यवस्था की जिसका उद्देश्य मात्र अंग्रेजी की सामान्य ज्ञान से परिचित होकर "क्लर्क" का उत्पादन करना था। 1947 के पश्चात् स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया।

देश में लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली होने के कारण शिक्षा को जनतान्त्रिक मूल्यों तथा व्यवहारों को स्थापित करने के महत्वपूर्ण साधन माना गया। इस प्रकार शिक्षा का स्वरूप किसी भी देश या समुदाय के राजनैतिक शासन प्रणाली से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित रहता है। रूस को उदाहरण स्वरूप ले तो हम देखते है कि 1917 में क्रान्ति के फलस्वरूप शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन हुआ और पुनः 1990 में राजनैतिक परिवेश परिवर्तित होने के साथ ही पुनः शिक्षा प्रभावित हुई।

इस प्रकार, जिस विचारधारा एवं उद्देश्यों के साथ शासन व्यवस्था रहती है वहीं विचारधारा एवं उद्देश्य शिक्षा पर प्रभाव डालते है एवं दिशा निर्धारित करती है। इस प्रकार शिक्षा समाज की आकांक्षाओं एवं मान्यताओं को फलीभूत करने के सर्वश्रेष्ठ साधन है।

सामाजिक कारक (Social Factor)
शिक्षा को सामाजिक अन्तःक्रियाओं, सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक समूहों एवं सामाजिक नियंत्रण से निर्मित एक प्रक्रिया माना जा सकता है। शिक्षा सदैव इन कारकों से प्रभावित होती है एवं इन्हें प्रभावित भी करती है। अतः इन सभी कारकों को शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार के रूप में देखा जाता है।

समाज प्रतिशील होता है। इसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते है। यह परिर्वतन सामाजिक ढाँचे एवं सामाजिक व्यवस्था में भी परिर्वतन लाते है। इस प्रकार जब मानव सम्बन्धों तथा किसी भी सामाजिक घटनाओं में परिवर्तन होता है तो यह सामाजिक परिवर्तन होता है। सामाजिक परिवर्तन शिक्षा के स्वरूप निर्धारित करने वाला संबसे प्रमुख घटक है।

इस परिवर्तन से ही अन्य कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित रहते है। सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को समझने के लिये हम कुछ प्रमुख सामाजशास्त्रियों की परिभाषाएँ दे रहे हैं–

1) **मैकाइवर एवं पेज़ के अनुसार,** "सामाजिक ढाँचे एवं सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन कहते है।"

2) **गिन्सबर्ग के अनुसार,** सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है सामाजिक संरचना अर्थात् समाज का आकार, समाज के भागों का गठन अथवा सन्तुलन या उसके संगठन के प्रकार का परिवर्तन"

3) **वी. कुप्पूस्वामी के अनुसार,** "जब हम सामाजिक परियर्तन की बात करते हैं तो हम सम्भवतः मानते है कि सामाजिक, परिवर्तन एवं सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि समाज के अन्तर्सम्बन्धों, क्रियाकलापों, संरचना, विचारधारा में किसी भी प्रकार का परिवर्तन होता है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहते है। यहाँ समझने हेतु तथ्य यह है कि मात्र कुछ व्यक्तियों के विश्वास या मूल्यों में परिवर्तन से सामाजिक परिवर्तन नहीं होता है। इसका सम्बन्ध समाज के अधिकांश समूह अथवा व्यक्तियों की जीवनचर्या एवं विचारों के परिवर्तन से है।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक कारक (Religious and Cultural Factors)
मनुष्य की आत्मा का पोषण धर्म और संस्कृति करते हैं। इसके द्वारा ही व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास सम्भव है। संस्कृति जीवन को सुसंगठित बनाए रखने की शक्ति है। सोरोकिन ने संस्कृति की विशेषताओं में होने वाले परिवर्तन को शिक्षा में परिवर्तन का प्रमुख कारण माना है। वास्तव में शिक्षा का स्वरूप, हमारे विश्वास, धर्म, प्रथाओं संस्थाओं तथा रूढ़ियों आदि पर निर्भर होता है। अतः इनमें कोई भी परिवर्तन होता है तो वह शिक्षा में परिवर्तन लाता है।

सांस्कृतिक कारक, शिक्षा में परिवर्तन के लिए अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं, क्योंकि प्रौद्योगिकी का रूप स्वयं समाज की संस्कृति के द्वारा निर्धारित होता है।

उदाहरण के लिए– धर्म संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जिसके द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि समाज का ढाँचा किस प्रकार का होगा तथा शिक्षा का स्वरूप क्या होगा?

बेवर का मत है कि "जब धार्मिक आदर्शों में परिवर्तन होता है, तो व्यक्तियों के विचारों, विश्वासों तथा आचरण करने के ढंग में भी परिवर्तन आ जाता है।"

आर्थिक कारक (Economic Factor)
आर्थिक कारक अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा में परिवर्तन को गति प्रदान करता है। जीवन का स्तर, सम्पत्ति का वितरण, वर्ग संघर्ष तथा आर्थिक उत्पाद ऐसे कारण हैं जो जीवन को प्रभावित करते हैं। इनमें से किसी भी कारण में परिवर्तन होता है उसका प्रत्यक्ष प्रभाव शिक्षा के औपचारिक साधनों एवं स्वरूप पर होता है।

जिन देशों में सम्पत्ति का रूप पूँजीवादी होता है, वहाँ समाज में निर्धन तथा धनी का भेद या आर्थिक विषमता पाई जाती है जो शोषण और उत्पीडन को जन्म देता है। इसके विपरीत समाजवाद में शिक्षा का स्वरूप अलग हो जाता है।

प्रौद्योगिक एवं तकनीकी कारक (Technological and Technical Factors)
प्रत्येक समाज की पुरातन विचारधारा एवं मान्यताएँ होती है। जैसे–जैसे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का समावेश होता जाता है वैसे–वैसे विचारों में परिर्वतन होता जाता है। ये विचारों का परिवर्तन ही नवीन विचारों का उत्पादन करता है। जिस समाज में जितनी तीव्रता से प्रौद्योगिकी का समावेश होता है वह समाज उतना ही रचनात्मक एवं अनुसंधानप्रिय होता जाता है। यही कारण है कि जापान तथा कोरिया आज विश्व के माने हुए देश है।

Scanned by CamScanner

यदि समाज प्रौद्योगिकी के प्रयोग को स्वीकार करता है तो यह शिक्षा व्यवस्था का अंग बनता है जिससे समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, रचनात्मकता एवं तार्किकता का विकास होता है और समाज प्रगतिशील बनता है।

आज के परिवेश में भारत में तेजी से प्रौद्योगिक विकास ने शिक्षा के अर्थो में परिवर्तन ला दिया है। दूरस्थ शिक्षा, ई-लर्निंग, आभासी कक्षा, आभासी प्रयोगशाला, स्मार्ट बोर्ड, (Interactive White Board) डिजिटल बोर्ड आदि इसी प्रौद्योगिक के उदाहरण है जो भारतीय शिक्षा व्यवस्था में पोषित हो रहे है। इस प्रकार जो समाज जितनी तीव्रता से नवीन परिवर्तन को स्वीकार करता है उतनी ही तीव्रता से विकासशील होता है।

प्रौद्योगिक एवं तकनीकी पर आधारित मान्यताओं ने शिक्षा के उद्देश्यों, दृष्टिकोण, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों को प्रभावित किया है। जहाँ एक ओर शिक्षा समाज के लिये सबसे उद्दात स्वरूप होता था वहीं प्रौद्योगिकी के प्रभाव के कारण नकारात्मक दृष्टिकोण भी है।

'शिक्षा' मात्र एक वस्तु एवं व्यवसाय बन गयी है। एक ओर जहाँ प्रौद्योगिकी ने शिक्षा को जनसुलभ बनाया है वही इसके स्वरूप ने शिक्षा की गुणात्मकता को भी प्रभावित किया है।

इस प्रकार यह सामाजिक उत्तरदायित्व है कि प्रौद्योगिकी के प्रयोग में सन्तुलन के साथ शिक्षा में प्रयोग करें। प्रौद्योगिकी, शिक्षा के गुणात्मक विकास, औपचारिक शिक्षा के लचीलेपन, समावेशी शिक्षा के विकास के साधन के रूप में प्रयुक्त होनी चाहिए। ICT का प्रयोग समाज के उत्थान एवं शिक्षा के गुणात्मक परिवर्तन के लिए किया जाना चाहिए।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा प्रक्रिया पर सामाजिक व्यवस्था एवं उसको प्रभावित करनें वाले कारकों का बहुत प्रभाव पड़ता है।

औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, संयुक्त परिवार का परिवर्तित स्वरूप, तकनीकी प्रगति, रोजगार की उपलब्धता, धार्मिक मान्यताएँ, शासन व्यवस्था आदि प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा प्रक्रिया को प्रभावित करती है। इन सभी का प्रभाव शिक्षा अभिकरणों पर पड़ता है।

औपचारिक शिक्षा के ये अभिकरण समाज के अनुसार प्रभावित होते रहते है जिससे समाज के भावी समस्यों को समाज के प्रगतिशील स्वरूप के अनुसार परिवर्तित किया जा सकें।

शिक्षा आयोग ने सामाजिक परिवर्तन के साथ शिक्षा के सम्बन्ध को इस प्रकार अभिव्यक्त किया।

"कोई भी सुधार इतना आवश्यक नहीं जितना कि शिक्षा में परिवर्तन" इसे लोगों के जीवन, उनकी आवशकताओं तथा आकांक्षाओं के साथ सम्बन्धित करने का प्रयास करना चाहिए इसे हमारे जीवन लक्ष्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का सशक्त साधन बनाना चाहिए।

ज्ञान : अनुशासनात्मक सीमाओं का जोड़ना के रूप में (CONNECTING KNOWLEDGE ACROSS DISCIPLINARY BOUNDARIES)

प्रश्न 6– सहसम्बन्ध का अर्थ स्पष्ट कीजिए एवं विभिन्न विषयों की पारस्परिक निर्भरता एवं सम्बन्ध का वर्णन कीजिए।
Explain the meaning of the correlation and describe the interdependence and relation of different disciplines.

उत्तर– ज्ञान की सृजनात्मकता को, औपचारिक शिक्षा में अकादमिक अनुशासन में संयोजित किया जाता है। अकादमिक अनुशासन, का वर्गीकरण, ज्ञान के क्षेत्र, प्रकार एवं उपयोग के आधार पर किया जाता है। ये वर्गीकरण विशेष ज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य, रचनात्मकता एवं नवीनता को सम्मिलित करते रहते हैं इसलिए निरन्तर नवीन विषयों का उदय एवं उनका विलय अकादमिक अनुशासन में होता है। समय एवं आवश्यकतानुसार विषय अकादमिक अनुशासन की सीमाओं से मुक्त होते हैं। इस प्रकार विषयों का अन्य अकादमिक अनुशासन से सम्बन्ध एवं विषयों का परिवर्तनीय रूप, अनुशासन को समाज उपयोगी बनाता है।

जब एक अध्ययन विषय अन्य विषयों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित रहता है तो वह अपने विषयों की परम्परागत सीमाओं से ऊपर उठकर अन्य विषयों के उद्देश्यों को भी सम्मिलित करता है। विषयों की यही प्रकृति उसे समाज के उत्थान एवं नवीन ज्ञान के उत्पादन के लिए सक्रिय करती है। ज्ञान को सीमाओं में बाँधने का या मुक्त करने में सबसे महत्वपूर्ण योगदान पाठयक्रम या पाठयचर्या का होता है।

विषय स्वयं की विषयगत सीमाओं से हटकर अन्य अकादमिक विषयों के साथ सम्पर्क बहुत प्रकार से स्थापित करते हैं। ये प्रकार या सम्बन्ध विषयों के सहसम्बन्ध या अनुशासनात्मक सम्बन्ध कहलाते हैं।

सहसम्बन्ध का अर्थ (Meaning of Correlation)
हरबर्ट (Herbert) के अनुसार, "सभी ज्ञान एक इकाई के अन्तर्गत हैं" शैक्षिक व्यवस्था में सहसम्बन्ध का अर्थ किसी एक विषय के अध्ययन क्षेत्र का अन्य विषय के साथ पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने से है। अध्ययन प्रक्रिया में जब दो या दो से अधिक विषय परस्पर निर्भर हो जाते हैं अथवा निर्भरता स्थापित कर ली जाती है तो यह विषयों का सहसम्बन्ध कहलाता है। सहसम्बन्ध का सामान्य अर्थ है "दो के मध्य सम्बन्ध या सम्बन्ध बनाना"।

मन (Munn) के अनुसार–सहसम्बन्ध दो चरों के मध्य साहचर्य मापने का सांख्यिकीय पैमाना है।

मेहरेन्स एवं लेहमैन (Mehrens and Lehman) के अनुसार– एक समूह के दो समुच्चयों को एक साथ चलने के सम्बन्ध के मापन को सहसम्बन्ध कहते हैं।

Scanned by CamScanner

वस्तुतः यह परिभाषाएँ सांख्यिकीय दृष्टिकोण से प्रदान की गयी हैं। यदि हम विषयों के सन्दर्भ में देखें तो, विषयों के सहसम्बन्ध से अर्थ है कि एक विषय अपने विषयगत ज्ञान की सीमाओं तथा क्षेत्र के साथ अन्य विषय से सम्बन्ध स्थापित करे। यहाँ विशेष रूप से यह समझना आवश्यक है कि सहसम्बन्ध में विषयों के अपने ज्ञान के क्षेत्र प्रभावित नहीं होते हैं। विषय एक दूसरे से मात्र सम्बन्ध स्थापित करते हैं। शिक्षा में सहसम्बन्ध का अर्थ "तकनीक" और योग्यता को इंगित करता है जो विषयों के ज्ञान की रचना करने अथवा स्थायी करने में उपयोग में लाए जाते हैं। यह पाठ्यचर्या निर्माण की एक स्थिति को भी इंगित करता है। अतः हम कह सकते हैं कि सहसम्बन्ध विशेषतः दो चर (विषय या अकादमिक अनुशासन) अथवा पाठयचर्या एवं पाठयक्रम के मध्य परस्पर सम्बन्ध को दर्शाता है।

विषयों के सहसम्बन्ध का शैक्षिक महत्व (Educational Importance of Correlation of Disciplines)

सहसम्बन्ध को विस्तारपूर्वक समझने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि विषयों की पारस्परिक निर्भरता एवं सहसम्बन्ध का औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में क्या महत्व है? अधिगम के सिद्धान्तों तथा दर्शन के आधार पर विवेचना करने के पश्चात् हम इसके शैक्षिक महत्व को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं–

1) **ज्ञान की शीघ्र धारणा**–ज्ञान के विभिन्न अंशों को मस्तिष्क में स्मृति के विभिन्न स्तरों पर एकत्रित किया जाता है। पुरानी और नवीन स्मृति के स्तरों में सम्बन्ध न होने के कारण नवीन ज्ञान की रचना असम्भव है। इन स्तरों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य, विषयों का सहसम्बन्ध करता है जिससे ज्ञान की पुनर्रचना शीघ्र की जा सकती है। ज्ञान की यह रचना अधिक स्थायी और प्रबल होती है। ज्ञान की शीघ्र धारणा के लिए पुराने एवं नवीन ज्ञान में सम्बन्ध, विषयों के सहसम्बन्ध के माध्यम से शीघ्र किए जा सकते हैं।

2) **उपयोगी ज्ञान की प्राप्ति**–ज्ञान उपयोगी तभी होगा जब इसका व्यवहारिक जीवन से सम्बन्ध हो। विषय का सहसम्बन्ध ज्ञान को व्यवहारिक बनाता है। सहसम्बन्ध ज्ञान के क्षेत्र में विस्तार करता है। इसके माध्यम से विद्यार्थियों में तर्कशक्ति, समस्या समाधान, जिज्ञासा जैसे कौशलों का विकास होता है जो जीवन में सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है।

3) **अभिरुचि एवं अभिवृत्ति का विकास**–विषयों के सहसम्बन्ध से अभिरुचि तथा अभिवृत्ति का विकास होता है। विद्यार्थी विषयों की गहनता तथा विशालता के साथ अन्य विषयों का सम्बन्ध समझ पाते हैं। यह समझ विद्यार्थियों में विषय विशेष की रुचि के विकास के लिए सहायक है।

4) **मानसिक योग्यताओं का विकास**–यह मानसिक योग्यताओं के विकास के लिए सहायक हैं। कल्पनाशक्ति, तर्कशक्ति, विवेचना शक्ति का विकास सहसम्बन्ध के माध्यम से शीघ्रता से होता है क्योंकि विद्यार्थी ज्ञान को अन्य विषयों से सम्बन्धित करके शीघ्र समझ पाते हैं।

5) **ठोस एवं स्थायी ज्ञान की प्राप्ति**–ज्ञान एक प्रकार की मानसिक अवस्था है। इसके द्वारा सूचनाओं का एकीकरण किया जाता है जिससे ज्ञान अधिक स्थायी हो जाता है।

6) **पाठ्यक्रम के बोझ को कम करने में सहायक**–सहसम्बन्ध द्वारा सरलता से पाठ्यक्रम के बोझ को कम किया जा सकता है। पृथक–पृथक समय व्यय करने के स्थान पर एक उद्देश्य के लिए एक बार ही समय दिया जाता है। इससे समय एवं ऊर्जा दोनों की बचत की जा सकती है। पाठ्यक्रम सीमित समय में अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विषयों का सहसम्बन्ध सैद्धान्तिक तौर पर अत्यन्त उपयोगी अवधारणा है किन्तु इसके व्यवहारिक क्रियान्वयन के लिए अत्यन्त कुशलता एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता है। कुछ विषय तथा उपविषय स्वतन्त्र अवधारणा के होते हैं। उनका सहसम्बन्ध स्थापित करना असम्भव होता है। ये विषय तभी प्रभावशाली होते हैं जब उन्हें पृथक रूप से पढ़ाया जाए।

वर्तमान पाठ्यक्रम में वैकल्पिक विषयों का प्रावधान भी सहसम्बन्ध के महत्व को समाप्त कर देता है। वैकल्पिक विषय होने की अवस्था में चयनित विषय के अतिरिक्त अन्य विषय का ज्ञान देना, बेमानी प्रतीत होता है। प्रत्येक शिक्षक सहसम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रभावशाली नहीं होते हैं। इसके लिए शिक्षकों को व्यवसायिक कुशलता के अतिरिक्त तत्व ज्ञान में भी पारंगत होने की आवश्यकता है। कई बार सहसम्बन्ध के कारण विषयगत विशेष उद्देश्य गौण हो जाते हैं। इन सभी सीमाओं के पश्चात् भी शिक्षा में सहसम्बन्ध के महत्व को कम नहीं किया जा सकता है। इसका सही एवं व्यवस्थित उपयोग शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति में सदैव सहायक है।

ज्ञान का अकादमिक विषयों से सहसम्बन्ध (Correlation of Knowledge with Academic Disciplines)

अकादमिक विषय ज्ञान की रचना को संयोजित करने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। हम जानते हैं कि एक अकादमिक अनुशासन के अन्तर्गत विभिन्न विषय सम्मिलित हो सकते हैं ये विषय अपने ज्ञान की प्रकृति, क्षेत्र, विस्तार एवं शोध के आधार पर अकादमिक अनुशासन विषय के अन्तर्गत रखे जाते हैं। वर्तमान समय ज्ञान के विस्फोट तथा तकनीकी प्रचुरता का युग है। प्रौद्योगिकी के समावेश के कारण कोई भी विषय या अनुशासन अपनी सीमाओं में बंध कर नहीं रह सकता।

विषय–विशेष में ज्ञान की नवीन संरचना एवं उसकी व्यापकता को दिशा देने के लिए अन्य विषयों के साथ सामंजस्य आवश्यक है। बिना लचीलेपन एवं निरन्तरता के कारण विषय प्रायः मृतप्राय हो जाते हैं। उदाहरणस्वरूप देखें तो दो दशक पूर्व तक संस्कृत विषय में लचीलेपन के अभाव के कारण यह भाषा लगभग मृतप्राय हो चुकी थी किन्तु प्रौद्योगिकी के समावेश और नवीन विचारधारा के सामंजस्य के कारण वर्तमान समय में संस्कृत पुनः जीवित हो उठी है। संस्कृत ने विषयगत सीमाओं से ऊपर उठकर तकनीकी के साथ सम्बन्ध स्थापित किया वह पूरे विश्व में "पूर्व तकनीकी भाषा" और वैज्ञानिक भाषा के रूप में स्थापित हो रही है। निरन्तर शोध में गति प्रदान हो रही है तथा प्राचीन संस्कृत साहित्य को भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों के साथ जोड़ा जा रहा है। इस प्रकार जब एक विषय अपनी परम्परागत विचारधारा एवं सीमाओं से विमुक्त होकर नवीन ज्ञान की रचना करता है तो यह विधा या प्रकार अनुशासन के उपागम कहलाते हैं।

Scanned by CamScanner

कोई विषय किस विषय के साथ सामंजस्य स्थापित करेगा इसका निर्णय विषय एवं अकादमिक अनुशासन के उद्देश्य एवं प्रकृति तथा ज्ञान की आवश्यकता पर निर्भर करता है। अकादमिक अनुशासन के उपागम आवश्यकता अथवा प्रकृति के आधार पर चयनित किए जाते हैं। हम यहाँ अकादमिक अनुशासन के उपागम के प्रमुख प्रकार पर प्रकाश डालेंगे तथा यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि इन उपागमों का ज्ञान की संरचना में क्या महत्व है? विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर विषयों का चयन तथा कोर्स का निर्धारण करने के लिए यह अवधारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि हम कुछ दशकों पूर्व की उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विषय के चयन अथवा उसकी प्रक्रिया का अवलोकन करें तो देखते हैं कि वह दौर बहुत ही कठोर नियमों से घिरा था।

किसी भी विद्यार्थी को विज्ञान अनुशासन के साथ, वाणिज्य का अध्ययन, करने की स्वतन्त्रता नहीं थी। इसी प्रकार गणित का विद्यार्थी मनोविज्ञान का अध्ययन औपचारिक तौर पर नहीं कर सकता था कालान्तर में यह अनुभव किया जाने लगा कि ज्ञान को कठोर नियमों या सीमाओं में बाँधना, ज्ञान की प्रकृति को नष्ट करता है। ज्ञान अनवरत गतिमान धारा है इसे सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है। इसलिए विषयों के औपचारिक चयन तथा अनुशासन के निर्धारण में लचीलेपन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। वर्तमान में विभिन्न देशों की औपचारिक शिक्षा प्रणाली में इस प्रकार का लचीलापन दृष्टिगोचर होता है। यह लचीलापन विभिन्न माध्यमों तथा प्रकारों से सम्भव है। ये उपागम विषय की नैसर्गिक विशेषताओं के साथ ज्ञान अर्जन में लचीलापन प्रदान करते हैं। इसलिए ये उपागम अत्यधिक प्रयोग में लाए जा रहे हैं।

पाठ्यक्रम निर्माण में इस तथ्य को विशेष रूप से समझा जा रहा है कि पाठ्यक्रम का स्वरूप अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्ति का साधन बने। कठोर एवं दृढ़ पाठ्यक्रम ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य को पूरा नहीं कर पाते हैं। यहाँ हम विशेष रूप से विभिन्न अनुशासन की प्रकृति तथा ज्ञान की संरचना में उनके योगदान तथा उनके सहसम्बन्ध और परस्पर निर्भरता की चर्चा करेंगे।

विभिन्न विषयों की पारस्परिक निर्भरता एवं सम्बन्ध (Interrelation and Interdependence or Correlation of Different Disciplines and Subjects)

मानव सभ्यता के अभ्युदय के समय मानव की वैचारिक शक्ति तथा ज्ञान प्राप्त करने की मात्रा सीमित होती थी। इस कारण ज्ञान के क्षेत्र को अलग–अलग शाखाओं में विभाजित न करके एक ही मुख्य विषय के अन्तर्गत रखा जाता था। यह ज्ञान का क्षेत्र "दर्शन" के नाम से जाना जाता था। कालान्तर में जैसे–जैसे ज्ञान के क्षेत्र का विकास हुआ यह अनुभव किया जाने लगा कि ज्ञान की प्रत्येक शाखाओं तथा क्षेत्र को एक विषय के अन्तर्गत स्थान देना सम्भव नहीं है। इस प्रकार ज्ञान के क्षेत्र को व्यवस्थित करने के लिए उप–विषय, विषय तथा अकादमिक अनुशासन का वर्गीकरण किया गया। इस वर्गीकरण को हम पिछले अध्याय में विस्तारपूर्वक समझ चुके हैं जिसमें मुख्य रूप से गणित, विज्ञान, मानविकी, सामाजिक विज्ञान, एवं कला सम्मिलित है। वर्तमान समय में इन अनुशासन के भी अन्य विभाग पाए जा रहे हैं। वर्तमान में लगभग 100 से अधिक विषय तथा उपविषय अस्तित्व में हैं जो ज्ञान की विशेष शाखा के अस्तित्व बनाए हुए हैं **जैसे**– विज्ञान में भौतिकी तथा उसके उपविषय **जैसे**– क्वाण्टम भौतिकी, नाभिकीय भौतिकी, ठोस अवस्था भौतिकी, स्पेक्ट्रोस्कोपी आदि।

विषय का यह सूक्ष्म विभाजन, अधिगम को निरन्तर गति प्रदान करता है और विशेष ज्ञान प्राप्ति में सहायक है। वास्तव में ज्ञान द्वारा वैचारिक दिशा की प्राप्ति होती है। यह दिशा व्यवहार में परिवर्तन करती है किन्तु विषयों के अत्यधिक विभाजन तथा उनके पृथक–पृथक उद्देश्यों के कारण यह चिन्ता का विषय बन रहा है। एक विषय की दूसरे विषय से स्पष्ट सीमा रेखा तथा पृथक्करण विद्यार्थियों को जीवन की व्यवहारिक समस्याओं के प्रति विचारवान बनाने में पूर्ण रूप से विफल हो रही है। विषयगत सीमाएं विद्यार्थियों में पारस्परिक निर्भरता तथा सहसम्बन्ध को दूर करती जा रही हैं। अतः इस प्रकार बालक का सर्वांगीण विकास कर पाना असम्भव सा होता जा रहा है।

उदाहरण के लिए–यदि हम गणित तथा कला और संगीत विषय को देखें तो समझेंगे कि यदि गणित तथा संगीत में पृथक्करण कर दिया जाए तो गणित के विद्यार्थी में कभी भी सौंदर्यबोध, नैसर्गिक प्रकृति प्रेम तथा कल्पनाशीलता का विकास नहीं हो पाएगा क्योंकि उसका संगीत विषय से सम्बन्ध नहीं है इसी प्रकार संगीत के विद्यार्थी में तार्किकता, निर्णय क्षमता, अनुक्रम आदि का विकास नहीं हो पाएगा क्योंकि वह गणित विषय से सम्बन्धित नहीं है। दोनों परिस्थितियों में बालक का विकास अपूर्ण है क्योंकि व्यावहारिक जीवन में दोनों विषयों के गुणों की आवश्यकता है। यह विषयों के सहसम्बन्ध तथा पारस्परिक निर्भरता से ही सम्भव है।

हरबर्ट (Herbert) शिक्षाविदों में प्रथम थे जिन्होंने विषयों के कठोर पृथक्करण के विरोध में तथा विषय के सहसम्बन्ध के प्रति सहमति प्रदान की थी। बाद में **जॉन ड्यूवी** ने तथा भारत में **महात्मा गाँधी** ने शिक्षा को विषयों के सहसम्बन्ध के आधार पर संगठित करने पर जोर दिया था। प्रत्येक विषय के ज्ञान प्राप्त करने के साधन भिन्न–भिन्न हैं। प्रत्येक विषय अपने स्वभाव और प्रकृति के कारण अनूठा है। यहाँ हम कुछ महत्वपूर्ण विषयों की प्रकृति एवं अन्य विषयों से सहसम्बन्ध पर चर्चा करेंगे–

गणित तथा विज्ञान की प्रकृति एवं सहसम्बन्ध (Correlation and Nature of Maths and Science)

प्रसिद्ध दार्शनिक **कांट (Kant)** के अनुसार, "A science is exact only in so far as it employes Mathematics" अतः इन सभी विज्ञानों के शिक्षा के आधार को दोषपूर्ण माना जाएगा यदि उसका सम्बन्ध गणित से न हो। "गणित" अनुशासन को विविध प्रकार से समझाया जा सकता है। सभी व्याख्या मूलतः गणित की तार्किक शक्ति, गणना एवं अंकों के सम्बन्धों को ही दर्शाती है।

गणित विषय का उद्देश्य गणितीकरण की क्षमताओं का विकास करना है। ज्ञान की रचना के क्षेत्र में गणित विषय विशेषरूप निम्नलिखित भूमिका का निर्वहन करता है–

1) **तार्किक अनुक्रम के ज्ञान का विकास**–गणित में तार्किक अनुक्रम (Logical Sequence) होता है। अंक ज्ञान, माप, दशमलव आदि का ज्ञान गणित का सीमित लक्ष्य है। इन सैद्धान्तिक पक्षों के अतिरिक्त गणित का उद्देश्य, समझ

Scanned by CamScanner

को विकसित करना है जिससे गणितीय ढंग से सोच का विकास हो सके। गणित को अपनी विषयगत सीमाओं से अलग ज्ञान के उस पक्ष को विकसित करने का दायित्व है जिसमें विद्यार्थी तर्क कर सकें, मान्यताओं के तार्किक परिणाम निकाल सकें और अमूर्त को समझ सकें। इस प्रकार गणित विषय ज्ञान के उन क्षेत्रों को विकसित करता है जिसके अन्तर्गत चीजों को करने और समस्याओं को सूत्रबद्ध करने का तथा उनका हल प्राप्त करने की क्षमता का विकास किया जाता है।

गणित जीवन में तार्किक शक्ति का विकास करता है जिससे समस्याओं के प्रति तर्कसंगत विवेचना कर उनका हल प्राप्त किया जाता है। यह विषय गणनाओं एवं अंकों के सम्बन्ध की जानकारी के साथ जीवन में युक्तिगत विचारों का विकास भी करता है। गणित का ज्ञान व्यवहारिक जीवन की तैयारी को बल प्रदान करता है।

2) **निर्णय क्षमता का विकास**–गणित विषय विद्यार्थियों में निर्णय क्षमता के विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। निर्णय क्षमता का विकास, तर्क ज्ञान से होता है और तर्क तथा अनुक्रम गणित का आधार है। निर्णय क्षमता के विकास के लिए ऐसी पाठ्यचर्या का चुनाव किया जाना चाहिए जो महत्वाकांक्षी हो, सुसंगत हो और गणित के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के साथ निर्णय लेने की क्षमता का विकास कर सके। महत्वाकांक्षी एवं सुसंगत ज्ञान की रचना से तात्पर्य है कि गणित विषय सीमित लक्ष्य प्राप्ति का साधन न बने अपितु जीवन में आने वाली सभी परिस्थितियों के लिए तर्कसंगत निर्णय लेने की क्षमता का विकास करे। विषय का नियोजन सुसंगत करके विभिन्न–विभिन्न स्तर पर प्राप्त अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित का प्रयोग विज्ञान तथा सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में समस्याओं के हल निकालने में प्रयोग करें। गणित विषय से निर्णय क्षमता को विकसित करके ज्ञान के अन्य क्षेत्रों के साथ तारतम्य स्थापित करवाना ही इस अनुशासन का महत्वपूर्ण दायित्व है।

3) **गणित ज्ञान का केन्द्र बिन्दु**–ज्ञान के विभिन्न स्रोत एवं अनुशासन का केन्द्र बिन्दु गणित है। चर, अचर राशियों का सहसम्बन्ध, निर्भरता तथा अनुक्रम गणित के ज्ञान से ही सम्भव है। इसलिए माध्यमिक स्तर तक प्रत्येक शिक्षा व्यवस्था में गणित को अनिवार्य विषय के रूप में स्थान प्राप्त है। गणित, विज्ञान के ज्ञान रूपी रथ का सारथी है। बिना गणित की दिशा के विज्ञान के सिद्धान्त तथा नियम आधारहीन हैं। अतः गणित स्वयं एकांगी विषय से अधिक विज्ञान तथा अन्य के लिए उपयोगी है।

4) **गणित–जीवन की कला**–जीवन की तैयारी के लिए तर्क संगत ज्ञान और अनुक्रम का होना आवश्यक है। गणित, विचारों में स्पष्टता तथा तर्किकता का विकास करता है। गणित का ज्ञान न केवल गणित के सैद्धान्तिक पक्ष में सबल बनाता है अपितु जीवन की प्रत्येक परिस्थिति के लिए आत्मनिर्भर तथा आशावादी बनाता है। गणित की पाठ्यचर्या के निर्माण के समय यह विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि विषय के ज्ञान के साथ जीवन मूल्य तथा विपरीत परिस्थितियों से निपटने की समझ भी विकसित हो सके।

विज्ञान की प्रकृति एवं अन्य विषयों से सहसम्बन्ध (Nature of Science and Correlation with Other Subjects)

प्रकृति की अद्भुत एवं विस्मकारी घटनाएँ आदिकाल से ही मनुष्य के ज्ञान के लिए जिज्ञासा का विषय हैं। विज्ञान प्रकृति के इन्ही रहस्यों के उद्घाटन का नाम है। विज्ञान ज्ञान की वह शाखा है जिसमें मनुष्य, प्रकृति, जैविक तथा अजैविक घटनाओं की तर्कसंगत विवेचना प्रस्तुत करता है। यह विवेचना तथा नियमों का प्रतिपादन सार्वभौम नहीं है। यहाँ तक की विज्ञान के सार्वभौम नियमों को भी अन्तरिम ही माना जाता है। ज्ञान की कसौटी तथा सत्यता के तर्क के आधार पर निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं।

विज्ञान निरन्तर परिवर्तन एवं गत्यात्मक ज्ञान का भण्डार है जिसमें नित नए अनुभव एवं क्षेत्र सम्मिलित होते रहते हैं। अतः विज्ञान के एक विषय के रूप में लोकप्रिय होने के साथ–साथ यह विचारवान ज्ञान क्षेत्र की विधा है जिसमें सर्वाधिक नवीनता, नवाचार तथा तकनीकी का सम्मिश्रण होता रहता है। विज्ञान के अनुशासन के रूप में उसकी स्वयं की प्रकृति एवं भूमिका है। इस भूमिका के साथ वह अन्य विषयों से किस प्रकार सम्बन्धित है, चर्चा करेंगे–

1) **विज्ञान और भूगोल**–विज्ञान तथा भूगोल विषय वास्तव में एक दूसरे से अत्यधिक निकट हैं। भूगोल के भौतिक उपविषय जैसे– पत्थर, मिट्टी, सौर मण्डल, जलवायु परिवर्तन, अर्द्रता आदि विज्ञान के अत्यधिक निकट है। भूगोल में आँकड़ों की गणना भी विज्ञान के माध्यम से की जाती है। अतः अधिकांश पाठ्यचर्या में भूगोल विषय को विज्ञान की श्रेणी में स्थान प्राप्त है। विषयों के चयन एवं वैकल्पिक विषय के चुनाव में यह सहसम्बन्ध अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। विद्यार्थियों को विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान विषयों की सीमाओं में भेद मिटाकर उनकी पारस्परिक निर्भरता की चर्चा की जानी चाहिए। यह निर्भरता ही विद्यार्थियों में अभिरुचि जाग्रत करती है। अधिकांशतः यह देखने में आता है कि विज्ञान का विद्यार्थी भूगोल केवल यह समझ कर नहीं पढ़ता है कि यह विषय सामाजिक विज्ञान की श्रेणी में आता है। यद्यपि दोनों विषय मूलरूप में अन्तर्सम्बन्धित हैं। पाठ्यक्रम निर्माण में इन विकल्पों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

2) **विज्ञान और भाषा**–विज्ञान के प्रसार तथा विकास के लिए भाषा एक सम्पर्क सूत्र का कार्य करती है। सुलभ एवं उचित भाषा के अभाव में विज्ञान के ज्ञान को जनसुलभ बनाना आसान नहीं होगा। इसी श्रृंखला में विज्ञान, भाषा को विकसित करने में सहायक है। विज्ञान के कारण भाषा को नए तकनीकी शब्द, शब्दावली की प्राप्ति होती है जिससे भाषा अधिक समृद्ध होती है। विज्ञान के संकेत, सूत्र आदि भाषा को संरक्षित करने में सहायता प्रदान करते हैं।

सामाजिक अध्ययन/विज्ञान का अन्य विषयों से सहसम्बन्ध (Correlation of Social Study/Science with Other Subjects)

सामाजिक अध्ययन/विज्ञान का अन्य विषयों से निम्न प्रकार सहसम्बन्धित किया जा सकता है–

1) **सामाजिक अध्ययन एवं गणित**–गणित दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाला महत्त्वपूर्ण विषय है। गणित केवल

Scanned by CamScanner

अमूर्त संकल्पना ही नहीं है अपितु सामाजिक जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। विद्यार्थियों के सामाजिक विकास, जिसमें आय–व्यय, लाभ–हानि, बैंकिग, बाजार, बचत, आर्थिक वृद्धि, लागत–मूल्यांकन के साथ सामाजिक अध्ययन विषय को पढ़ाया जाता है। इन सभी को समझने के लिए गणित अनिवार्य है। गणित और सामाजिक अध्ययन को अलग–अलग विषय मानकर पृथक्करण नहीं करना चाहिए अपितु दोनों विषय समान्तर उदाहरणों के साथ एक–साथ पढ़ाए जाने चाहिए।

2) **विज्ञान एवं ललित–शिल्पकला**–विज्ञान शाश्वत सत्य को परखने का विषय है। सत्य की खोज में अनेक सोपान होते हैं जिसमें चित्रकला तथा अन्य शिल्प के ज्ञान की आवश्यकता होती है। **उदाहरण के लिए**– विज्ञान के सिद्धान्तों को परखने एवं प्रमाणित करने के लिए उपकरण की आवश्यकता होती है। उपकरण, चार्ट, मॉडल आदि के निर्माण के लिए काष्ठकला, धातुकला, चित्रकला एवं ललितकला का आधारभूत ज्ञान आवश्यक है।

इसके विपरीत ललितकला तथा शिल्पकला के विकास के लिए विज्ञान आवश्यक है। विज्ञान के माध्यम से ही उपकरणों के निर्माण, कम्प्यूटर ग्राफिक्स और नवीन तकनीक कला के क्षेत्र में क्रान्ति को गति दे रही है। पदार्थों के रासायनिक एवं भौतिक गुणों के द्वारा ही शिल्प कला को आधार प्राप्त होता है। अतः हम कह सकते हैं कि दोनों विषयों के पहुँच मार्ग भिन्न–भिन्न हैं किन्तु उद्देश्य प्राप्ति में दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

3) **सामाजिक अध्ययन एवं भाषा**–यदि सामाजिक अध्ययन विषय के साथ भाषा का उचित सम्बन्ध न हो तो सामाजिक अध्ययन अपने उद्देश्यों में कभी सफल नहीं हो सकता है। भाषा, एक माध्यम है जिसके द्वारा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। इस प्रकार विद्यार्थियों में सामाजिक गुणों के विकास के साथ विद्यार्थियों में समान्तर क्रम में गणित की अवधारणाओं का भी विकास होता जाता है। घर, विद्यालय तथा सामुदायिक उत्सवों में विद्यार्थियों द्वारा आय–व्यय का ब्यौरा, बजट निर्माण आदि क्रियाविधियों को सम्पन्न करवाकर, दोनों विषयों के उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है।

4) **सामाजिक अध्ययन एवं कला**–भारत की शिक्षा व्यवस्था में विद्यालीय पाठ्यचर्या में विभिन्न कलाओं को सम्मिलित किया गया है। विभिन्न कलाएँ, चित्रकला, संगीत तथा ललित कलाएँ आदि मात्र कलाओं के प्रचार के लिए नहीं होतीं अपितु इनके माध्यम से विद्यार्थियों में सृजनात्मकता एवं कल्पनाशीलता की वृद्धि की जाती है। ये सभी कलाएँ सामाजिक अध्ययन से बहुत गहरा सम्बन्ध रखती हैं। इन दोनों विषयों का उद्देश्य "मानव विकास" पर केन्द्रित है। सामाजिक अध्ययन विषय किसी भी स्थिति में मानव विकास के चरणों में स्थापत्य कला, मूर्तिकला, संगीत आदि के अस्तित्व को बिना अध्ययन किए अपूर्ण ही माना जाता है। अतः सामाजिक अध्ययन एवं कला का अटूट सम्बन्ध है।

Scanned by CamScanner

अध्याय–4

शिक्षा के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य
THEORETICAL PERSPECTIVES OF EDUCATION

विद्यालयी शिक्षा प्रणाली (SCHOOL EDUCATION SYSTEM)

प्रश्न 1– भारतीय शिक्षा की संरचना का प्रारूप देते हुए विद्यालयी शिक्षा प्रणाली का वर्णन कीजिए।
Describe the school education system with explaining format of indian education structure.

या (or)

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
Write short notes on the following:
1) प्राथमिक शिक्षा (Primary Education)
2) माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)
3) उच्च शिक्षा (Higher Education)

उत्तर– गत वर्षों में यह माना जाता था कि प्रधान शिक्षा भारत में उपलब्ध नहीं है, लेकिन शैक्षणिक क्षेत्र में होने वाले वर्तमान विकास ने इस विश्वास को प्रेरित किया है कि गुणवत्ता पूर्व शिक्षा वास्तव में भारत में उपलब्ध है। केंद्रीय और अधिकांश राज्य बोर्ड समान रूप से शिक्षा के 10 + 2 + 3 पैटर्न का पालन करते हैं। इस पद्धति में, 10 वर्षों का अध्ययन विद्यालयों में और 2 साल के जूनियर कॉलेजों में किया जाता है, फिर स्नातक की डिग्री के लिए 3 वर्ष स्नातक स्तर की पढ़ाई होती है। भारत में शिक्षा की संरचना का प्रारूप निम्नलिखित है–

पूर्व–प्राथमिक
(3 से 5 वर्ष) तक
↓
प्राथमिक विद्यालय कक्षा (1 – 5) तक
(6 से 10 वर्ष) तक
↓
मिडिल विद्यालय कक्षा (6 – 8) तक
(11 से 14 वर्ष) तक
↓
माध्यमिक विद्यालय कक्षा (9 – 10) तक
(14 से 16 वर्ष) तक
↓
उच्च माध्यमिक विद्यालय कक्षा (11 – 12) तक
(16 से 18 वर्ष) तक

पूर्व प्राथमिक शिक्षा (Pre-Primary Education)
पूर्व प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत 6–10 वर्ष के बच्चे आते हैं। पूर्व–प्राथमिक चरण बच्चों के ज्ञान, कौशल और व्यवहार की नींव है। पूर्व–प्राथमिक शिक्षा के पूरा होने पर, बच्चों को प्राथमिक स्तर पर भेजा जाता है लेकिन भारत में पूर्व–प्राथमिक शिक्षा एक मौलिक अधिकार नहीं है। ग्रामीण भारत में, पूर्व–प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध नही होते हैं लेकिन शहरों और बड़े शहरों में, पूर्व–प्राथमिक विद्यालय स्थापित हैं। पूर्व–विद्यालयों की मांग छोटे शहरों और शहरों में काफी बढ़ रही है। 6 वर्ष से कम आयु की जनसंख्या का 1% पूर्वस्कूली शिक्षा में नामांकित है।

1) **प्ले ग्रुप (प्री–नर्सरी)**–प्ले स्कूलों में, बच्चों को बहुत सी बुनियादी शैक्षणिक गतिविधियों से अवगत कराया जाता है, जो उन्हें स्वतंत्र रूप से तेजी से ज्ञान प्राप्त करने में सहायता करती हैं और स्व–सहायता गुणों जैसे– खुद से खाना खाने, ड्रेसिंग और सफाई बनाए रखने सहायता करती हैं। प्री–नर्सरी में प्रवेश के लिए आयु सीमा 2 से 3 साल है।

2) **नर्सरी**–नर्सरी स्तर की गतिविधियों से बच्चों को उनकी प्रतिभाओं को उजागर करने में सहायता मिलती है, जिससे उनकी मानसिक और शारीरिक क्षमताओं को तेज करने में सहायता मिलती है। नर्सरी में प्रवेश के लिए आयु सीमा 3 से 4 साल है।

3) **एल.के.जी.**–इसे जूनियर बालवाड़ी (जूनियर किण्डरगार्टन) स्तर भी कहा जाता है। एल.के.जी. में प्रवेश के लिए आयु सीमा 4 से 5 साल है।

4) **यू.के.जी.**–इसे वरिष्ठ बालवाड़ी (सीनियर किण्डरगार्टन) स्तर भी कहा जाता है। यू.के.जी में प्रवेश के लिए आयु सीमा 5 से 6 साल है।

एल.के.जी. और यू.के.जी. स्तर बच्चों को भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक और शारीरिक रूप से सहज ज्ञान प्राप्त करने के लिए सहायता करते हैं। जो जीवन के बाद के स्तरों (स्कूल और कॉलेज) में ज्ञान प्राप्त करने में युवा बच्चों को बेहतर समझ प्रदान करता है। भारत में सर्वोत्तम तरीके से ज्ञान देने के लिए पूर्वस्कूली शिक्षा एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। एक आसान और रोचक पाठ्यक्रम का पालन करके, शिक्षकों द्वारा सीखने की प्रक्रिया को बच्चों के लिए सुखद बनाने के लिए कड़ी मेहनत की जाती है।

प्राथमिक शिक्षा (Primary Education)
प्राथमिक शिक्षा को अक्सर आरम्भिक शिक्षा के रूप में जाना जाता है। प्राथमिक या आरम्भिक शिक्षा में पूर्वस्कूली शिक्षा और परिवारी शिक्षा के ऊपर बनता है। प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा का एकमात्र स्तर है जिसकी पूर्णता विद्यार्थियों की पूरी आबादी के लिए अनिवार्य है तथा दो चरणों में विभाजित है। प्रथम चरण में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य, नियमित और व्यवस्थित शिक्षा के लिए

Scanned by CamScanner

पूर्वस्कूली शिक्षा और परिवार की देखभाल से विद्यार्थियों के संक्रमण की सुविधा प्रदान करना है। यह नए ज्ञान प्राप्त करने, सम्मान और प्रत्येक छात्र की व्यक्तिगत जरूरतों, संभावित और रुचियों (विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले विद्यार्थियों सहित) को विकसित करने पर आधारित है।

द्वितीय चरण में प्राथमिक शिक्षा छात्रों को ज्ञान, कौशल और आदतों को प्राप्त करने में मदद करता है, जिससे उन्हें स्वतंत्र रूप से अध्ययन करने और ऐसे मूल्यों और व्यवहार पैदा करने में मदद मिलेगी। दोनों चरणों में प्राथमिक शिक्षा के लिए एक चुनौतीपूर्ण और रचनात्मक वातावरण की आवश्यकता होती है जो सबसे प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को बहुत प्रोत्साहित करती है, कम प्रतिभाशाली लोगों को प्रोत्साहित करती है और सबसे कमजोर विद्यार्थियों का संरक्षण करती है और उनका समर्थन करती है। यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक बालक, शिक्षा के माध्यम से उनकी व्यक्तिगत जरूरतों के अनुकूल व विकसित होता है। बालक अपनी स्वयं की सीखने की क्षमताओं के अनुरूप सीखता है।

प्राथमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या (Curriculum of Primary Education)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में, 10 + 2 + 3 शैक्षिक संरचना पाठ्यचर्या घोषित की गई है। 1975 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण आयोग ने 10 साल के प्राथमिक पाठ्यचर्या की घोषणा की है। कुछ समय बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को घोषित किया गया, जिसमें 10 + 2 + 3 शैक्षिक संरचना पाठ्यचर्या पर ज्यादा जोर दिया गया था। इस नीति ने पूरे देश के लिए अनिवार्य 10 + 2 + 3 शैक्षिक संरचना पाठ्यचर्या बनाई। 1988 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण आयोग ने पाठ्यचर्या का एक नया रूप घोषित किया। अभी तक इस नए फॉर्म को देश में ठीक से निष्पादित नहीं किया गया है, शिक्षा नीति का एक नया संशोधित रूप संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 के रूप में घोषित किया गया है। नवंबर 2000 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण आयोग ने मूल पाठ्यचर्या का एक नया रूप घोषित किया। जिसमें पहले 8 वें वर्ष के लिए प्राथमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या निम्नानुसार है–

कक्षा 1 और कक्षा 2

1) भाषा–मातृ भाषा/क्षेत्रीय
2) गणित
3) स्वास्थ्य एवं जीवन उपयोगी कला

कक्षा 3 और कक्षा 5

1) भाषा–मातृ भाषा/क्षेत्रीय भाषा
2) गणित
3) पर्यावरण शिक्षा
4) सामाजिक अध्ययन
5) विज्ञान
6) स्वास्थ्य एवं जीवन उपयोगी कला

कक्षा 6 और कक्षा 8

1) त्रिभाषा– मातृ भाषा/क्षेत्रीय भाषा आधुनिक भारतीय भाषा एवं अंग्रेजी
2) गणित
3) विज्ञान एवं तकनीकी
4) सामाजिक अध्ययन
5) सामान्य ज्ञान,
6) कला एवं संगीत,
7) हस्तकला
8) पर्यावरण शिक्षा एवं
9) शारीरिक शिक्षा।

माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)

माध्यमिक शिक्षा, शिक्षा का ऐसा स्तर है जिसमें प्राथमिक विद्यालय के बाद और विश्वविद्यालय शिक्षा शुरू होने से पहले की सभी कक्षाएँ शामिल हैं। इस स्तर को देश के पूरे शैक्षिक कार्यक्रम की रीढ़ माना जाता है। हालांकि, यह एक ऐसा स्तर है, जो विद्यार्थियों के बड़े बहुमत के लिए शिक्षा के पूरा होने का प्रतीक है। माध्यमिक शिक्षा भी उच्च शिक्षा का आधार है जो राष्ट्र की शक्ति को अपेक्षित दिशा देती है।

आजादी से पहले के युग में, भारतीय शिक्षा प्रणाली में माध्यमिक स्तर की शिक्षा की श्रेणियाँ थीं, स्थानीय माध्यमिक विद्यालय, हाई स्कूल, प्रवेश द्वार, मध्यवर्ती और मैट्रिक। विभिन्न देशों में, शिक्षा के तीन चरण प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय हैं। आदर्श रूप से, शिक्षा केवल विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा से पहले की जाती है और प्राथमिक स्तर की शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा कहा जाता है। विभिन्न देशों में माध्यमिक शिक्षा की अवधि के बीच भिन्नता है।

माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक और उच्च शिक्षा के बीच पुल के रूप में कार्य करती है और उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिए 14–18 वर्ष के आयु वर्ग के युवा लोगों को तैयार करती है।

प्रोफेसर हुमायूँ कबीर के अनुसार, माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक (प्राथमिक) शिक्षा और उच्च शिक्षा के बीच जुड़ने वाली कड़ी है।

माध्यमिक स्तर एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या (Curriculum at Secondary Stage and Higher Secondary Stage)

मुदालियर आयोग ने माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर की पाठ्यचर्या निर्माण हेतु निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखने का सुझाव दिया है–

1) माध्यमिक स्तर पर छात्रों की योग्यताओं तथा अभिरुचियों के आधार पर पाठ्यचर्या निर्मित की जानी चाहिए।
2) विद्यार्थी अपनी योग्यता तथा अभिरुचियों के अनुरूप विषयों का चयन कर सकें इसलिए इस स्तर पर पाठ्यचर्या में पर्याप्त विविधता होनी चाहिए।
3) इस स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा का स्वरूप संकुचित तथा औपचारिक नहीं होना चाहिए उसमें व्यावसायिक प्रतिबद्धता की झलक होनी चाहिए।
4) इस स्तर पर पाठ्यचर्या में कुछ सामान्य विषय सभी के लिए होने चाहिए तथा कुछ वैकल्पिक विषय होने चाहिए।

इस प्रकार आयोग ने पाठ्यचर्या के विभिन्नीकरण के लिए एक रूपरेखा प्रस्तुत की है जिसमें कुछ अनिवार्य विषय तथा कुछ वैकल्पिक विषय रखे गए हैं। वैकल्पिक विषयों के सात समूह बनाए गए हैं जिनमें से छात्र अपनी रुचि, योग्यता तथा आवश्यकता के अनुकूल कोई भी अध्ययन समूह का चुनाव कर सकता है। आयोग ने उच्च स्तर पर पाठ्यचर्या के विषयों में विभिन्नीकरण करने के लिए कहा।

इसके लिए पाठ्यचर्या को दो भागों में विभाजित करने के लिए कहा–

1) अनिवार्य विषय तथा
2) वैकल्पिक विषय।

Scanned by CamScanner

अनिवार्य विषयों का अध्ययन सब सभी बालकों के लिए अनिवार्य होगा। वैकल्पिक विषयों के 7 समूह होंगे जिनमें से छात्रों को किसी एक समूह के विषयों का अध्ययन करना होगा–

1) **अनिवार्य विषय (Compulsory Subject)**–अनिवार्य विषय निम्नलिखित हैं–
   i) मातृभाषा,
   ii) कोई एक भाषा–
      a) हिन्दी (जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।)
      b) प्रारम्भिक अंग्रेजी (जिन छात्रों ने निम्न माध्यमिक स्तर पर इसका अध्ययन नहीं किया है।)
      c) उच्च अंग्रेजी (जिन छात्रों ने निम्न माध्यमिक स्तर पर इसका अध्ययन किया है।)
      d) हिन्दी के अतिरिक्त कोई अन्य भारतीय भाषा।
      e) अंग्रेजी के अतिरिक्त कोई अन्य विदेशी भाषा।
      f) कोई शास्त्रीय भाषा।
   iii) सामाजिक विषय (प्रथम दो वर्षों के लिए),
   iv) गणित तथा सामान्य विज्ञान (प्रथम दो वर्षों के लिए),
   v) कोई एक शिल्प–
      a) कताई–बुनाई,
      b) धातु का काम,
      c) लकड़ी का काम,
      d) बागवानी,
      e) मॉडल (प्रतिमान) बनाना,
      f) छपाई,
      g) वस्तकारी तथा
      h) सिलाई–कढ़ाई।

2) **वैकल्पिक विषय (Optional Subject)**–वैकल्पिक विषय निम्नलिखित हैं–

समूह 1–विज्ञान (Science)
i) भौतिक शास्त्र,
ii) रसायन शास्त्र,
iii) जीव–शास्त्र,
iv) गणित,
v) भूगोल
vi) वास्थ्य विज्ञान तथा
vii) शरीर विज्ञान

समूह 2–मानव विज्ञान (Anthropology)
i) शास्त्रीय भाषा (जो अनिवार्य विषय में न ली हो),
ii) भूगोल,
iii) इतिहास,
iv) नागरिकशास्त्र और अर्थशास्त्र,
v) तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान,
vi) गणित,
vii) गृहविज्ञान, तथा
viii) संगीत।

समूह 3–वाणिज्य (Commerce)
i) वाणिज्यिक प्रयोग,
ii) बुक–कीपिंग (पुस्तपालन),
iii) वाणिज्य भूगोल या अर्थशास्त्र और नागरिकशास्त्र तथा
iv) टाइप एवं शॉर्ट हैंड

समूह 4–कृषि (Agriculture)
i) सामान्य कृषि,
ii) पशुपालन,
iii) बागवानी तथा
iv) वनस्पति विज्ञान और कृषि रसायन।

समूह 5–तकनीकी (Technical)
i) व्यावहारिक गणित और रेखीय ड्राइंग,
ii) व्यावहारिक विज्ञान,
iii) मैकेनिकल इन्जीनियरिंग तथा
iv) इलैक्ट्रिकल इन्जीनियरिंग।

समूह 6–गृह–विज्ञान (Home Science)
i) गृह अर्थशास्त्र, पोषण,
ii) आहार और पाक–कला,
iii) शिशु पालन और मातृ–कला तथा
iv) गृह उपचारण।

समूह 7–ललित कला (Fine Arts)
i) कला का इतिहास,
ii) डिजाइन तथा ड्राइंग,
iii) मॉडल (प्रतिमान) बनाना,
iv) चित्रकला,
v) नृत्य तथा
vi) संगीत।

उच्च शिक्षा (Higher Education)

कक्षा 12 या उच्चतर माध्यमिक परीक्षा पूरी करने के बाद, छात्रों को स्नातक डिग्री प्राप्त करने के लिए विभिन्न कॉलेजों और संस्थानों में नामांकित किया जाता है। उनके पास विज्ञान, कला या वाणिज्य या इंजीनियरिंग, कानून या चिकित्सा जैसे एक व्यवसायिक क्षेत्र चुनने का विकल्प होता है। भारत में उच्च शिक्षा का मुख्य शासी निकाय यू. जी. सी. या विश्वविद्यालय अनुदान आयोग है। विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ छात्रों और शिक्षकों दोनों को प्रभावित एवं उत्तेजित करती हैं विद्यार्थी के लिए, यह एक लक्ष्य देता है कि वह किस दिशा में प्रयास करे और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निर्दिष्ट समय अवधि भी देता है।

भारतीय विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है–

स्नातक (Graduation)–यह उच्च शिक्षा का का एक भाग है। जो कॉलेज में पूरा हो गया है यह कोर्स छात्र द्वारा चयन किए गए विषय के अनुसार भिन्न हो सकता है। मेडिकल छात्र के लिए यह चरण साढ़े चार साल से अनिवार्य इंटर्नशिप के साथएक वर्ष का है, जबकि एक साधारण स्नातक की डिग्री तीन वर्षों में प्राप्त की जा सकती है।

Scanned by CamScanner

स्नातकोत्तर (Post Graduaction)–स्नातक स्तर की पढ़ाई पूरी करने के बाद एक छात्र अपनी योग्यता में आगे जोड़कर स्नातकोत्तर के लिए विकल्प चुन सकता है।

विश्वविद्यालय शिक्षा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी) द्वारा देखरेख की जाती है, जो उच्च शिक्षा के विकास, धन आवंटन और भारत में संस्थानों की मान्यता के लिए जिम्मेदार है। राष्ट्रीय प्रत्यायन और आंकलन परिषद (एन.ए.ए.सी.) की स्थापना यू.जी.सी. द्वारा विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की आधारभूत रैंकिंग प्रणाली के आधार पर "ए" से "सी" के आधार पर की गई थी। मूल्यांकन और प्रत्यायन का उपयोग संस्था की गुणवत्ता स्थिति को समझने के लिए किया जाता है और यह दर्शाता है कि विशेष संस्था एन.ए.ए.सी द्वारा निर्धारित गुणवत्ता के मानकों को पूरा करती है। एनएएसी की मान्यता प्रक्रिया में भागीदारी स्वैच्छिक है।

भारत में विभिन्न प्रकार के तृतीयक संस्थान हैं, अर्थात् राष्ट्रीय महत्व के विश्वविद्यालय (केंद्रीय, राज्य, खुला, और डीम्ड) विश्वविद्यालय। अधिकांश छात्रों के निर्देश, लगभग 80%, संबद्ध कॉलेजों में पाठ्यक्रम, परीक्षा, और अंतिम डिवीजन विश्वविद्यालय द्वारा डिजाइन और दी गई है। संविधान और स्वायत्त महाविद्यालय भी मौजूद हैं।

प्रश्न 2– विद्यालयी शिक्षा की समकालीन चुनौतियों का उल्लेख करते हुए विद्यालयी शिक्षा के स्तर में सुधार के उपाय लिखिए।

Describe the contemporary challenges of school with explaination to improve the level of school education.

उत्तर– विद्यालयी शिक्षा में समकालीन चुनौतियाँ (Contemporary Challenges in School Education)

विद्यालयी शिक्षा में कुछ मुख्य समकालीन चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं–

1) **पाठ्यचर्या के मुद्दे**–भारत में आधुनिक शिक्षा की रटन प्रणाली की समस्या सुलझाने की बजाय अक्सर इसके आधार पर आलोचना की जाती है। भारतीय शिक्षा प्रणाली जो भी उत्पादन कर रही है, उनमें से ज्यादातर स्कूल के छात्रों को सीखने या खेलने के बजाय प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयारी करने के लिए अपना बहुत समय खर्च करना पड़ता था। पूर्वस्कूली स्तर पर बालकों के लिए अधिकतर विद्यालयों में कोई पाठ्यक्रम नहीं है। भारत में प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों के लिए पाठ्यक्रम संकीर्ण और अनुचित है, और इसमें बालकों की कोई दिलचस्पी नहीं है। यह आधिकारिक ज्ञान पर आधारित है। यह छात्रों की सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है। पाठ्यक्रम का निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है।

2) **शिक्षा में भ्रष्टाचार**–भारतीय शिक्षा प्रणाली में भ्रष्टाचार शिक्षा की गुणवत्ता को कम कर रहा है और समाज के लिए दीर्घकालिक नकारात्मक परिणाम पैदा कर रहा है। भारत में शैक्षिक भ्रष्टाचार काले धन के प्रमुख योगदानकर्ताओं में से एक माना जाता है।

3) **सरकार की अनुचित नीतियाँ**–भारतीय संविधान में प्राथमिक शिक्षा के लिए अलग–अलग प्रावधान किए गए हैं। भारत में, भारतीय संविधान ने घोषणा की कि राज्य 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगी। लेकिन निर्धारित लक्ष्य अभी तक पूरा नहीं हुआ है। इसका कारण सरकार की आदर्शवाद पर आधारित नीति है। सरकारी नीति के कामकाज खराब और अनुचित हैं।

4) **प्रशिक्षित शिक्षकों की अनुपस्थिति**–भारत में प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है। वर्तमान में, अधिकांश युवा शिक्षक ग्रामीण क्षेत्रों में काम नहीं करना चाहते हैं। लेकिन सत्य यह है कि ज्यादातर प्राथमिक विद्यालय ग्रामीण क्षेत्रों में हैं उपयुक्त शिक्षकों की अनुपलब्धता का मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापकों के लिए शिक्षण कार्य आकर्षक नहीं है। एक और कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षकों का वेतन तुलनात्मक रूप से बहुत कम है। स्कूल में शिक्षकों की भूमिका मानव शरीर में रीढ़ की हड्डी की भूमिका के समान है। पूर्व के बिना, उत्तरार्द्ध कुशलता से काम नहीं कर सकता। लेकिन वास्तविकता में, प्रत्येक विद्यालय में बहुत कम सक्षम शिक्षक हैं इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं, लेकिन नियुक्ति के दौरान एक प्रमुख कारण संदर्भ, जाति आदि के आधार पर पक्षपात है।

5) **शिक्षा का दोषपूर्ण प्रशासन**–भारत की शिक्षा प्रणाली अभी तक अच्छी तरह से सुसज्जित नहीं है। यह वही है जैसे यह स्वतंत्रता पूर्व था। हालांकि स्वतंत्रता के बाद इस समस्या को हल करने के लिए कई कदम उठाए गए हैं। लेकिन अधिकांश राज्यों में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी ब्लॉकों, नगरपालिकाओं और शैक्षिक जिले के अधिकारियों पर है। इन संस्थानों की उदासीनता और अक्षमता के कारण प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की गति धीमी हो जाती है। ये संस्थान शिक्षा के प्रति रूचि नहीं लेते हैं। वे अपनी इच्छा के अनुसार काम करते हैं।

6) **भाषा समस्या**–भारत को विविधता का देश कहा जाता है। यहाँ लगभग सभी प्रकार के लोग अलग–अलग संस्कृति, वंश आदि से सम्बन्धित है। यहाँ भाषा में बहुत बड़ा अंतर है। 1991 की जनगणना रिपोर्ट देश में 826 भाषाएँ और 1652 बोलियाँ हैं।

7) **प्राकृतिक बाधाएँ**–अनिवार्य शिक्षा के विस्तार के रास्ते में प्राकृतिक बाधाएं बड़ी बाधँ हैं– हिमालयी क्षेत्रों, कश्मीर, गढ़वाल, अल्मोड़ा में कम आबादी वाले गांव और छोटे बस्तियों अलग–अलग दूरी पर स्थित हैं। राजस्थान में भी रेगिस्तानी इलाकों, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, असम और कई दक्षिणी राज्यों में घने जंगल क्षेत्र ने उम्मीदवार नामांकन के लिए समस्याएं पैदा की हैं। ये संचार, शिक्षा और स्कूल संगठन की कमी और परिवहन की अनुपस्थिति के साथ बहुत मुश्किल क्षेत्र हैं।

8) **सामाजिक परिवर्तन**–हमारा समाज सदैव ही परिवर्तनशील रहा है और समय के साथ होने वाले परिवर्तनों के साथ–साथ शिक्षा के अन्तर्गत पाठ्यचर्या में भी परिवर्तन होते रहे हैं। वर्तमान में आधुनिकता, विज्ञान, तकनीकी और पाश्चात्य प्रभाव के कारण समाज में बहुत जल्दी–जल्दी परिवर्तन हो रहे हैं जिसके कारण नित्य नई पाठ्यचर्या की आवश्यकता पड़ती है। व्यावसायिक पाठ्यचर्या के साथ–साथ तकनीकी के प्रशिक्षण की आवश्यकता अनुभव हो रही है तथा दूरवर्ती शिक्षा में तकनीकी के महत्त्व को नकार नहीं सकते। इस प्रकार की शिक्षा में संप्रेषण के माध्यम की आवश्यकता होती है।

Scanned by CamScanner

9) **राजनैतिक कठिनाइयाँ**–शिक्षा लोकतंत्र का आधार है लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए नागरिकों को शिक्षित करना आवश्यक है। लेकिन अब तक भारत सरकार शिक्षा के प्रति पूर्ण ध्यान नहीं दे पाई है। मुख्य कारण यह है कि स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद से सरकार ने भोजन की समस्याओं, विरोधी पड़ोसियों, कश्मीर की समस्या, भाषायी राज्यों की समस्या आदि समस्याएँ अभी भी मौजूद है। इन समस्याओं के लिए पैसे का आवंटन सरकार की मजबूरी है। सरकार प्राथमिक शिक्षा के लिए अपना ध्यान आकर्षित करने में सक्षम नहीं है राजनीतिक समस्याओं को हल करने के लिए सरकार जिम्मेदार है। सार्वजनिक शिक्षा की सुचारू प्रगति के लिए सरकार भी कर्तव्यबद्ध है। किसी भी मामले पर, सरकार की सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की ओर इस उदासीनता को उचित ठहराया जा सकता है।

10) **सामाजिक बुराईयाँ**–अंधविश्वास जैसे सामाजिक बुराइयों, प्राचीन परंपराओं और सीमा शुल्क, बाल विवाह, छुआछूत आदि में निरक्षरता विश्वास, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विस्तार में बाधा पैदा करते हैं। निरक्षरता और अज्ञानता के कारण सामाजिक बुराई बढ़ती है।

11) **पैसे की कमी**–भारत एक विशाल देश है और बहुत बड़ी आबादी है। पैसे की कमी एक गंभीर समस्या है जो प्राथमिक विद्यालयों का सामना करती है, जिसके कारण प्राथमिक शिक्षा का विस्तार ठीक से नहीं हो रहा है।

विद्यालयी शिक्षा के स्तर में सुधार के लिए उपाय (Measures to Improve Level of School Education)

कुछ उपाय हैं जो प्राथमिक शिक्षा के स्तर में सुधार के लिए लाभदायक हो सकते हैं–

1) **एक अच्छी तरह से परिभाषित नीति निर्धारित करें**–सबसे पहले, सरकार को एक अच्छी तरह से परिभाषित नीति निर्धारित करनी चाहिए। अनिवार्य शिक्षा की सरकार की नीति इतना व्यावहारिक नहीं है; क्योंकि यह आदर्शवादी विचारों पर आधारित है जिसके कारण यह ठोस परिणाम प्राप्त करने में सक्षम नहीं हुआ है। यह अनिवार्य शिक्षा शुरू करने के लिए और बाद में मूलभूत शिक्षा के आकार को दिया जाना चाहिए था, के लिए अधिक उचित होगा।

2) **अच्छा आंकलन प्रणालियों का निर्माण**– शिक्षकों को कक्षाओं में अच्छे विद्यार्थियों की समझ का आंकलन करने और नीति को सूचित करने के लिए अच्छे मूल्यांकन उपयोगी होते हैं। भारत में नियमित और उपयोगी आंकलन की आवश्यकता है जो शिक्षा के भारतीय विभाग केंद्रीय और राज्य स्तर पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं।

3) **मौजूदा शैक्षणिक प्रणाली और पाठ्यक्रम को सुधारने की आवश्यकता है**– प्राथमिक स्तर पर इस तरह के ब्रड़े पैमाने पर अपव्यय और ठहराव को नियंत्रित करने के लिए, सुधार किया जाना चाहिए, मौजूदा शैक्षणिक व्यवस्था और पाठ्यक्रम को सुधारना चाहिए, शिक्षण पद्धति दिलचस्प होना चाहिए, स्कूल भवन पर्याप्त और साफ होना चाहिए और माता–पिता को शिक्षित किया जाना चाहिए। ये निराकरण और स्थिरता की समस्या को हल करने में मदद कर सकते हैं।

4) **उचित संगठन**–भारत में माध्यमिक विद्यालयों के गठन में असमानता के कारण, माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के रास्ते में बाधा उत्पन्न हो रही है। इसलिए, माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिए उचित संगठन की आवश्यकता है।

5) **उचित पाठ्यचर्या**–पाठ्यचर्या को ठीक से केंद्रित किया जाना चाहिए, जिससे कि छात्रों के अध्ययन के प्रति रुचियां बन सकें। भाषा को महत्त्व दिया जाना चाहिए, अर्थात् शिक्षा का माध्यम उपयुक्त होना चाहिए।

6) **लोगों के समर्थन में प्रोत्साहन**–सरकार को माध्यमिक शिक्षा के निजीकरण का समर्थन करना चाहिए। सरकार को माध्यमिक शिक्षा में लोगों को नामांकन के लिए प्रोत्साहित करने के लिए अनुदान सहायता प्रदान करनी चाहिए।

7) **शैक्षिक बजट में वृद्धि**–माध्यमिक शिक्षा मुख्य रूप से राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है, इसलिए उन्हें शैक्षिक बजट में वृद्धि का समर्थन करना चाहिए। उन्हें छात्रों के लिए विभिन्न व्यावसायिक और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों को प्रोत्साहित करने के लिए समर्थन करना चाहिए ताकि माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

8) **पर्यवेक्षण**–उचित पर्यवेक्षण की कमी के चलते शिक्षा पर सरकार द्वारा तैयार की गई कई नीतियों के क्रियान्वयन में असफलता नहीं है। इसलिए नीतियों के विनियमन और कार्यान्वयन पर उचित पर्यवेक्षण होना चाहिए।

9) **शिक्षक प्रशिक्षण पर ध्यान**–सरकार द्वारा लक्षित इस स्तर पर माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिए स्कूलों में शिक्षकों के चयन पर उचित मानदंड होना चाहिए और उचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को तैयार किया जाना चाहिए ताकि, शिक्षक की गुणवत्ता पाठ्यक्रम में किए गए समय–समय पर परिवर्तनों से बनाए जा सकें।

10) **पाठ्यचर्या मानकीकरण**–जैसा कि सार्वजनिक उच्च विद्यालयों की संख्या बढ़ी, पाठ्यक्रम के बीच की विविधता में वृद्धि हुई। पाठ्यचर्या या संगठन के बारे में कोई मानक नहीं है। स्थानीय स्कूल बोर्डों द्वारा किए गए पाठ्यचर्या के फ़ैसले ने कॉलेजों और हाई स्कूलों के बीच संबंधों में बाधा उत्पन्न की। कॉलेज में प्रवेश आमतौर पर परीक्षाओं द्वारा निर्धारित किया गया था, जिनकी विशिष्ट व्यक्तिगत जरूरतें थीं, जिससे आवश्यक तैयारी की अपेक्षा करना कठिन हो गया। पाठ्यक्रम में और अधिक मानकीकरण प्रदान करने के लिए और कॉलेज प्रवेश प्रक्रिया को सुलझाने में मदद करने के लिए, राष्ट्रीय शिक्षा संघ ने 1892 में दस सदस्यों की समिति को प्रायोजित किया।

शिक्षा और अन्य विकास क्षेत्रों से सम्बन्ध (RELATION BETWEEN EDUCATION AND OTHER DEVELOPMENT SECTORS)

प्रश्न 3– शिक्षा से सम्बन्धित विकास के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

Describe the various scope related to educational development.

या (or)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

Write a short note on the following-

1) **सामाजिक विकास (Social Development)**
2) **शिक्षा एवं सामाजिक विकास (Education and Social Development)**

Scanned by CamScanner

3) **आर्थिक विकास (Economic Development)**
4) **स्त्री–शिक्षा (Women Education)**

उत्तर– राष्ट्रीय विकास के सभी क्षेत्रों में, शिक्षा केवल एक ही क्षेत्र है जो मनुष्य के विकास के प्रति विशेष रूप से चिंतित है। विकास के अन्य क्षेत्र शिक्षा विकास पर निर्भर है। लेकिन, बदले में आदमी भी उन्हें प्रभावित करता है मानव और क्षेत्रीय विकास के बीच इस संबंध का उपयोग शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है, और क्षेत्रीय विकास और इसके विपरीत के साथ मनुष्य का विकास। शिक्षा क्षेत्र राष्ट्रीय विकास पर अत्यधिक निर्भर है। शिक्षा से सम्बन्धित विकास के क्षेत्र निम्नानुसार हैं–

1) सामाजिक विकास,
2) आर्थिक विकास,
3) महिला शिक्षा,
4) वयस्क शिक्षा,
5) पर्यावरण शिक्षा

सामाजिक विकास (Social Development)

सामाजिक विकास एक ऐसा परिवर्तन है जो व्यक्ति की परिपक्व होता है और जिसमें स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित व्यवहार धीरें–धीरे सामाजिक नियमों एवं मानदण्डों के अनुरूप परिवर्तित होता है। इस तरह के परिवर्तन सहकर्मी, लोकप्रियता, समुदाय, सामाजिक सन्दर्भ इत्यादि से प्रभावित होते हैं।

सामाजिक विकास मनुष्यों पर निवेश को अत्यधिक महत्त्व देता है। इन निवेशों में शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण आदि को प्रमुखता दी जाती है। सामाजिक विकास का लक्ष्य लोगों का समग्र विकास है। सामाजिक विकास अन्तर–क्षेत्रीय, अन्तर–अनुशासनिक तथा सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए संस्थागत एवं संरचनात्मक सुधार है। सामाजिक विकास समाज द्वारा आनन्दित जीवन की गुणवत्ता एवं प्रगतिशील सुधारों को सन्दर्भित करता है। इस सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किए हैं। ये मत निम्नलिखित हैं–

अमर्त्य सेन के अनुसार, (1995) "सामाजिक विकास सामाजिक अवसरों की समानता है।"

हरलॉक (Hurlock) के अनुसार, "सामाजिक विकास सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता प्राप्त करना है।"

सामाजिक विकास के उद्देश्य (Aims of Social Development)

सामाजिक विकास के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1) एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना।
2) अभावग्रस्त (भूख, बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति) समाज के निर्माण को प्रोत्साहन देना।
3) क्षेत्रीय असन्तुलन और ग्रामीण–शहरी समानता को दूर करना।
4) बुनियादी ढाँचे के निर्माण को बढ़ावा देना।
5) समाज के गरीब, कमजोर एवं असहाय लोगों की सहायता करना।

शिक्षा एवं सामाजिक विकास (Education and Social Development)

समाज में बच्चों के समाजीकरण में शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा की भूमिका को निम्नलिखित तथ्यों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

1) **शिक्षा मानव की एक बुनियादी आवश्यकता के रूप में (Education as a Basic Human Need)**–शिक्षा को एक बुनियादी मानव की आवश्यकता के रूप में माना गया क्योंकि वह युवाओं एवं वयस्कों को, समाजीकरण का साधन प्रदान करती है। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति भोजन, पानी, आश्रय एवं स्वास्थ्य, देखभाल जैसी जरूरतों को पूरा करता है।
2) **शिक्षा मानव अधिकार के रूप में (Education as a Human Right)**–मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (1948) और उसके पश्चात् की संधियों को शिक्षा के माध्यम से ही समझा जा सका। बाल अधिकारों एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को शिक्षा के माध्यम से ही स्थापित किया गया तथा लोगों में जागरूकता लाई गई।
3) **सभी के लिए शिक्षा (Education for All)**–सभी के लिए शिक्षा कार्यक्रम को 1990 में शुरू किया गया। इसके उद्देश्यों के अनुसार समाज के प्रत्येक नागरिक को शिक्षा का लाभ दिया जाए। इसके साथ ही ये कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध था जैसे– बचपन की देखभाल, गुणवत्ता युक्त मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा, वयस्क साक्षरता में वृद्धि, लिंग असमानता को समाप्त करना आदि।

शिक्षा एवं सामाजिक विकास के बीच सम्बन्ध (Relation between Education and Social Development)

शिक्षा एवं सामाजिक विकास के बीच सम्बन्ध को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

1) वर्तमान पूँजीवादी दुनिया में अर्थशास्त्रियों ने विकास को आर्थिक संवृद्धि एवं विविधीकरण के रूप में परिभाषित किया है।
2) समाजशास्त्री विकास के अन्तर्गत गरीबी, असमानता, सामाजिक संस्थानों, संस्कृति इत्यादि को सम्मिलित करने पर बल देते हैं।
3) मानववादी लोगों के बेहतर रहन–सहन को महत्त्व देते हैं।
4) पर्यावरणविद् सतत् विकास को सामाजिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं।
5) स्वास्थ्य, पोषण, पर्यावरण, रोजगार, राजनैतिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता को सामाजिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

आर्थिक विकास (Economic Development)

साधारणतः आर्थिक विकास प्रायः संघीय राज्य और स्थानीय सरकारों का ध्यान केन्द्रित होता है ताकि नौकरियों के माध्यम से हमारे जीवन स्तर में सुधार नवाचार और नए विचारों का समर्थन, उच्च सम्पत्ति का सृजन एवं जीवन की समग्रह गुणवत्ता का सृजन हो सके। अतः आर्थिक विकास देशों, प्रदेशों या समुदायों को उनके निवासियों की भलाई एवं आर्थिक सम्पत्ति का विकास है।

एक नीतिगत परिप्रेक्ष्य के रूप में आर्थिक विकास को उन प्रयासों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो एक समुदाय के लिए रोजगार एवं आय कर के समर्थन के आधार पर उनके आर्थिक कल्याण एवं जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना चाहता है।

मेयर के अनुसार–"आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय लम्बी अवधि हेतु बढ़ जाती है।"

According to Meier, "Economic development is a process whereby an economy's real national incomes increase over a long period of time."

Scanned by CamScanner

किंडल बर्गर के अनुसार– "आर्थिक विकास, तकनीकी और संस्थागत व्यवस्थाओं में अधिक उत्पादन एवं परिवर्तन दोनों पर निर्भर करता है, जिसके द्वारा इसका उत्पादन एवं वितरण किया जाता है।

According to Kindle Berger, "Economic development relies both on more output and changes in technical and institutional arrangements by which it is produced and distributed."

आर्थिक विकास के उद्देश्य (Objectives of Economic Development)

आर्थिक विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1) **पूर्ण रोजगार (Full Employment)**–अधिकांश सरकारें पूर्ण रोजगार प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग काम करने में सक्षम एवं इच्छुक हैं वे रोज़गार पा सकते हैं। बेशक, प्रत्येक व्यक्ति न तो कार्य करना चाहता है और न ही कार्य में सक्षम होता है ऐसे व्यक्तियों को आर्थिक रूप से निष्क्रिय कहा जाता है तथा श्रमिक बल में उन पर निर्भर होते हैं।

2) **मूल्य स्थिरता (Price Stability)**–सरकार मूल्य स्थिरता हेतु प्रयास करती है क्योंकि यह अधिक से अधिक निश्चितता सुनिश्चित करता है और देश के उत्पादों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा को रोकता है। इसके माध्यम से फर्मों, घरों और श्रमिकों को ऐसे तरीके से कार्य नहीं करना चाहिए जिससे भविष्य में कीमतें बढ़ जाएँ।

3) **आर्थिक विकास (Economic Development)**–जब कोई अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास का अनुभव करती है तो उसके उत्पादन में अल्पावधि में वृद्धि होती है। इसे कभी–कभी वास्तविक आर्थिक विकास के रूप में जाना जाता है। अर्थव्यवस्था के विकास को बनाए रखने के लिए, अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होनी चाहिए इसे मात्रा या उत्पादन के कारकों की गुणवत्ता के परिणामस्वरूप प्राप्त की जा सकती है।

4) **आय का पुनर्वितरण (Re-distribution of Income)**–एक सरकार अमीर से गरीबों तक आय को पुनर्वितरित करने का प्रयत्न कर सकती है। जितना किसी व्यक्ति के पास पैसा होता है वे उतना ही किसी इकाई की कम सराहना कर सकते हैं।

5) **भुगतान स्थिरता का सन्तुलन (Balance of Payment Stability)**–लंबे समय से अधिकतर सरकारें अपने निर्यात के मूल्य को अपने आयात के मूल्य के समान मानती हैं। यदि आयात पर खर्च लम्बे समय तक निर्यात से राजस्व से अधिक हो जाता है तो देश अपने साधनों से लाभ नहीं ले पाएगा तथा कर्ज में आ जाएगा। अगर निर्यात राजस्व आयात व्यय से अधिक है तो देश के निवासियों को यथासम्भव कई उत्पादों का लाभ नहीं मिल पाएगा।

आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका (Role of Education in Economic Development)

आर्थिक विकास में शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है–

1) **प्रशिक्षण एवं विकासशील कौशल (Training and Developing Skill)**–देश की कार्यक्षमता की संरचना और प्रभावशीलता में शिक्षा की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा उचित अन्तर्दृष्टि विकसित करती है अतः यह सभी व्यवसायों हेतु आवश्यक होती है। आर्थिक एवं उत्पादन गतिविधियों के विस्तार के कारण शिक्षित लोगों की योजना पर्यवेक्षण, डिजाइन–बिक्री, निर्माण और प्रशासन की अधिक आवश्यकता होती है। किसान कॉल सेन्टर, सहकारी समितियों, बैंकों एवं अन्य अनेक स्थानों पर विभिन्न पदों को भरने के लिए अधिक से अधिक शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अतः शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्तियों को शिक्षित एवं प्रशिक्षित किया जा सकता है जिससे देश के आर्थिक विकास में वृद्धि होती है।

2) **व्यक्तियों का विकास (Development of People)**–शिक्षा के कई अप्रत्यक्ष प्रभाव हैं क्योंकि इससे जनसंख्या की पहल और आविष्कार का स्तर बढ़ सकता है। इससे उपभोग स्तर बेहतर हो सकता है तथा आर्थिक और सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दे सकता है। शैक्षिक प्रणाली भी ऐसे चयन के एक उपकरण के रूप में कर सकते हैं जिसके माध्यम से एक समाज अपने प्रशासकों, नेताओं, तकनीशियनों और उद्यमियों को प्राप्त कर सकता है तथा अपने गुणवत्ता मानकों को बढ़ा सकता है।

3) **शिक्षा का व्यावसायीकरण (Commercialisation of Education)**– हमारे देश के शिक्षित व्यक्ति साधारण तथा हाथों का पूर्ण प्रयोग करने के इच्छुक नहीं होते हैं। सामान्य शिक्षा का उत्पादन कार्य के साथ सम्बन्ध होना चाहिए। अतः शिक्षा को व्यावसायीकरण से जोड़कर देश के आर्थिक विकास में वृद्धि की जा सकती है।

4) **ज्ञान का उपयोग (Use of Knowledge)**– शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर जैसे खेत, कार्यशाला, कारखाने आदि में ज्ञान के उपयोग पर अत्यन्त जोर दिया जाना चाहिए।

5) **सामान्य शिक्षा और तकनीकी शिक्षा (General Education and Technical Education)**–शिक्षा की भूमिका इस तथ्य के रूप में है कि यह राष्ट्रीय लेखा में एक सामाजिक वस्तु के रूप में तथा उपभोग के एक भाग के रूप में इसे आर्थिक निवेश के रूप में माना जाता है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने सामान्य शिक्षा के रूप में उपभोग और तकनीकी शिक्षा में निवेश के रूप में उत्पादक के रूप में व्यय के बीच अन्तर करने का प्रयास किया है।

6) **लम्बी अवधि के रिटर्न (Returns of Long Period)**–प्राप्त होने के लिए शिक्षा के लिए अपेक्षिक दीर्घकालिक अवधि अपेक्षाकृत अधिक है हालांकि, अधिकांश भौतिक पूँजी की तुलना में इसकी अप्रचलने की दर कम है। उदाहरण के लिए, शिक्षण विधियों और पाठ्यक्रम के अस्थायी समायोजन उन युवाओं को विशेष प्रशिक्षण प्रदान कर सकते हैं। परन्तु इस प्रकार की अल्पकालिक उपज का आकर्षक एवं अपने मूल दीर्घकालिक कार्यकलाओं की उपेक्षा नहीं होना चाहिए क्योंकि शिक्षा की गुणवत्ता एवं मात्रा को ध्यान में रखना आवश्यक है तभी यह दीर्घकालिक रिटर्न दे सकती है।

यह परिवर्तन ही शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित करते हैं। भारत के विषय में समय तो हमें प्राप्त होगा कि स्वतन्त्रता पूर्व धार्मिक मान्यताओं के कारण विधवा–विवाह निषेध था जिससे स्त्री–शिक्षा भी निषेध थी। राजाराम मोहन राय तथा अन्य सामाजिक चिंतकों के कारण धार्मिक मान्यता में

Scanned by CamScanner

परिवर्तन आया और कालान्तर में विधवा विवाह के साथ–साथ स्त्री शिक्षा एवं सह–शिक्षा जैसे परिवर्तन शिक्षा के क्षेत्र में दृष्टिगत हुए। वर्तमान में पुनः भारत की संस्कृति अपने आध्यात्मवाद से हटकर भौतिकता की ओर बढ़ रही है जिसके फलस्वरूप पुनः परिवर्तन हो रहे हैं।

प्रश्न 4– स्त्री–शिक्षा की अवधारणा स्पष्ट कीजिए। स्त्री–शिक्षा की आवश्यकता बताइए। महिलाओं की शिक्षा के लिए विभिन्न आयोगों और समितियों द्वारा दिए गए सुझाव लिखिए।

Explain the concept of Women Education. Write the need of Women Education. For the education of women, write the suggestions given by various commissions and committees.

उत्तर– स्त्री–शिक्षा (Women Education)

स्त्री शिक्षा, स्त्री एवं शिक्षा को अनिवार्य रूप से जोड़ने वाली अवधारणा है। इसका एक रूप शिक्षा में स्त्री को पुरुषों की ही तरह शामिल करने से संबंधित है। दूसरे रूप में यह स्त्री के लिए बनाई गई विशेष शिक्षा पद्धति को संदर्भित करती है। भारत में मध्य और पुनर्जागरण काल के दौरान स्त्री को पुरुषों से अलग तरह की शिक्षा देने की धारणा विकसित हुई थी। वर्तमान दौर में यह बात सर्वमान्य है की स्त्री को भी उतना शिक्षित होना चाहिए जितना पुरुष को। यह सिद्ध सत्य है कि यदि माता शिक्षित न होगी तो देश की सन्तानों का कदापि कल्याण नहीं हो सकता।

स्त्री–शिक्षा के विषय में विभिन्न मत दो रूपों में वर्णित है जो इस प्रकार हैं–

1) **रूढ़िवादी मत**–हमारा समाज आज भी स्त्री–शिक्षा के विषय में अलग–अलग मत रखता है। जो व्यक्ति रूढ़िवादी हैं, उनका मानना है कि बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा में अन्तर होना चाहिए। बालिकाओं को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए जिससे वे अपने परिवार की देखभाल कर सकें। परिवार के सदस्यों के लिए भोजन की व्यवस्था करें, अपने बालकों की देखभाल उचित प्रकार से करें, जिससे पारिवारिक जीवन में शान्ति रहे। उनका मानना है कि बालिकाओं को केवल भाषा, धर्म, साहित्य, गृह विज्ञान, कला, संगीत तथा नृत्य की शिक्षा ही प्रदान की जाए।

2) **प्रगतिशील या आधुनिक मत**–जो व्यक्ति प्रगतिशील हैं, वे बालक तथा बालिकाओं में किसी प्रकार का अन्तर नहीं करते। उनका मानना है कि स्त्री को घर की चहारदीवारी में बन्द रखना, उनका शोषण है। पुरुष और स्त्री दोनों को ही शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार है। जब पाश्चात्य देशों में स्त्री–पुरुष में कोई अन्तर नहीं है तो भारत में ही इस अन्तर को क्यों माना जाए? उनका मानना है कि स्त्री, शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने उत्तरदायित्वों का और कुशलता से निर्वाह करती है। वह हर क्षेत्र में पुरुषों से कंधे सें कंधा मिलाकर चलती है और आधुनिक समाज की यही आवश्यकता है। लोकतन्त्र बालक तथा बालिकाओं, किसी में भी कोई भेद करने की शिक्षा नहीं देता। दोनों के लिए समान अधिकार प्रदान करता है।

स्त्री शिक्षा की आवश्यकता (Need of Women Education)

किसी भी समाज या राष्ट्र में स्त्री–पुरुष दोनों की शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। शिक्षा के अभाव में किसी भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता है।

1) **मानवाधिकारों की रक्षा के लिए**–आज विश्व का प्रत्येक प्राणी मानवाधिकार के प्रति सचेत है। मानवीय दृष्टि से स्त्री–पुरुष में किसी प्रकार का भेद नहीं होना चाहिए, उन्हें अपने–अपने विकास के समान अधिकार तथा समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। ऐसा तभी सम्भव है जब स्त्री–पुरुष दोनों को शिक्षा के समान अवसर दिए जाए।

2) **समाज के उत्थान के लिए**–जब हम समाज की बात करते हैं तो उसमें समाज के अन्तर्गत आने वाले सभी सामाजिक समूह शामिल होते हैं। परिवार सबसे छोटा एवं मूलभूत सामाजिक समूह होता है। इसके उत्थान में स्त्री–पुरुष दोनों की समान भूमिका होती है। हम सभी जानते है कि, शिक्षित समाज के रहन–सहन एवं खान–पान की विधियाँ एवं उनके व्यवहार प्रतिमान अशिक्षित समाज से उच्च होते हैं– श्रेष्ठ होते हैं। हमारे देश में स्त्रियाँ इस मार्ग में बड़ी बाधक हैं। अशिक्षित होने के कारण वे रुढ़ियों कुरीतियों अन्धविश्वासों एवं भय से ग्रसित है। यदि हमें भारतीय समाज का उत्थान करना हैं तो सर्वप्रथम हमें अपने देश की समस्त स्त्रियों को शिक्षित करना होगा।

3) **परिवार के उत्थान के लिए**–स्त्री किसी भी परिवार की धुरी होती है। स्त्रियों पर शिशुओं के लालन–पालन एवं उनकी शिक्षा तथा गृहस्थ जीवन के चलाने की पूरी जिम्मेदारी होती है। इन समस्त उत्तरदायित्वों के कुशलतापूर्वक निर्वहन के लिए उनको शिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है। माँ ही बालक की पहली शिक्षिका होती है। अतः एक स्त्री की शिक्षा का अर्थ है एक परिवार की शिक्षा। माँ शिक्षित होगी तो बालक शिक्षित होंगे, पूरा परिवार शिक्षित होगा। जिस परिवार के सभी सदस्य शिक्षित होंगे उस परिवार का उत्थान होगा।

4) **लोकतन्त्र की रक्षा के लिए**–हमारे देश भारत का लोकतन्त्र छः मूल सिद्धान्तों पर आधारित हैं– स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता एवं न्याय। उचित शिक्षा के अभाव में इन सिद्धान्तों का लोगों को स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता है। अतः शिक्षा लोकतन्त्र की रीढ़ की हड्डी है, इसके अभाव में लोकतन्त्र सफल नहीं हो सकता है।

5) **संस्कृति के संरक्षण एवं उसके विकास के लिए**–बालक के पालने से ही संस्कृति की शिक्षा प्रारम्भ हो जाती है। ऐसे में यदि माताओं को ही अपनी संस्कृति का स्पष्ट ज्ञान नहीं होगा तो वे अपने बालकों को संस्कृति का ज्ञान कैसे करा सकती है। संस्कृति के मूल तत्वों को सुरक्षित ही नहीं रख सकती है तो उनमें विकास तो बहुत दूर की बात है। शिक्षा के अभाव में वे अच्छे व बुरे में भेद नहीं कर पाती है, परिणामस्वरूप वे बुराइयों को दूर नहीं कर पा रही हैं और न ही अच्छाइयों का विकास ही कर पा रही हैं अतः संस्कृति के संरक्षण एवं उसके विकास के लिए स्त्री शिक्षा की आवश्यकता है।

6) **राष्ट्र के विकास के लिए**–प्राकृतिक, संसाधन एवं मानव संसाधन, इन्हीं दोनों तत्वों पर प्रत्येक राष्ट्र का विकास निर्भर करता है। प्राकृतिक संसाधन तो प्रकृति प्रदत्त हैं

Scanned by CamScanner

किन्तु मानव संसाधन का विकास शिक्षा पर निर्भर करता है। अतः प्रत्येक राष्ट्र के विकास के लिए स्त्री–पुरुष दोनों के लिए ही शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता व महत्त्व है।

7) **आर्थिक विकास के लिए**–शोधों के परिणाम यह बताते हैं कि अशिक्षित व्यक्ति की तुलना में शिक्षित व्यक्ति की कार्यकुशलता एवं कार्य क्षमता दोनों ही अधिक होती हैं इस विषय में तथ्य यह है कि वह व्यवसाय एवं उत्पादन के क्षेत्र में अधिक सफल होता है, अतः इस दृष्टि से भी स्त्री एवं पुरुष सभी के आर्थिक विकास के लिए राष्ट्र को आज इस नारी शक्ति को शिक्षित करना आवश्यक है साथ ही व्यवसाय एवं उत्पादन के क्षेत्र में प्रशिक्षित करना आवश्यक है।

महिला शिक्षा के लिए प्रमुख सिफारिशें (Major Recommendations for Women Education)

भारत जब स्वतन्त्र हुआ उस समय भारत में स्त्री–शिक्षा की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। स्त्री–शिक्षा का क्षेत्र विकास से अछूता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन उच्च शिक्षा के विषय में सोचने–समझने के लिए किया गया। इस आयोग ने उच्च शिक्षा के साथ–साथ स्त्री–शिक्षा की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी सुझाव दिए। 1950 में भारत का संविधान लागू हुआ। इस संविधान में भी बालकों तथा स्त्री–शिक्षा के क्षेत्र में कोई बाधा उत्पन्न न हो, ऐसी व्यवस्था करने के लिए कहा गया। सरकार ने संविधान लागू होने के बाद बालिकाओं की शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार सम्बन्धी कार्य करने शुरू कर दिए।

अतः स्वतन्त्र भारत में महिलाओं की शिक्षा में सुदृढ़ता लाने के लिए कई आयोगों और समितियों का समय–समय पर गठन किया गया है जिन्होंने महिलाओं की औपचारिक शिक्षा के लिए अलग–अलग सुझाव दिए हैं–

1) **विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग,1948–49 (University Education Commission)**– स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन एवं सुधार की शुरूआत हुई। अतः भारत सरकार का ध्यान तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था पर भी गया और इस क्षेत्र में भी सुधार की प्रक्रिया शुरू हुई। सबसे पहला ध्यान तत्कालीन उच्च शिक्षा पर गया, उस समय उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही थी। शिक्षा का स्तर निम्न था। शिक्षा में सैद्धान्तिक पक्ष को अधिक व व्यावहारिक पक्ष को कम महत्त्व दिया जा रहा था। उच्च शिक्षा देश की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ थी।

   उच्च शिक्षा की तत्कालीन कमियों से अवगत होने के कारण **"अन्तरविश्वविद्यालय शिक्षा परिषद"** और **"केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड"** ने भारत सरकार के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि वह एक अखिल भारतीय विश्वविद्यालय आयोग का गठन करे जो उच्च शिक्षा में सुधार के लिए सुझाव दे। सरकार ने इस प्रस्ताव को मानते हुए 4 नवम्बर 1948 को **"विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग"** का गठन किया।

   इस आयोग के अध्यक्ष **डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्** थे। इसलिए इन्हीं के नाम पर इसे **"राधाकृष्णन आयोग"** भी कहा जाता है। यह स्वतन्त्र भारत का पहला आयोग था तथा इसमें डॉ. ताराचन्द, डॉ. जाकिर हुसैन, डॉ. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर, डॉ. मेघनाद शाह, डॉ. आर्थर ई. मार्गन, सर जेम्स एफ. डफ, डॉ. कर्मनारायण बहल, श्री एन.के. मुख्य सदस्य थे।

   इस आयोग ने स्त्री शिक्षा की उन्नति हेतु सुझाव दिए–

   i) विद्यालय मूलतः सभी बालक–बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करने के लिए स्थापित हुए हैं इनमें बालिकाओं के जीवन सम्बन्धी सामान्य सुविधाओं की व्यवस्था होनी चाहिए।
   ii) बालिकाओं हेतु शिक्षा के अवसरों में वृद्धि की जानी चाहिए।
   iii) बालिकाओं हेतु प्रशिक्षित तथा सुयोग्य शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।
   iv) बालक तथा बालिकाओं के लिए अलग–अलग आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षण कार्यक्रम होना चाहिए।
   v) गृह अर्थशास्त्र तथा गृह प्रबन्ध के अध्ययन हेतु बालिकाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए।
   vi) सह शिक्षा संस्थानों में पुरुषों के शिष्टाचार तथा सामाजिक दायित्वों पर बल प्रदान करना चाहिए।
   vii) महिला तथा पुरुष अध्यापकों को समान वेतन देना चाहिए।

2) **माध्यमिक शिक्षा आयोग,1952–53 (Secondary Education Commission)**–सन् 1948 में "केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड" ने सरकार को यह सुझाव दिया था कि माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन करने हेतु एक आयोग का गठन किया जाए जो माध्यमिक शिक्षा के विषय में अपने सुझाव दे। जनवरी, 1951 में "केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड" ने अपने सुझाव को पुनः दोहराया। बोर्ड के सुझाव को मानकर सरकार ने 23 सितम्बर, 1952 में "माध्यमिक शिक्षा आयोग" का गठन किया। इसके अध्यक्ष मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति **डॉ. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर** थे जो विश्वविद्यालय आयोग के सदस्य भी रह चुके थे। इस आयोग के अध्यक्ष के नाम पर **"माध्यमिक शिक्षा आयोग"** को **"मुदालियर आयोग"** के नाम से भी जाना जाता है।

   आयोग के अन्य सदस्यों में श्रीमती हंसा मेहता, डॉ. कालू लाल, श्री के.जी. सैय्यदेन, जॉन क्रिस्टी, डॉ. केनेथ रस्ट, श्री जे.ए. तारापुरवाला, डॉ. ए.एन. बसु, श्री एम.टी. व्यास आदि थे।

   इस आयोग ने महिलाओं की शिक्षा के लिए निम्न सुझाव दिए–

   i) बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।
   ii) बालिकाओं के लिए गृह विज्ञान शिक्षण की अनिवार्य रूप से व्यवस्था करना।
   iii) माँग के अनुरूप बालिकाओं हेतु पृथक विद्यालयों की स्थापना।
   iv) बालिकाओं तथा महिला अध्यापिकाओं के लिए सहशिक्षा संस्थाओं में अनुकूल स्थितियों का निर्माण।
   v) जहाँ बालिका विद्यालय खोलना सम्भव न हो वहाँ सहशिक्षा की स्वीकृति प्रदान की जाए।
   vi) बालकों के समान बालिकाओं को भी किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार हो।

Scanned by CamScanner

3) **राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति,1958–59 (National Committee on Women Education)–श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख** की अध्यक्षता में 1958 में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति का गठन किया गया। इस समिति को **देशमुख समिति** के नाम से भी जाना जाता है। समिति का मुख्य कार्य स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का समाधान करने हेतु अपने सुझाव देने थे।

अतः समिति ने फरवरी, 1959 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें निम्न सुझाव दिए–

i) स्त्रियों तथा पुरुषों की शिक्षा में व्याप्त असमानता को समाप्त करना।
ii) राष्ट्रीय नारी शिक्षा परिषद की स्थापना का सुझाव।
iii) प्रान्तीय सरकारों द्वारा प्रान्तीय नगरीय शिक्षा परिषदों की स्थापना विषयी सुझाव।
iv) योजना आयोग द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं हेतु नारी शक्ति की आवश्यकताओं का अनुमान।
v) अर्द्धसरकारी संगठनों, स्थानीय संस्थाओं, ऐच्छिक संगठनों अध्यापक संगठनों तथा जनता आदि सभी के सहयोग की प्राप्ति।
vi) सन् 1976 तक 6 से 11 आयुवर्ग की लड़कियों तथा सन् 1981 तक 11–14 आयु वर्ग की बालिकाओं हेतु सार्वजनिक दाखिले हेतु प्रयत्न किए जाने चाहिए।
vii) छात्रावास, प्रयोगशालाओं तथा पुस्तकालय आदि की स्थापना करने में ऐच्छिक संगठनों की सहायता प्राप्त करना।
viii) नारी शिक्षा सम्बन्धी फिल्मों के निर्माण द्वारा उन्हें प्रदर्शित करके नारी शिक्षा के प्रचार कार्यक्रम को सशक्त बनाना।
ix) केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा प्रौढ़ नारियों के लिए आरम्भ किए गए संयुक्त पाठ्यक्रमों को सशक्त बनाना।
x) स्त्री शिक्षा में हो रहे विभिन्न प्रयासों को प्रोत्साहित करना।
xi) विद्यालय के विभिन्न स्तरों पर बालिकाओं हेतु अधिक से अधिक छात्रवृत्तियाँ और उनकी निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था।
xii) बालिकाओं हेतु पृथक विद्यालयों की व्यवस्था।
xiii) सह–शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना जहाँ पृथक विद्यालयों की व्यवस्था नहीं है।
xiv) बालिकाओं हेतु तकनीकी संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए जिससे सरकार को उनके लिए शत–प्रतिशत अनुदान प्रदान किया जाना चाहिए।
xv) पिछड़े हुए देहाती तथा पहाड़ी क्षेत्रों की बालिकाओं हेतु निःशुल्क आवागमन, निःशुल्क छात्रावास तथा अध्यापिकाओं को विशेष भत्ता प्रदान करना।

4) **राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद,1962 (National Council of Womens Education)**–शिक्षा के सभी स्तरों पर बालिकाओं हेतु पाठ्यक्रमों का परीक्षण के पश्चात् **राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद** की नियुक्ति श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में की गई। समिति का मुख्य कार्य विद्यालय स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का समाधान करना था। समिति ने स्त्री शिक्षा के उन्नयन हेतु निम्न सुझाव दिए–

i) बालकों व बालिकाओं हेतु पाठ्यक्रम अलग–अलग नहीं होने चाहिए।
ii) प्रायः सामाजिक वातावरण के कारण प्राथमिक विद्यालय में बालकों तथा बालिकाओं हेतु कार्य विभाजन अलग–अलग रूप से न करके उन्हें समान रूप से कार्य वितरण करना चाहिए।
iii) 14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना देश का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। बालक तथा बालिकाओं हेतु सामान्य पाठ्यक्रमों की स्थापना होनी चाहिए।
iv) लैंगिक आधार पर पाठ्यक्रम में भेदभाव नहीं होना चाहिए।
v) माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् व्यावसायिक शिक्षा की तैयारी के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए जाने चाहिए।
vi) माध्यमिक शिक्षा विद्यालयों में बालिकाओं के लिए अधिक से अधिक सुविधाओं की व्यवस्था होनी चाहिए, जैसे–
   a) सहशिक्षा संस्थाओं में अध्यापिकाओं की नियुक्ति और
   b) बालिकाओं हेतु पृथक विद्यालयों की स्थापना।
vii) बालिकाओं हेतु अपने घर से दूर विद्यालय जाने हेतु परिवहन का प्रबन्ध करना।
viii) माध्यमिक शिक्षा विद्यालयों में मिश्रित स्टाफ की व्यवस्था।
ix) सभी माध्यमिक शिक्षा विद्यालयों में स्थानीय स्थितियों के अनुकूल शिल्प निर्माण की व्यवस्था होनी चाहिए।
x) प्रारम्भिक स्तर पर सहशिक्षा का ही सामान्य ढाँचा अपनाना चाहिए।
xi) सहशिक्षा के प्रति विरोध का सामना करने हेतु सशक्त शिक्षात्मक प्रचार करना चाहिए परन्तु जहाँ अधिक बालिकाओं का दाखिला सम्भव हो, वहाँ लोगों की माँग पर पृथक प्राथमिक तथा माध्यमिक बालिका विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए।
xii) सेकेण्डरी तथा महाविद्यालय स्तर पर प्रबन्धकों द्वारा बालिकाओं हेतु अलग संस्थाएँ स्थापित करनी चाहिए।
xiii) बालकों के महाविद्यालयों में बालिकाओं को भी प्रवेश दिलाना है तो उनमें अध्यापिकाओं की नियुक्ति होनी चाहिए। देश के कुछ भागों में अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं के मध्य विद्यमान खाई को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

5) **भक्त वत्सलम समिति,1963 (Bhaktavatsalam Committee)**–राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद द्वारा मई 1963 में मद्रास के तत्कालीन मुख्यमन्त्री भक्त वत्सलम की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गई जिसका लक्ष्य बालिकाओं की शिक्षा के लिए जनता के समर्थन के अभाव के कारणों को विशेषतः गाँवों में खोजना तथा सार्वजनिक सहयोग को प्राप्त करने के उपाय बताना था। समिति ने स्त्री शिक्षा की उन्नति हेतु सुझाव निम्न प्रकार दिए–

i) इच्छुक तथा सुशिक्षित जनता के द्वारा ही शिक्षा की प्रगति सम्भव है।
ii) निम्नलिखित क्षेत्रों में जनता द्वारा सीधे सहयोग से प्रगति की जानी चाहिए–
   a) निजी विद्यालयों की स्थापना द्वारा,
   b) विद्यालय भवनों के निर्माण द्वारा,
   c) विद्यालय भवनों के निर्माण हेतु ऐच्छिक श्रमदान,

Scanned by CamScanner

d) विद्यालय भवनों को ठीक–ठाक रखने में सहायता की प्राप्ति,
e) अध्यापकों तथा विद्यार्थियों हेतु उचित आवासों की व्यवस्था,
f) प्राथमिक स्तर पर सह–शिक्षा को लोकप्रिय बनाना,
g) शिक्षण व्यवसाय के प्रति जनता में सम्मान की भावना उत्पन्न करना, तथा
h) स्त्रियों में शिक्षण व्यवसाय के प्रति लोकप्रियता हेतु आवश्यक प्रचार कार्य करना।

iii) स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में व्याप्त संकीर्णताओं को दूर करने हेतु आयोजित–शिक्षात्मक कार्यक्रमों में भाग लेना।
iv) गरीब छात्रों के लिए मध्याह्न भोजन, गणवेश (वर्दी), पाठ्यपुस्तकें तथा लेखन सामग्री की व्यवस्था करना।

6) **भारतीय शिक्षा आयोग,1964–66 (Indian Education Commission)**–14 जुलाई, 1964 को **"भारतीय शिक्षा आयोग"** का गठन किया। इस आयोग के अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो. **डी.एस. कोठारी** थे। इसलिए इसं आयोग को अध्यक्ष के नाम पर **"कोठारी आयोग"** भी कहा जाता है। आयोग के अन्य सदस्यों में श्री पी.एन. कृपाल, श्री एच.एल. एलविन, प्रो. सतदोशी इहारा, श्री आर.ए. गोपालस्वामी, डॉ. वी.एस. झा, डॉ. बी.पी. पाल, डॉ. त्रिगुण सेन, प्रो. एस.ए. सूमोवस्की, श्री एम. जीन थॉमस, श्री जे.पी. नायक, श्री जे.एफ. मैक्डूंगल आदि थे।

आयोग ने स्त्री शिक्षा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "हमारे मानव–साधनों के पूर्ण विकास, परिवारों की उन्नति एवं बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए स्त्रियों की शिक्षा का महत्त्व पुरुषों की शिक्षा से अधिक है।"

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए–
i) बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा का अधिक से अधिक विस्तार किया जाए।
ii) माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के विस्तार की गति तीव्र कर दी जाए।
iii) बालिकाओं के लिए अलग विद्यालयों एवं छात्रावासों की व्यवस्था की जाए।
iv) बालिकाओं के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाए।
v) गृह–विज्ञान एवं सामाजिक कार्य के पाठ्य–विषयों का विस्तार किया जाए।
vi) एक या दो विश्वविद्यालयों में स्त्री–शिक्षा से सम्बन्धित "अनुसन्धान इकाइयों" (Research Units) की स्थापना की जाए।
vii) स्त्रियों को कला, विज्ञान, मानवशास्त्र, तकनीकी आदि विषयों के अध्ययन के चुनाव की सुविधा प्रदान की जाए।
viii) स्त्रियों के लिए अलग से स्नातकोत्तर महाविद्यालयों की व्यवस्था की जाए।

7) **राष्ट्रीय शिक्षा नीति,1986 (National Education Policy)**–प्रधानमन्त्री बनते ही राजीव गाँधी ने प्रत्येक क्षेत्र में सुधार के लिए प्रयास करने शुरू कर दिए। शिक्षा के क्षेत्र में भी सुधार करने के लिए सरकार ने तत्कालीन शिक्षा का सर्वेक्षण कराया। इस सर्वेक्षण के आधार पर जो सुझाव प्राप्त हुए, उनके आधार पर केन्द्रीय सरकार ने एक नई शिक्षा नीति तैयार की और इसे संसद में पेश किया। संसद में पास होने के बाद मई 1986 में इसे प्रकाशित किया गया तथा इसकी कार्ययोजना को भी प्रकाशित किया गया। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 पहली नीति है जिसमें नीति के साथ–साथ उसको पूरा करने की योजना भी प्रस्तुत की गई है।

महिलाओं को शैक्षिक अवसर प्रदान करने तथा स्त्री–शिक्षा में समानता के लिए निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए गए–
i) बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं किया जाएगा।
ii) स्त्री–शिक्षा के विकास के लिए प्रयत्न किए जाएंगे।
iii) बालिकाओं को विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।
iv) व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने के लिए बालिकाओं को विशेष सुविधा दी जाएगी।

8) **आचार्य राममूर्ति समिति (1990) (Acharaya Ram Murti Committee)**–आचार्य राममूर्ति समिति ने इस हेतु निम्न सुझाव दिए–
i) शिशु देखभाल तथा शिक्षा केन्द्र प्राथमिक विद्यालयों के समीप स्थापित किए जाए।
ii) कक्षा 1 से 3 तक का पाठ्यक्रम शिशु शिक्षा केन्द्रों के अनुकूल बनाया जाए।
iii) आँगनबाड़ी कार्यकर्ताओं तथा विद्यालय शिक्षकों में समन्वय स्थापित किया जाए।
iv) 300 छात्राओं पर प्राथमिक विद्यालय एवं 500 छात्राओं पर एक जूनियर हाईस्कूल स्थापित किए जाएं।
v) योग्य छात्राओं को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाएं।
vi) योग्य छात्राओं को यूनिफॉर्म एवं पाठ्य–पुस्तकें निःशुल्क प्रदान की जाएं।
vii) महिला शिक्षिकाओं की संख्या बढ़ाई जाए।
viii) छात्राओं को आवासीय विद्यालयों की सुविधा प्रदान की जाए।
ix) उच्च शिक्षा में बालिकाओं को व्यावसायिक शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
x) छात्राओं के विद्यालय आने–जाने के लिए परिवहन की व्यवस्था की जाए।

प्रश्न 5– प्रौढ़ शिक्षा की अवधारणा स्पष्ट कीजिए। प्रौढ़ शिक्षा की विशेषताएँ एवं समस्याएँ लिखिए।
Explain the concept of Adult Education. Write the Characteristics and Problems of Adult Education.

उत्तर– प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education)

भारत में प्रौढ़ शिक्षा की अवधारणा यूरोपियनों की देन है। यूरोपियनों ने जब अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को प्रसारित करना आरम्भ किया तो उन्हीं में से एक विचार प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी भी था। चूँकि उस समय नगरों में निवास करने वाले प्रौढ़ों में भी अपनी भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि करने हेतु ज्ञान प्राप्ति की इच्छा प्रबल थी और इसीलिए उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा को सहर्ष स्वीकार किया। उनकी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार से सर्वप्रथम सन् 1882 में 'हण्टर कमीशन' ने सिफारिश की, कि निरक्षर प्रौढ़ के लिए जहाँ–जहाँ सम्भव हो रात्रि विद्यालयों (Night School) की

Scanned by CamScanner

स्थापना की जाए। यद्यपि सरकार ने इस पर कोई निर्णय नहीं लिया। सन् 1920–1947 के मध्य भारतीय शिक्षा मंत्रियों ने प्रौढ़ शिक्षा के लिए उल्लेखनीय कार्य किए।

प्रौढ़ शिक्षा से अभिप्राय उस शिक्षा से है जो वयस्कों को प्रदान की जाती है। इस शिक्षा के बारे में सामान्यतः यह धारणा प्रचलित है कि यह निरक्षर लोगों को साक्षर बनाती है अर्थात् उन्हें पढ़ना, लिखना सिखाती है तथा गणितीय ज्ञान प्रदान करती है। समयानुसार इसकी इस धारणा में परिवर्तन हुआ है और तब इसे व्यापक रूप में देखा जाने लगा है तथा इसके अन्तर्गत परम्परागत ज्ञान के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के कौशलों का ज्ञान प्रदान किया जाने लगा जिससे वह जनतांत्रिक व्यवस्था का विवेकपूर्ण सदस्य बना सके। इसके अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ दी जा रही हैं, जो निम्नलिखित हैं–

ब्राइसन के अनुसार, "प्रौढ़–शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के लिए सब अवसरों पर और सभी परिस्थितियों में शिक्षा है।"

According to Lyman Bryson, "Adult education is education for everybody, at all times and in all conditions."

मॉरगन, होम्स व बन्डी के अनुसार; "प्रौढ़–शिक्षा किसी नई बात को सीखने के लिए प्रौढ़ व्यक्ति द्वारा जानबूझकर किया जाने वाला प्रयास है।"

According to Morgan, Holmes and Bundy, "Adult education may be thought of as the conscious effort of a mature person to learn something new."

प्रौढ़ शिक्षा की विशेषताएँ (Characteristics of Adult Education)

प्रौढ़ शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1) प्रौढ़ शिक्षा समाज के सभी निरक्षर लोगों को उपलब्ध कराई जाती है।
2) प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से लोगों को पुस्तकीय ज्ञान के साथ ही अन्य सामान्य जानकारियाँ भी प्रदान की जाती हैं।
3) प्रौढ़ शिक्षा का सम्बन्ध किसी एक क्षेत्र (Sector) से न होकर विभिन्न क्षेत्रों से होता है।
4) प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य विश्व शान्ति बनाए रखना एवं सर्वकल्याण करना है।
5) मानव की गरिमा को बढ़ाना तथा मानववाद की शिक्षा प्रदान करना।
6) प्रौढ़ शिक्षा बच्चों, युवाओं, प्रौढ़ों तथा वरिष्ठ लोगों के मध्य एक समन्वयपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करती है।
7) प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से देश में निरक्षरों की संख्या को सीमित/समाप्त करना।
8) प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से लोगों को कौशल विकास जैसे कार्यक्रमों से जोड़ना।
9) प्रौढ़ शिक्षा समाज में समानता को बढ़ावा देती है।
10) प्रौढ़ शिक्षा देश के विकास में अहम भूमिका निभाती है।

प्रौढ़ शिक्षा की समस्याएँ (Problems of Adult Education)

प्रौढ़ शिक्षा की कुछ प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं–

1) विद्यालयों की कमी।
2) योग्य शिक्षकों की कमी।
3) अनुपयुक्त पाठ्यक्रम।
4) अनुपयुक्त शिक्षण विधियाँ।
5) धन की कमी।
6) जगरूकता का अभाव।
7) लैंगिक असमानता।
8) अस्वस्थता।
9) गरीबी।
10) रुढ़िवादिता इत्यादि।

प्रश्न 6– पर्यावरणीय शिक्षा से आप क्या समझते हैं? पर्यावरणीय शिक्षा की प्रकृति बताते हुए इसके उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

What do you understand by Environmental Education? Explain the nature of environmental education, highlight its objectives.

उत्तर– पर्यावरणीय शिक्षा (Environmental Education)

जिस प्रकार शिक्षा में व्यक्ति की गुणवत्ता को प्राथमिकता दी जाती है ठीक उसी प्रकार पर्यावरण में वातावरण की गुणवत्ता को प्राथमिकता दी जाती है। पर्यावरण में आंतरिक तथा वाह्य सम्पूर्ण परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है। इसके द्वारा मनुष्य तथा अन्य जीवों की अभिवृद्धि तथा विकास भी प्रभावित होता है। प्रत्येक जीव तथा प्राणी का अपना पर्यावरण होता है। **वाट्सन (Watson)** का मानना है कि वातावरण द्वारा बालक को जैसा चाहें वैसा बनाया जा सकता है। **बर्नार्ड (Bernard)** ने पर्यावरण व शिक्षा के सम्बन्ध को प्रदर्शित करते हुए कहा है कि शिक्षा के विकास की क्रिया का सम्पादन विद्यालय तथा कक्षा के अन्तर्गत होता है। कक्षा के अन्तर्गत शिक्षक तथा छात्रों के मध्य अन्तः क्रिया होती है। शिक्षक, कक्षा में प्रकरण की सहायता से क्रियाएँ करता है, जो शाब्दिक (Verbal) तथा अशाब्दिक (Non-verbal) होती हैं। इससे सामाजिक तथा भावनात्मक वातावरण उत्पन्न होता है। छात्रों को नित नए अनुभव प्राप्त होते हैं तथा उन्हें कुछ करने का अवसर मिलता है जिससे छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन (Expected Behavioural Changes) होता है। अतः स्पष्ट है कि सीखने में वातावरण की अपनी भूमिका है।

शिक्षा के द्वारा ही विविध समस्याओं का अध्ययन तथा समाधान सम्भव है। छात्रों से सम्बन्धित अधिकांश समस्याओं का निराकरण शिक्षा के द्वारा औपचारिक (Formal) तथा अनौपचारिक (Informal) रूप से किया जाता है। जीव तथा पर्यावरण से सम्बन्ध तथा नियन्त्रित करने वाले सिद्धान्तों का वर्णन **'पारिस्थितिकी विज्ञान'** (Ecological Science) में किया जाता है। अतः स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि पर्यावरणीय शिक्षा (Environmental Education), शिक्षा का एक नया क्षेत्र तथा नया प्रत्यय (New Concept) है इसलिए इसका अर्थ एवं परिभाषा विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से बताया गया है। पर्यावरण शिक्षा की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

यूनेस्को (1970) कार्य समिति के अनुसार, "पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मनुष्य तथा उसके पर्यावरण, सांस्कृतिक, भौतिक एवं जैविक परिवेश के पारस्परिक सम्बन्ध तथा निर्भरता को समझने का प्रयास किया जाता है और उसको

Scanned by CamScanner

स्पष्ट करने हेतु कौशल, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का विकास किया जाता है। इसके अन्तर्गत यह निर्णय लिया जाता है कि क्या किया जाए? जिससे वातावरण की समस्याओं का समाधान किया जा सके और पर्यावरण में गुणवत्ता लाई जा सके।"

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक स्रोत संरक्षण परिषद् (International Nature and Natural Resources Conservation Council) द्वारा आयोजित जलवायु सम्मेलन (1997) में पर्यावरण शिक्षा का परिचय कुछ इस प्रकार दिया गया है– "पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव अपनी संस्कृति व जैव–भौतिक परिवेश (Bio-physical Scenario) के बीच पारस्परिक सम्बन्धों की समझ व प्रशस्ति (प्रशंसा) का विकास तथा सम्प्रत्ययों की कुशलताओं और अभिवृत्तियों का विकास करती है।

यह शिक्षा व्यक्ति की निर्णय–प्रक्रिया एवं व्यवहार संहिता में भी अपेक्षित परिवर्तन लाती है।"

कुक व हेरेन (Cook and Háren) (1971) के अनुसार, "पर्यावरण शिक्षा एक समस्या केन्द्रित बहु–विषयक सम्प्रदाय है जो अन्तर–अनुशासनात्मक, मूल्य आधारित, समुदाय आधारित एवं मानव को एक प्रजाति के रूप में जीवन्त कर सके।"

संयुक्त राज्य अमेरिका के पर्यावरण शिक्षा अधिनियम 1970 में कहा गया है – "पर्यावरण शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जो मानव का सम्बन्ध उसके प्राकृतिक व स्वनिर्मित वातावरण से स्थापित करती है जिससे जनसंख्या प्रदूषण, संसाधन आवंटन व निःशोषण, संरक्षण, यातायात प्रौद्योगिकी तथा शहरी व ग्रामीण नियोजन का समस्त मानवीय वातावरण से सम्बन्ध निहित है।"

यूनेस्को के अनुसार, "पर्यावरण शिक्षा व्यक्ति, प्रकृति एवं समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध कराते हुए पर्यावरण सुधार हेतु प्रेरणा प्रदान करती है।"

अतः उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता हैं कि पर्यावरण शिक्षा व्यक्ति की चेतना को जाग्रत करने का एक सशक्त माध्यम है। पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण सुधार के लिए, पर्यावरण के सम्बन्ध में, पर्यावरण के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा है। पर्यावरण में उपस्थित सभी जैविक (Biotic), अजैविक (Non-Biotic), सामाजिक (Social), सांस्कृतिक (Cultural), आर्थिक (Economical), राजनैतिक (Political) व प्रशासनिक (Administrative) घटकों के समन्वय से पर्यावरण की रचना होती है तथा सभी घटक एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। अतः पर्यावरण–शिक्षा की प्रकृति अन्तःविषयक (Interdisciplinary) है।

पर्यावरणीय शिक्षा की प्रकृति (Nature of Environmental Education)

पर्यावरणीय शिक्षा प्राकृतिक क्रिया कलापों को सिखाने का संगठित प्रयास है। मानव जाति अपने व्यवहार को किस प्रकार प्रबन्धित करके पारिस्थितिकी तन्त्र में जीवन यापन करती है इसका भी विशेष रूप से स्पष्टीकरण किया जाता है। यूनेस्को के तिबलिसी सम्मेलन (UNESCO Tbilisi) 1977 के अनुसार "पर्यावरणीय शिक्षा एक अधिगम प्रक्रिया से सम्बन्धित है जो लोगों को पर्यावरण ज्ञान तथा संरक्षण के प्रति जागरूक करेगी तथा उससे सम्बन्धित चुनौतियों, आवश्यक कौशल के लिए विशेषज्ञता विकसित करेगी।"

पारिस्थितिकी के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय शिक्षा की प्रकृति निम्नलिखित है–

1) पारिस्थितिकी वास्तविकताओं और मानवीय इच्छाओं में वृद्धि, जीवन स्तर में टकराव से सम्बन्धित प्रकृति है जिसे पर्यावरण क्षरण कहते हैं।
2) पर्यावरणीय शिक्षा की प्रकृति वैज्ञानिक है। लोगों में पर्यावरण के प्रति चेतना वैज्ञानिक तरीके से जगानी चाहिए। पारिस्थितिकी के लक्षण तथा उनके आधार को समझने की प्रकृति वैज्ञानिक है।
3) पर्यावरणीय शिक्षा की प्रकृति सामाजिक है। पर्यावरण नैतिकता के आधार पर चेतना, पारिस्थितिकी अन्तरनिर्भरता और आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कारकों को समझने में है।
4) पर्यावरणीय शिक्षा की प्रकृति व्यवहारिक होती है। पारिस्थितिक तन्त्र के विभिन्न घटकों के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए उनके व्यवहारिक सम्बन्धों का ज्ञान आवश्यक है।
5) पर्यावरणीय शिक्षा की प्रकृति निदानात्मक भी होती है। पारिस्थितिकी तन्त्र में असन्तुलन को सुधारने के लिए उसमें होने वाले परिवर्तनों को समझना जरूरी है।
6) पारिस्थितिकी तन्त्र में कई घटक होते हैं जिनका अपना–अपना महत्त्व होता है। इनके महत्त्व को बनाए रखने तथा पर्यावरण सन्तुलन को स्थिर रखने के लिए निदान आवश्यक है।

पर्यावरणीय शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Environmental Education)

पर्यावरण शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषाएँ स्पष्ट करने के बाद, पर्यावरण शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निर्धारित करना भी आवश्यक है। अतः पर्यावरण शिक्षा के लक्ष्य अग्रलिखित हैं–

1) व्यक्ति को सामूहिक व व्यक्तिगत रूप से पर्यावरण से परिचित (Introduce) कराना।
2) व्यक्ति को पर्यावरण की उपयोगिता (Utility) से अवगत कराना।
3) प्रत्येक नागरिक में पर्यावरण के अमूल्य उपहारों (Valuable Gifts) के प्रति समरसता पैदा करना।
4) प्रत्येक नागरिक को पर्यावरण संरक्षण (Environmental Conservation) व संवर्धन की प्रेरणा देना।

तिबलिसी सम्मेलन यूनेस्को व यू.एन.ए. ई.पी. 1977 के अनुसार, पर्यावरण शिक्षा के निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं–

1) **जागरूकता (Awareness)**–समग्र पर्यावरण व उसकी समस्याओं के प्रति जागरूक एवं संवेदनशील होने की क्षमता सभी नागरिकों में विकसित करना।
2) **ज्ञान (Knowledge)**–विभिन्न अनुभवों के माध्यम से पर्यावरण व पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति समझ विकसित करना।

Scanned by CamScanner

3) **अभिवृत्ति (Attitude)**–पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता (Sensitivity) व नैतिक मूल्यों (Moral Values) को विकसित करना जिससे लोगों में पर्यावरण के संवर्धन व संरक्षण के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित हो सके।

4) **कौशल (Skill)**–पर्यावरण की समस्याओं को समझने व उनका समाधान कर सकने की योग्यता विकसित करना।

5) **मूल्यांकन (Evaluation)**–प्रत्येक नागरिक में पारिस्थितिकीय (Ecological), आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सौन्दर्यात्मक व शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक मानदण्डों व शैक्षिक कार्यक्रमों का मूल्यांकन कर सकने की योग्यता विकसित करना।

6) **सहभागिता (Participation)**–पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान करने में प्रत्येक स्तर पर दायित्वपूर्ण सक्रिय सहभागिता निभाना।

एन.सी.ई.आर.टी. (NCERT) एवं विश्व बैंक (World Bank) के अनुसार, पर्यावरण शिक्षा के निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए–

1) जीव विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान करना।
2) पेयजल (Drinking Water) समस्या का निवारण करना।
3) भू–जल प्रदूषण को न्युनतम मान्य स्तर तक लाना।
4) वायु प्रदूषण नियंत्रण के लिए हरित पट्टी (Green Belt) का निर्माण करना।
5) पर्यावरण प्रदूषण की निगरानी और नियंत्रण के लिए उपकरणों का विकास करना।
6) देश में पर्यावरण–अनुसंधान (Environmental Research) का सिलसिलेवार (Systematic) प्रबंध करना।
7) संसाधनों का विकास करना।
8) विभिन्न संस्थानों को वित्तीय सहायता देने की अधिक कारगर, कुशल तथा सार्थक (Meaningful) प्रक्रियाओं का विकास करना।
9) पर्यावरण से सम्बन्धित अनुसंधान कार्यक्रमों, प्राथमिकताओं तथा प्रक्रियाओं की समीक्षा (Review) करना।
10) पर्यावरण अनुसंधान पर सूचना प्रबंध के लिए कठोर उपागम (Hardware) तथा मृदु उपागम (Software) की व्यवस्था करना।

प्रश्न 7– पर्यावरणीय शिक्षा से क्या अपेक्षाएँ हैं? पर्यावरणीय शिक्षा में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान की भूमिका की विवेचना कीजिए।
What is the Expectations from Environmental Education? Explain the Role of Teacher Training Institute in Environmental Education.

उत्तर– पर्यावरणीय शिक्षा से अपेक्षाएँ (Expectations from Environmental Education)

पर्यावरण शिक्षा प्रदान करने का उद्देश्य छात्रों एवं समाज के लोगों में जागरुकता उत्पन्न कर पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देना है। इसके साथ ही पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं की भूमिका (Role) को और अधिक सशक्त करना है, जिससे पर्यावरण शिक्षा को प्राप्त करने के पश्चात समाज एवं सरकार की पर्यावरण शिक्षा को लेकर जो अपेक्षाएँ हैं, उन्हें पूर्ण किया जा सके। प्रत्येक समाज अपने नौनिहालों को भावी चुनौतियों का सामना करने एवं उन्हें इसके लिए प्रशिक्षित करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को अद्यतन (update) करता है। इससे ये संस्थाएँ भावी शिक्षकों को पर्यावरण का नवीनतन ज्ञान प्रदान कर सकती। इसके साथ दी शिक्षकों, छात्रों एवं समाज के विद्वतजनों से पर्यावरण शिक्षा को लेकर कुछ अपेक्षाएँ भी की जाती हैं, जिससे एक स्वस्थ पर्यावरण का निर्माण किया जा सके। पर्यावरण शिक्षा से निम्नलिखित अपेक्षाएँ की जाती हैं–

1) **पर्यावरण सुरक्षा एवं संरक्षण (Environmental Protection and Preservation)**–पर्यावरण शिक्षा प्राप्त लोगों एवं छात्रों से ये अपेक्षा की जाती है कि वे पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए आवश्यक कदम उठाएं। वे ऐसा कोई भी कार्य न करें जिससे पर्यावरण को हानि पहुँचे। बहुत से लोग यद्यपि पर्यावरण प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों तथा अन्य तथ्यों को जानने के बावजूद पर्यावरण के प्रति उदासीन रहते हैं। उनसे ये अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी उदासीनता को त्याग कर पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का ठीक से निर्वहन करेंगे।

2) **पर्यावरण प्रबन्धन (Environmental Management)**–पर्यावरण प्रबन्धन का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करना तथा पारिस्थितिकी के नियमों के अनुसार पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाए रखना है। पर्यावरण शिक्षा प्राप्त छात्रों से ये अपेक्षा की जाती है कि वे पर्यावरण प्रबन्धन के उद्देश्यों को प्राप्त करने एवं सफल बनाने के लिए सक्रिय रूप से कार्य करेंगे तथा अपने ज्ञान एवं बुद्धि के द्वारा इसमें नवीन तथ्यों को सम्मिलित करेंगे।

3) **जैव विविधता को बढ़ावा देना (Promoting Biodiversity)**–जैव विविधता से अभिप्राय जीवों की विविधता अथवा प्रचुरता से है। किसी प्रदेश की जैव विविधता वहाँ पर रहने वाले सूक्ष्मजीवों, पादपों तथा पशुओं के योग द्वारा आंकी जाती है। पर्यावरण शिक्षा प्राप्त कर रहे तथा प्राप्त कर चुके छात्रों एवं अन्य लोगों से अपेक्षा की जाती है कि वे जैव विविधता को बढ़ावा देंगे। जैव विविधता एक सामन्जस्यपूर्ण पर्यावरण के लिए अति आवश्यक है।

4) **प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा (Protection from Natural Hazards)**–पर्यावरण शिक्षा से लोगों/छात्रों को यह ज्ञान प्राप्त होता है कि किस प्रकार से प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा की जा सकती है। मानव के अंधाधुन्ध विकास ने प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि की है। इसके साथ ही सामान्य प्राकृतिक आपदाओं, जैसे– भूकम्प, ज्वालामुखी, बाढ़, सूखा से किस प्रकार निपटा जाए इसका भी ज्ञान पर्यावरण शिक्षा से प्राप्त होता है। छात्रों एवं जनसामान्य से ये अपेक्षा की जाती है कि वे पर्यावरण शिक्षा के ज्ञान से अपना एवं समाज का कल्याण करें।

5) **प्रदूषण में कमी (Decrease in Pollution)**–पर्यावरण शिक्षा से छात्रों, शिक्षकों एवं जनसामान्य को ये शिक्षा प्रदान की जाती है कि वे किस प्रकार से प्रदूषण में कमी ला सकते हैं। इसके साथ ही सरकार द्वारा बनाई जाने वाली नीतियों में भी जनसामान्य से ये अपेक्षा की जाती है कि वे प्रदूषण में कमी लाने में अपना सक्रिय योगदान दें।

6) **बीमारियों में कमी (Decrease in Diseases)**–पर्यावरण शिक्षा से छात्रों को यह ज्ञान प्राप्त होता है कि वे बीमारियों में किस प्रकार से कमी ला सकते हैं, या उनकी रोकथाम

में किस प्रकार से अपना योगदान दे सकते हैं। अधिकांश बीमारियों का सम्बन्ध प्रदूषण या मनुष्य की जीवन शैली से होता है। छात्रों को यह ज्ञान दिया जाता है कि विभिन्न प्रकार के प्रदूषण, जैसे– वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण इत्यादि से किस प्रकार से विभिन्न बीमारियों में वृद्धि हो रही है। और जब वे इसके बारे में विस्तारपूर्वक जान लेते हैं तो उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे इन बीमारियों के कारणों की रोकथाम में अपना योगदान देकर बीमारियों में कमी लाएँ, जिससे एक स्वस्थ समाज का निर्माण हो सके।

7) **हरित क्षेत्रों में वृद्धि (Increase in Greenery Areas)**–पर्यावरण शिक्षा प्राप्त छात्रों से ये अपेक्षा की जाती है कि वे हरित क्षेत्रों की वृद्धि में अपना योगदान देंगे। हरित क्षेत्रों में वृद्धि से अभिप्राय वन महोत्सव जैसे कार्यक्रमों को सफल बनाने में अपनी जिम्मेदारी को निभाएंगे। इसके साथ ही वे उस प्रत्येक कार्यक्रम, योज़ना को सफल बनाने के लिए सक्रिय रूप से योगदान देंगे जिससे हरित क्षेत्रों में वृद्धि हो।

8) **सामाजिक समन्वय में वृद्धि (Increase in Social Coordination)**–पर्यावरण शिक्षा से छात्रों को यह ज्ञान प्राप्त होता है कि सामाजिक समन्वय के बिना पर्यावरण संरक्षण नहीं हो सकता है। इसके साथ ही सामाजिक समन्वय में भी पर्यावरण शिक्षा की मुख्य भूमिका होती है। भारत में बहुत से क्षेत्रों में अधिकांश जनजातियाँ पूरी तरह से वनों पर निर्भर हैं। ऐसी स्थिति में वनों पर अतिक्रमण या सरकार द्वारा उनके उपयोग पर रोक संघर्ष को बढ़ावा देती है। पर्यावरण शिक्षा प्राप्त छात्रों से ये अपेक्षा की जाती है कि वह संघर्ष को कम करने तथा सामाजिक समन्वय में वृद्धि करेंगे।

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान की पर्यावरणीय शिक्षा में भूमिका (Role of Teacher Training Institute in Environmental Education)

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की पर्यावरण शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ये प्रशिक्षण संस्थान सेवा पूर्व एवं सेवा कालीन प्रशिक्षण में सक्रिय रूप से योगदान देते हैं। ये सामान्य प्रशिक्षण देने के साथ ही सरकार द्वारा निर्धारित विशिष्ट विषय के प्रशिक्षण भी प्रदान करते हैं।

पर्यावरण शिक्षा के प्रशिक्षण में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान मुख्य भूमिका निभाते हैं क्योंकि यदि प्रशिक्षु–शिक्षक ही पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व से परिचित नहीं होंगे तो वह छात्रों को कैसे इसके प्रति जागरूक कर पाएंगें। पर्यावरण शिक्षो प्रशिक्षु–शिक्षक को किस विधि से तथा किस मॉडल से प्रदान की जाए, इसका निर्धारण प्रशिक्षण संस्थान ही करते हैं। प्रशिक्षण संस्थान पर्यावरण शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्धारण, व उद्देश्यों को सुनिश्चित करने आदि में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त यदि आवश्यकता होती है तो प्रशिक्षण संस्थान इसके लिए समय–समय पर सेमिनार, संगोष्ठी एवं कार्यशाला आदि का भी आयोजन करते हैं जिससे शिक्षकों को अद्यतन जानकारी प्रदान की जा सके। साथ ही शिक्षकों के समक्ष आने वाली व्यावहारिक समस्याओं का समाधान किया जाता है।

इस प्रकार विभिन्न तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान पर्यावरणीय शिक्षा के व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान प्रशिक्षु–शिक्षकों के साथ ही सेवारत शिक्षकों को भी समय–समय पर पर्यावरण शिक्षा का अद्यतन ज्ञान प्रदान करते हैं, साथ ही छात्रों एवं समाज को भी जागरूक करते हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के प्रभाव को बढ़ाने के लिए सुझाव (Suggestions for Increasing the Effectiveness of Teacher Training Institutions)

शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान में पर्यावरण शिक्षा को एक विषय के रूप में क्रियान्वित करने के लिए स्थानीय क्षेत्र से लेकर राष्ट्रीय पैमाने तक प्रयास करने होंगे। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को फिर से उन्मुख करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

1) सामुदायिक संसाधनों (गैर सरकारी संगठनों, क्लबों, धार्मिक संगठनों आदि) को पर्यावरण के शिक्षण के लिए कक्षा के भीतर तथा बाहर शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम का हिस्सा होना चाहिए।
2) भावी शिक्षक तथा शिक्षक प्रशिक्षकों को पर्यावरण सम्बन्धी कौशल, क्रॉस–पाठ्यचर्या दृष्टिकोण तथा क्रिया–आधारित अधिगम मॉडल (जो स्थानीय समुदाय के लिए प्रासंगिक हो) से सम्बन्धित प्रोजेक्ट पर कार्य करना चाहिए।
3) भावी शिक्षकों को पर्यावरण सम्बन्धित पाठ्यचर्या से परिचित कराना आवश्यक तथा उनके लिए वैश्विक पर्यावरण मुद्दों पर भावी शिक्षकों के लिए संसाधन सामग्री उपलब्ध करानी चाहिए।
4) सेवारत शिक्षकों को पर्यावरण शिक्षा पर आधारित लघु–अवधि के पाठ्यक्रम से परिचित किया जाना चाहिए।
5) गतिविधियाँ, जैसे– भाषण प्रतियोगिता, समाचार पत्रों तथा प्रख्यात पर्यावरणविदों का भाषण लेखन, पर्यावरण शिक्षा पर आधारित सेमिनार या व्याख्यान आदि का भी आयोजन किया जा सकता है।
6) शिक्षक प्रशिक्षक संस्थानों द्वारा भावी शिक्षकों के लिए पर्यावरण शिक्षा अनुभव के लिए कार्यशालाओं का आयोजन किया जा सकता है।
7) पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित अभ्यास भावी शिक्षकों को दे सकते हैं। जिसका मुख्य बिन्दु पर्यावरण गतिविधि, जैसे– पेपर की बचत, ऊर्जा तथा जल संरक्षण, (जिनसे भावी शिक्षकों को पर्यावरण गतिविधियों के बारे में सोचने में सहायता मिलेगी) पर आधारित होना चाहिए।
8) शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या तथा कार्यक्रम के सभी पहलुओं में भावी शिक्षकों को सम्मिलित करके उन्हें प्रोत्साहित करने की कड़ी प्रतिबद्धता होनी चाहिए। ये पर्यावरण गतिविधियों के लिए विशेष रूप से शिक्षक प्रशिक्षकों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए।

विद्यालय एवं शिक्षक शिक्षा के उभरते आयाम (EMERGING DIMENSIONS OF SCHOOL AND TEACHER EDUCATION)

प्रश्न 8– शिक्षक शिक्षा की स्थिति एवं शिक्षक शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य लिखिए।
Write the Status of Teachers Education and Aims and Objectives of Teacher Education.

या (or)

Scanned by CamScanner

शिक्षक शिक्षा की स्थिति एवं संगठन पर एक लेख टिप्पणंह लिखिए।
Write a note on the Status and organisation of Teachers Education.

उत्तर– शिक्षा लगातार होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया है। आधुनिक रुझान, शैक्षिक विषयों और संबद्ध स्कूल विषयों को उभारने के लिए अनुकूल हैं। विद्यालय विषयों में शैक्षिक विषयों और व्यावसायिकता में दक्षता वाले शिक्षकों की आवश्यकता, आवश्यक गुणवत्ता शिक्षक के रूप में होती है।

शिक्षक शिक्षा क्षेत्र उभरते हुए शैक्षणिक विषयों की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। पाठ्यक्रम विकास, शिक्षा की तकनीक जैसी नए विषयों की तरह शैक्षिक समाजशास्त्र, आदि, नए विषयों के रूप में उभरा है। इसलिए, यह शैक्षणिक विषय और शिक्षकों और भावी शिक्षकों द्वारा इसके विभिन्न कारकों पर स्पष्ट समझ रखने के लिए प्रासंगिक है।

विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देशों में स्कूल शिक्षा का एक अभूतपूर्व विस्तार रहा है, जिसने शिक्षक शिक्षा की मांग को आगे बढ़ाया है। दुनिया भर में योग्य और गुणवत्ता वाले शिक्षकों की मांग लगातार बढ़ रही है। शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों को नए सिरे से एवं स्वाभाविक रूप से महत्त्व प्राप्त हुआ है। यह अनिवार्य हो गया है कि शिक्षकों की शिक्षा के लिए जुड़ा प्रयास और संसाधन प्रभावी और विशेष रूप से देश के संदर्भों में प्रासंगिक क्षेत्र हैं।

शिक्षक–शिक्षा के संस्थान वैश्विक समुदायों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे शैक्षिक प्रणालियों के भीतर बदलाव लाने की क्षमता रखते हैं जो भविष्य की पीढ़ियों के ज्ञान और कौशल को आकार देंगे। जैसा कि शिक्षा को सर्वसम्मति से एक अधिक स्थायी विकास–उन्मुख भविष्य बनाने के प्रमुख उत्प्रेरक एजेंट के रूप में देखा जाता है, ऐसी चिंता हमारे देश में, प्रक्रियाओं और प्रथाओं का एक अभिन्न अंग बन गई है, जिससे छात्रों को सार्थक, समग्र अनुभव हासिल करने के लिए अनिवार्य बना दिया है।

जैसा एन.सी.टी.ई कि (1998) ने कहा, शिक्षक किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व है यह शिक्षक है जो मुख्य रूप से किसी भी स्तर पर शैक्षिक प्रक्रिया के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी है। यह दर्शाता है कि शिक्षकों की तैयारी में निवेश करना आवश्यक है, ताकि किसी राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित हो। देश के स्कूल व्यवस्था में सक्षम शिक्षकों के महत्त्व को किसी भी तरह से अत्यधिक प्रभावित नहीं किया जा सकता है।

शिक्षक शिक्षा = शिक्षण कौशल + शैक्षणिक सिद्धांत + व्यावसायिक कौशल

शिक्षक शिक्षा (Teacher Education)
शिक्षक शिक्षा अंग्रेजी शब्द Teacher Education का हिन्दी रूपान्तर है, जिसका शाब्दिक अर्थ है शिक्षकों की शिक्षा अथवा शिक्षकों को तैयार करने वाली शिक्षा/शिक्षक शिक्षा के अन्तर्गत वे सभी क्रियाएँ सम्मिलित हैं जो किसी व्यक्ति को शिक्षण व्यवसाय का दायित्व सम्भालने में सहायता करती हैं।

शिक्षा शब्दकोश ने शिक्षक शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "शिक्षक शिक्षा शैक्षिक व्यवसाय के कार्य में संलग्न करके व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विकास और तैयारी के लिए उत्तरदायी बनाने के लिए एक संस्था द्वारा विकसित अनुभवों और क्रियाओं का कार्यक्रम है।"

प्रो. एस.एन. मुखर्जी के अनुसार, "विभिन्न शिक्षा केन्द्रों में सुधार की आवश्यकता है और इस उद्देश्य हेतु 'अध्यापक शिक्षा' एक बेहतर शब्द है क्योंकि यह अध्यापक निर्माण सम्बन्ध क्षेत्र को विस्तृत बनाती है।"

According to Prof. S.N. Mukherjee, "Improvement is needed in different fields of education and for this purpose teacher education is better term because it widens the field of preparation of teachers."

गुड के शिक्षा कोश के अनुसार, "अध्यापक शिक्षा में वे सभी अनुभव तथा औपचारिक एवं अनौपचारिक क्रियाएँ सम्मिलित हैं जो किसी भी व्यक्ति को शिक्षण–व्यवसाय का दायित्व सँभालने की योग्यता प्रदान करती हैं।"

According to Good's Education Dictionary, "Teacher education is consisted of all the experience. Formal and informal activities which enables a person to manage the responsibility of profession of education."

शिक्षक शिक्षा की स्थिति (Status of Teacher Education)
भारत के वर्तमान अध्यापक शिक्षा की स्थिति को निम्न बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1) **शिक्षक शिक्षा के लिए खोले गए विद्यालयों के लिए निर्धारित मानदण्ड की अवहेलना**–शिक्षक शिक्षा के लिए विद्यालयों की एक निश्चित नियमावली तथा मानदण्ड होते हैं। जिनको पूरा करने के उपरान्त ही उन्हें शिक्षक प्रशिक्षण हेतु मान्यता मिलती है। इसके अन्तर्गत शिक्षक–प्रशिक्षक अनुपात, विद्यालय, प्रयोगशाला, पुस्तकालय अध्ययन के घण्टे शिक्षकों की संख्या उनके वेतन इत्यादि को भी सम्मिलित करते हैं परन्तु वर्तमान में शैक्षिक संस्थानों की बढ़ती संख्या ने शिक्षक शिक्षा का महत्त्व और भी बढ़ा दिया परन्तु इनके मानदण्डों की अवहेलना कर मान्यता प्रदान करने पर इनकी गुणवत्ता में कमी आई है।

2) **छात्र संख्या में वृद्धि**–देश की बढ़ती जनसंख्या के परिणामस्वरूप छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई है परन्तु उस अनुपात में शिक्षकों की संख्या का लगातार ह्रास हो रहा है। एक तरफ सरकार ऐसी योजनाओं का संचालन अथवा क्रियान्वयन करती है जिससे साक्षरता दर में वृद्धि हो तथा छात्रों की विद्यालय में सौ प्रतिशत उपस्थिति हो परन्तु दूसरी तरफ शिक्षकों के रिक्त पड़े लाखों पदों को भरने के प्रति उदासीन रहती है।

3) **शिक्षक शिक्षा के गुणात्मक विकास पर ध्यान न देना**–वर्तमान शिक्षक–शिक्षा के अन्तर्गत सैद्धान्तिक शिक्षा पर अधिक बल दिया जा रहा है जबकि छात्रों के गुणात्मक विकास में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण का अभाव रहता है। इसके कारण शिक्षक शिक्षा अपने दूरगामी उद्देश्यों को प्राप्त करने में बहुत कम सफलता प्राप्त करती है।

4) **परम्परागत पाठ्यक्रमों का प्रयोग**–शिक्षा जगत में दिन–प्रतिदिन नई–नई खोजे हो रही हैं। छात्र तकनीकी कुशलता को प्राप्त करने के लिए अग्रसर है। उनके पाठ्यक्रमों में समयानुसार परिवर्तन होता रहता है परन्तु शिक्षक शिक्षा का पाठ्यक्रम परम्परागत ही है जिससे छात्र एवं शिक्षकों में ताल–मेल की कमी रह जाती है। परम्परागत पाठ्यक्रमों का प्रयोग शिक्षकों को अपने समय से पीछे की ओर ले जाने के लिए विवश करता है।

Scanned by CamScanner

5) **व्यावहारिक शिक्षण की उपेक्षा**–शिक्षण शिक्षा में व्यावहारिक शिक्षण की उपेक्षा की जाती है जिससे शिक्षकों को वर्तमान एवं अद्यतन शिक्षण के साथ–साथ सैद्धान्तिक शिक्षण को ही आधार बनाना पड़ता है। व्यावहारिक शिक्षण की उपेक्षा करके छात्र को मात्र रटने तथा परीक्षा उत्तीर्ण करने एवं अधिकतम प्राप्तांक प्राप्त करना सिखाया जा सकता है, व्यावहारिक ज्ञान, गुणवत्तापरक शिक्षा प्रदान नहीं किया जा सकता है।

शिक्षक शिक्षा के लिए उपर्युक्त परम्परागत पाठ्यक्रमों, विधियों एवं उपेक्षाओं के साथ–साथ कुछ नवीन परिवर्तन भी किए गए हैं जो शिक्षकों को गुणवत्ता एवं उद्देश्यपरक शिक्षण के लिए तैयार करता है। इसमें कुछ निम्नलिखित हैं–

i) शिक्षक पात्रता परीक्षा को अनिवार्य करके शिक्षक की गुणवत्ता में सुधार लाया गया।
ii) नवीन विधियों प्रविधियों का ज्ञान कराकर कौशलों का विकास किया गया।
iii) सहायक सामग्रियों की नवीन एवं उन्नतिशील प्रौद्योगिकी का प्रयोग।
iv) शिक्षक शिक्षा में सूचना सम्प्रेषण तकनीकी का प्रयोग।
v) आयोगों का गठन कर समय–समय पर शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी प्रगति का मूल्यांकन।
vi) शिक्षक शिक्षा संस्थानों में हो रही लगातार वृद्धि शिक्षकों की संख्या में वृद्धि कर छात्रों के शिक्षण में अभूतपूर्व योगदान दे रहा है।

शिक्षक शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य (Aims and Objectives of Teacher Education)

शिक्षक शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1) शिक्षक शिक्षा के द्वारा शिक्षक को भिन्न–भिन्न प्रचलित तथा आधुनिकतम विधियों से अवगत कराना।
2) शिक्षक शिक्षा के द्वारा मनोविज्ञान का ज्ञान प्रदान कर शिक्षकों को छात्रों के शिक्षण हेतु प्रभावी बनाना।
3) शिक्षकों को पाठ की शिक्षण सम्बन्धी विषयवस्तु की योजना बनाने का ज्ञान देना।
4) अध्यापक को अपने दर्शन निर्माण के साथ–साथ भिन्न–भिन्न दर्शनों का ज्ञान देना।
5) छात्रों में प्रकृति के प्रति सूझ–बूझ का विकास करने के लिए अध्यापकों की सहायता करना।
6) शिक्षक शिक्षा द्वारा शिक्षकों को शैक्षिक सामग्री का सही प्रयोग करना सिखाना।
7) विद्यालय में अध्यापकों को किन–किन कर्त्तव्यों को निभाना है, इसका ज्ञान देना।
8) कक्षा प्रबन्धन तथा शिक्षण सिद्धान्तों की सही जानकारी उपलब्ध करना।

शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या (Curriculum of the Teacher Education)

शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या निम्नलिखित है–

1) पूर्व प्राथमिक स्कूल शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
2) प्राथमिक स्कूल शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
3) माध्यमिक स्कूल शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
4) अनौपचारिक शिक्षक शिक्षा प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
5) प्रौढ़ शिक्षा शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
6) मूक–बधिर बच्चों के शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
7) दृष्टिबाधित बच्चों के शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
8) शारीरिक शिक्षा–शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
9) भाषा शिक्षा–शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
10) ललित कला शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।
11) गृह विज्ञान शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या।

शिक्षक शिक्षा का संगठन (Organisation of Teacher Education)

वर्तमान में देश में दो प्रकार के शिक्षक शिक्षा संगठन हैं–

1) सेवा पूर्व शिक्षक शिक्षा।
2) सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा।

सेवा पूर्व शिक्षक शिक्षा (Pre-Service Teacher Education)

भारत में विभिन्न स्तर के सेवापूर्ण शिक्षकों के लिए बहुत सी संस्थाएँ चलाई जा रहीं हैं। प्रमुख संस्थाएँ इस प्रकार हैं–

1) **पूर्व प्राथमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाएँ**
   i) पूर्व प्राथमिक शिक्षक शिक्षा प्रशिक्षण संस्थाएँ (Pre-Primary Teacher Education Training Institutions)
   ii) नर्सरी टीचर एजुकेशन डिप्लोमा डिपार्टमेन्ट्स (Nursery Teacher Education Diploma Departments)
2) **प्राथमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाएँ**
   i) सामान्य विद्यालय (Normal School)
   ii) जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (District Institute of Education and Training – DIET)
   iii) पत्राचार पाठ्यक्रम विभाग (Department of Correspondence Course)
3) **माध्यमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाएँ**
   i) शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (Colleges of Teacher Education)
   ii) शिक्षक शिक्षा विभाग (Department of Teacher Education)
   iii) केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (Central Institute of Education)
   iv) पत्राचार पाठ्यक्रम विभाग (Department of Correspondence Course)
   v) राज्य शिक्षा संस्थान (State Institute of Education)
   vi) क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (Regional Institution of Education)
4) **विशिष्ट छात्रों के शिक्षकों की शिक्षा संस्थाएँ**
   i) मूक–बधिर के शिक्षकों की प्रशिक्षण संस्थाएँ (Training Institutes for Dumb and Deaf Children's Teacher)
   ii) दृष्टिबाधित छात्रों के शिक्षकों की प्रशिक्षण संस्थाएँ (Training Institutions for Blind Student's Teacher)
5) **विशिष्ट पाठ्य–विषयों एवं क्रियाओं की प्रशिक्षण संस्थाएँ**
   i) शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग (Colleges and Departments of Physical Education)
   ii) कला शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग (Colleges and Department of Art Teaching)

Scanned by CamScanner

iii) भाषा शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग (Colleges and Department of Language Teaching)

iv) गृह विज्ञान शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग (Colleges and Department of Home-Science Teaching)

सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा (In-Service Teacher Education)

सेवा के दौरान शिक्षकों के लिए शिक्षक शिक्षा की व्यवस्था की ही सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा कहते हैं। इसको दो भागों में बाँटा जा सकता है। सेवा कालीन अप्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण एवं सेवा कालीन प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण।

1) **सेवा कालीन अप्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण**–प्रारम्भ में देश के प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या अत्यधिक थी। अतः उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु कई प्रकार की पाठ्यचर्या चलाई गई जो निम्नलिखित हैं–
   i) पूर्णकालिक शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या (Full-Time Teacher Education Curriculum)
   ii) अल्पकालिक शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या (Part-Time Teacher Education Curriculum)
   iii) ग्रीष्मकालीन शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या (Summer-Time Teacher Education Curriculum)
   iv) पत्राचार पाठ्यचर्या (Correspondence Curriculum)

2) **सेवा कालीन प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण**–प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों में अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या बहुत कम हो गई है परन्तु शिक्षक शिक्षा के विकास के साथ अद्यतन ज्ञान के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण आवश्यक है। इसके द्वारा शिक्षकों के नवीन शिक्षण विधियों–प्रविधियों का ज्ञान कराना तथा शिक्षण तकनीकी एवं सहायक सामग्री के प्रदर्शन एवं उपयोग का ज्ञान कराना है। सेवा कालीन शिक्षकों को निम्नलिखित प्रकार से प्रशिक्षण दिया जा सकता है–
   i) विचार गोष्ठियाँ (Seminars)
   ii) पुनश्चर्या पाठ्यक्रम (Refresher Courses)
   iii) कार्यशालाएँ (Workshops)
   iv) मुद्रित सामग्री वितरण (Printed Material Distribution)
   v) जनसंचार के साधन (Medium of Mass Media)

शिक्षक शिक्षा का महत्त्व एवं आवश्यकता (Need and Importance of Teacher Education)

शिक्षक शिक्षा का महत्त्व एवं आवश्यकता निम्नलिखित है–

1) **शिक्षा और शिक्षण के प्रति एक अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करने के लिए**–शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का विकास सम्भव है। शिक्षा ही मनुष्य के विकास का आधार है। इसलिए इसके प्रति एक अच्छी अन्तर्दृष्टि विकसित की जाती है जिसके द्वारा शिक्षक शिक्षा के महत्त्व को समझा जा सकता है। शिक्षक शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति के अन्दर अन्तर्दृष्टि का विकास किया जा सकता है।

2) **शिक्षा के उद्देश्यों को समझने के लिए**–शिक्षा की आवश्यकता शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है। अतः शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। शिक्षक को जब तक शिक्षा के उद्देश्य नहीं पता होंगे तब तक वह इस क्रिया को अच्छे ढंग से क्रियान्वित नहीं कर सकता। शिक्षक शिक्षा के माध्यम से शिक्षकों के शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट किया जाता है जिसके द्वारा वे छात्रों को विधिवत् ढंग से उद्देश्य प्राप्त कराने में सहायता करते हैं।

3) **भारी उत्तरदायित्वों को कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के लिए**–एक शिक्षक शिक्षण के क्षेत्र में मात्र बौद्धिक ज्ञान और कुशलताओं को ही नहीं प्रदान करता है बल्कि वह छात्रों को विचार करने, सोचने तथा नवीन कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित भी करता है। शिक्षक का कार्य शिक्षण प्रदान करना ही नहीं होता बल्कि उसका सर्वांगीण विकास करना भी होता है। शिक्षक शिक्षण के द्वारा अद्यतन तकनीकियों, शिक्षण विधियों एवं रणनीतियों से शिक्षक को परिचित कराया जाता है। इसका उपयोग करके शिक्षक छात्रों को रुचिपूर्वक अध्ययन एवं अध्ययन कराने में सफलता प्राप्त करते हैं।

4) **बौद्धिक परम्पराओं और कार्य कौशलों के हस्तान्तरण के लिए**–शिक्षक छात्रों की शिक्षण प्रक्रिया तक ही नहीं सीमित रहता बल्कि वह छात्रों में बौद्धिक परम्पराओं और कार्य कौशलों का हस्तान्तरण भी करता है। वह पाठ्यचर्या के आधीन विषयों के साथ–साथ अन्य ज्ञान एवं परम्पराएँ भी सीखने के लिए प्रदान करता है। इस प्रकार शिक्षक शिक्षा के द्वारा समाज की सभ्यता–संस्कृति एवं परम्पराओं का कैसे एक पीढ़ी से दूसरी में हस्तान्तरण हो, इसका ज्ञान कराया जाता है।

5) **विषयों के शिक्षण एवं क्रियाओं के प्रशिक्षण में निपुण करने के लिए**–शिक्षक को जब तक छात्रों के अध्ययन करने वाले विषयों का ज्ञान नहीं होगा तब तक वे अच्छा शिक्षण नहीं कर सकते। समय–समय पर बालकों की पुस्तकों, पाठ्यचर्या एवं प्रविधियों में परिवर्तन होता रहता है। शिक्षक को इन समस्त विषयों से सम्बन्धित ज्ञान शिक्षण द्वारा ही सम्भव होता है। कक्षा के अन्तर्गत की जाने वाली समस्त क्रियाओं का ज्ञान शिक्षक–शिक्षा के माध्यम से ही प्रदान किया जाता है। इसके द्वारा उन्हें विभिन्न कौशलों के प्रयोग एवं तकनीकियों में दक्ष बनाया जाता है जिससे वे इसका प्रयोग छात्रों के शिक्षण में कर सकें।

प्रश्न 9– विद्यालयी शिक्षा में उभरती प्रवृत्तियों पर एक लेख लिखिए।

Write a note on Emerging Trends in School Education.

उत्तर– विद्यालयी शिक्षा में उभरती प्रवृत्तियाँ (Emerging Trends in School Education)

विद्यालयी शिक्षा में उभरती प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

1) टेली–कॉन्फ्रेंसिंग (TeleConferencing)
2) भाषा प्रयोगशाला (Language Laboratory)
3) स्मार्ट कक्षाएँ (Smart Classes)
4) कम्प्यूटर सह–अनुदेशन (Computer Assisted Instruction-CAI)
5) इण्टरनेट (Internet)
6) इलेक्ट्रॉनिक मेल या ई–मेल (E-Mail)

टेली–कॉन्फ्रेंसिंग (TeleConferencing) / दूरस्थ–सभा (सम्मेलन)

टेली–कॉन्फ्रेंसिंग, एक ऐसी विद्युत (इलेक्ट्रॉनिक) युक्ति है, जिसमें दूरस्थ स्थान पर उपस्थित व्यक्ति किसी विषय–वस्तु, प्रकरण पर चर्चा–परिचर्चा में भाग ले सकते हैं उस पर अपनी तात्कालिक प्रतिक्रियाएँ दे सकते हैं या प्राप्त कर सकते हैं।

Scanned by CamScanner

टेली–कॉन्फ्रेन्सिंग हेतु अनेक उपकरण यथा–विभिन्न टेलीफ़ोन, बड़ी (big) स्क्रीन, कम्प्यूटर प्रिन्टर, इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। अन्ततः यह प्रक्रिया अन्तःप्रक्रिया का ही एक स्वरूप है जो कि दूर–दूर बैठे व्यक्तियों के मध्य स्थापित की जाती है। टेली–कॉन्फ्रेन्सिंग का प्रचलन अमेरिका में टेलीफोन व टेलीफोन पिक्चर फोन के द्वारा 1960 में प्रारम्भ हुआ। आज नवीनतम् तकनीकों के द्वारा टेली–कॉन्फ्रेन्सिंग का स्वरूप अधिक विकसित व क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ है। इसमें द्विमार्गीय (two-way) प्रसारण द्वारा अन्तःक्रिया सामूहिक संचार (Interactive Group communication) की व्यवस्था होती है।

टेली–कान्फ्रेंन्सिंग के शैक्षिक लाभ एवं उपयोग (Advantages and Uses of Teleconferencing in Education)

टेली–कॉन्फ्रेन्सिंग के शैक्षिक लाभ एवं उपयोग निम्नलिखित हैं–

1) **दूरवर्ती अधिगम में सहायक (Helpful in Remote Learning)**–इससे दूरवर्ती छात्रों में अध्ययन के प्रति लगन पैदा होती है। यह व्यापक क्षेत्रों में व दूर–दूर बैठे छात्रों के लिए उपयुक्त होती हैं। दूरस्थ शिक्षा के छात्र अपनी उपलब्धियों की स्वयं जाँच कर सकते हैं। छात्रों की आन्तरिक प्रेरणा तथा जिज्ञासा में वृद्धि होती है जिससे छात्र ज्यादा सीखते हैं।

2) **लचीली प्रविधि (Flexible Techniques)**–इस प्रकार की प्रविधि को तुरन्त छोटे या बड़े समूहों के रूप में व्यवस्थित किया जा सकता है।

3) **नियन्त्रित अधिगम (Controlled Learning)**–अनुदेशन या कार्यक्रम के आयाम को विभिन्न केन्द्रों द्वारा नियंन्त्रित किया जा सकता है।

4) **प्रभावशाली अनुदेशन (Effective Instruction)**–अनुदेशन सामग्री के स्तर को सुधारा जा सकता है या उसी रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

5) **समय सारणी में सहायक (Helpful in Time Table)**–इसमें पारस्परिक ढंग से न उपलब्ध होने वाले छात्रों के लिए भी समय सारणी व्यवस्थित की जा सकती है।

6) **तात्कालिक पृष्ठपोषण (Immediate Feedback)**–इस प्रणाली द्वारा छात्रों को तुरन्त पृष्ठपोषण प्रदान किया जाता है जिससे छात्रों को अधिगम में सहायता प्राप्त होती हैं व छात्र सक्रिय, सफल अधिगम की ओर आकर्षित होता है।

भाषा प्रयोगशाला (Language Laboratory)

भाषा प्रयोगशाला, एक प्रयोगशाला कक्ष है जहां भाषा दक्षता (Language Skills) का शिक्षण किया जाता है। भाषा प्रयोगशाला का उपयोग विदेशी भाषाओं के शिक्षण के लिए, पठन के लिए और शुद्धीकरण के लिए किया जाता है। सामान्य रूप से भाषा प्रयोगशाला एक प्रकार की कक्षा होती है। जिसमें इलेक्ट्रॉनिक उपकरण लगे रहते हैं तथा इनका प्रयोग भाषा में ग्रुप ट्यूशन देने के लिए किया जाता है।

भाषा प्रयोगशाला में प्रत्येक विद्यार्थी के बैठने का स्थान या बूथ उपलब्ध रहता है। प्रत्येक बूथ में एक–एक हैड सेट (Head Set) फिट रहता है। जिसमें माइक्रोफोन तथा ईयरफोन (Earphone) लगे रहते हैं। जो कक्ष के केन्द्र में बैठे भाषा शिक्षक के कंसोल–टेबल (Console Table) से जुड़े रहते हैं। केन्द्र के मास्टर कंसोल पर टेप रिकॉर्डर या सी.डी. प्लेयर के माध्यम से विशेष रूप से निर्मित पाठ्यवस्तु आडियो सिग्नल उन विद्यार्थियों को प्रसारित किए जाते हैं जो अलग–अलग अपने बूथों पर बैठे उस भाषा सीखने की प्रक्रिया में लगे हुए हैं। भाषा प्रयोगशाला में अध्यापक टेप पर पहले से रिकॉर्ड किए हुए अनुदेशन को प्रदान कर सकता है तथा विद्यार्थी हेडफोन द्वारा शब्दों को सुनता है तथा बोले गए वाक्यों का अध्ययन करता है। इसके उपरान्त कुछ विराम देकर विद्यार्थी बोलने वाले शब्दों को दो–तीन बार दोहराता है। बाद के पाठों में प्रश्न के उत्तर के अभ्यास होते हैं। कई प्रयोगशाला कार्य को स्क्रीन पर भी दिखाया जाता है। जिसे सभी विद्यार्थी देख सकते हैं। इन दृष्टान्तों द्वारा उस विद्यार्थी के शब्द भण्डार (Word Collection) की जाँच हो जाती है जिसमें उस चित्र का वर्णन या प्रश्न का उत्तर देना होता है। विद्यार्थी जिस टेप पर नियंत्रण रखता है, उसे दोबारा से टेप कर सकता है तथा अपनी स्वयं की अभिक्रियाओं को सुन सकता है।

वर्तमान समय में भाषा प्रयोगशाला शिक्षण के क्षेत्र में सहायक सामग्रियों की भाँति सहायक मात्र है न कि अध्यापक। यह शिक्षा का प्रतिस्थापन है। भाषा प्रयोगशाला एक विशेष कक्ष होता है जो विविध दृश्य–श्रव्य उपकरणों से युक्त होता है। सामान्यतः एक भाषा प्रयोगशाला चार, छः, आठ, दस, ... बत्तीस टेपरिकॉर्डरों का एक क्रमिक व्यवस्थित संयोजन होता है जिसके माध्यम से शिक्षार्थी/अध्येता भाषा अध्ययन के लिए विविध प्रकार के अभ्यास करते हुए भाषा सीखता है।

रॉबर्ट लेडो (Robert Lado) के अनुसार, "भाषा प्रयोगशाला भाषा शिक्षण का केन्द्र है जिसमें छात्रों के सुनने, बोलने, तथा लिखने आदि के लिए नियन्त्रित वातावरण प्रदान किया जाता है।"

ए. एस. हयास (A.S. Hayas) के अनुसार, "भाषा प्रयोगशाला एक कक्षा कहलाता है जिसमें विदेशी भाषा के अधिगम को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए विशेष प्रकार के उपकरण जुटाए गए हैं। सामन्यतः कार्य साधारण व्यवस्था में इतना प्रभावशाली नहीं बन सकता।"

भाषा प्रयोगशाला का महत्त्व (Importance of Language Laboratory)

भाषा प्रयोगशाला का महत्त्व निम्नलिखित है–

1) बार–बार शुद्ध विषय–वस्तु को सुनने से शुद्ध उच्चारण अधिगम में सहायता प्राप्त होती है।
2) छात्र को अभिप्रेरणा मिल जाती है। वह कार्य के लिए तत्पर हो जाता है।
3) छात्र अपनी गति से तथा क्षमता के अनुसार सीखता है।
4) शब्दों के उच्चारण में सहायता मिलती है।
5) चूंकि छात्र का उच्चारण किसी दूसरे छात्र को सुनाई नहीं देता, वह बिना संकोच के कार्य करता है।
6) छात्र पाठ को बार–बार दोहराता है।
7) छात्र अभ्यास द्वारा अपनी गलतियों को ठीक कर सकता है।
8) छात्र में क्रियाशीलता एवं सक्रियता बढ़ती है।

स्मार्ट कक्षाएँ (Smart Classes)

शिक्षा के क्षेत्र में यह एक विशिष्ट तकनीकी है। इस तकनीकी में छात्रों को अध्यापन कराने के लिए एक बोर्ड–स्क्रीन दीवार पर लगी होती है तथा प्रोजेक्टर को लगभग मध्य में छत पर

Scanned by CamScanner

सेट कर दिया जाता है। प्रोजेक्टर की किरणें परावर्तित (Reflect) होकर स्क्रीन के ऊपर पड़ती हैं जिसके प्रकाश से स्क्रीन पर फिल्म, शिक्षा से सम्बन्धित प्रत्येक कार्यक्रम साफ दिखाई पड़ता है। यह तकनीक कम्प्यूटर स्क्रीन एवं श्यामपट दोनों की तरह कार्य करती है। शिक्षा में आने वाली नई–नई चुनौतियों का सामना अध्यापक इसके प्रयोग से सरलता से कर लेता है। विभिन्न प्रकार की तकनीकी का प्रयोग स्मार्ट कक्षाओं में किया जाता है। **जैसे**– T.V., L.C.D., Computer, Internet Visualisation, P.P.T. आदि। स्मार्ट कक्षाओं में बहु–माध्यम उपागम (Multimedia Approach) का प्रयोग करके शिक्षा व कार्य किया जाता है।

बहुमाध्यम उपागम एक ऐसा पद है जिसमें विभिन्न माध्यमों में अनेक सॉफ्टवेयर के समूहों अथवा उनका एकत्रीकरण करके सामूहिक प्रस्तुतिकरण किया जाता है जिसमें विषय–वस्तु, ग्राफिक्स, चित्र, आवाज, संगीत, प्रतिकृति तथा वीडियो–इमेज आदि का प्रयोग कम्प्यूटर के द्वारा या प्रोजेक्टर में C.D. आदि लगाकर किया जाता है।

दीपिका बी. शाह ने बहुमाध्यम की परिभाषा इस प्रकार दी है– "इसका तात्पर्य एक से अधिक माध्यम से है, जो एक सम्प्रेषण में क्रमशः अथवा साथ–साथ प्रयोग किए जाते हैं।" विशेषज्ञों के अनुसार विभिन्न माध्यम, विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रयोग किए जाते हैं। अतः विभिन्न माध्यमों का अलग–अलग प्रयोग न करके उनको एकीकृत रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

अतः स्मार्ट–कक्षाएँ एवं बहु–माध्यम उपागम का अभिप्राय है संचार की आधुनिक तकनीकियों का विधिवत् एवं सुचारू रूप से शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग करना जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जा सके।

स्मार्ट कक्षाओं में शिक्षण हेतु प्रत्येक कक्षा की पाठ्यचर्या की C.D. बनाई जाती है जो विषय वस्तु को बोलकर चित्रों व संगीत तथा उदाहरण आदि के माध्यम से प्रस्तुत करती है। इस प्रकार का शिक्षण विशेषकर CBSE बोर्ड में कक्षा दस तक कराया जाता है।

स्मार्ट कक्षाओं द्वारा छात्रों की कई इन्द्रियों को सक्रिय कराया जाता है। इसी उद्देश्य हेतु स्मार्ट कक्षाओं में शिक्षक शिक्षण हेतु ऐसी अत्याधुनिक तकनीकों का प्रयोग करता है जिसके द्वारा अधिकांश छात्र अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति कर सकें व पढ़ाई गई विषय वस्तु बालक के मस्तिष्क में चिरस्थायी बन सके। कुछ ऐसे ही अत्याधुनिक उपकरण, जैसे – स्मार्ट बोर्ड, विजुअलाइजर प्रोजेक्टर (Visualiser Projector) इत्यादि उपकरणों का प्रयोग स्मार्ट कक्षाओं में शिक्षण हेतु किया जाता है।

स्मार्ट बोर्ड (Smart Board)

स्मार्ट बोर्ड एक प्रकार का इलेक्ट्रॉनिक बीम व प्रोजेक्टरयुक्त व्हाइट बोर्ड है। इस बीम के प्रयोग द्वारा बोर्ड को मॉनीटर स्क्रीन की भाँति प्रयोग किया जा सकता है। बोर्ड को नेट से कनेक्ट कर पढ़ाए जा रहे प्रकरण से सम्बन्धित कोई भी नवीनतम जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

पढ़ाई गई सामग्री को सुरक्षित किया जा सकता है और जिसे कक्षा में अनुपस्थित छात्रों को उपलब्ध कराया जा सकता है। इसके द्वारा प्रजेंटेशन, वीडियो प्रजेंटेशन इत्यादि अनेक क्रियाएँ सुगमतापूर्वक सम्पादित की जा सकती हं। यह एक प्रकार से इंटरनेटयुक्त कम्प्यूटर की भाँति ही होता है।

कम्प्यूटर सह–अनुदेशन (Computer Assisted Instruction-CAI)

जब कम्प्यूटर का प्रयोग अधिगम में सहायता के लिए अथवा अनुदेशन प्रक्रिया को नियन्त्रित करने के लिए किया जाता है तो उसे कम्प्यूटर सह–अनुदेशन कहते हैं। इसमें छात्र व शिक्षक के मध्य अन्तः क्रिया (Interaction) होती है। इसमें कम्प्यूटर नियन्त्रित उपकरणों के द्वारा विषयवस्तु छात्रों के समक्ष प्रस्तुत होती है तथा छात्रों की अनुक्रिया के लिए उन्हें तुरन्त पृष्ठपोषण प्राप्त होता है। इसमें उपचारात्मक शिक्षण की भी व्यवस्था होती है।

शिक्षा शब्दकोश में सी.ए.आई. का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है "कम्प्यूटर सह–अनुदेशन एक स्वचालित अनुदेशनात्मक प्रविधि है जिसमें स्वचालित आँकड़े तैयार करने वाले उपकरण प्रयोग किए जाते हैं–

1) जो छात्र के उद्दीपन के प्रस्तुतिकरण को नियन्त्रित करने,
2) छात्रों के उत्तरों को स्वीकृत एवं मूल्यांकित करने तथा
3) उस प्रतिक्रिया पर आधारित वांछित ढंग से छात्रों के उत्तरों को स्वरूप प्रदान करने हेतु अन्य उद्दीपनों को प्रस्तुत करने के लिए होते हैं।"

इसके द्वारा छात्र अपनी योग्यता व गति के अनुसार व्यक्तिगत रूप से स्व–अधिगम प्राप्त करते हुए अधिगम उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं। इसके द्वारा छात्र अपनी क्षमता व गति के अनुसार सीखता है। इसमें छात्र को तुरन्त ही पृष्ठ–पोषण प्राप्त होता है।

इण्टरनेट (Internet)

आधुनिक समय में इण्टरनेट ने मनुष्य के कार्य को बहुत अधिक सरल, सुविधाजनक और तीव्र बना दिया है। इण्टरनेट का प्रयोग ई–कॉमर्स (E-Commerce), ई–मेल (E-mail), ऑनलाइन मीटिंग (Online Meeting), विचारों के आदान–प्रदान (Sharing of Ideas), ऑनलाइन दूरवर्ती शिक्षा (Online Distance Education), व्यापार (Business), मनोरंजन (Entertainment), मेडिकल (Medical), संचार (Communication), शापिंग (Shopping), विनियोजन (Investment) इत्यादि क्षेत्रों में हो रहा है।

इण्टरनेट की निश्चित परिभाषा देना आसान नहीं है क्योंकि यह हजारों तकनीकियों (Technologies) और अनेक सर्विसेज (Services) का एक जटिल संयोजन (Combination) है, जिसका प्रयोग प्रतिदिन लाखों व्यक्तियों द्वारा किया जा रहा है। यह विश्व का सबसे बड़ा नेटवर्क है। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि इण्टरनेट अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्कों का एक नेटवर्क है जो लाखों शैक्षणिक संस्थाओं, सरकारी एजेन्सियों और व्यापारिक संस्थाओं को आपस में जोड़ता है। अतः इसे संयुक्त नेटवर्क भी कहा जा सकता है जिसमें प्रत्येक नेटवर्क के प्रत्येक कम्प्यूटर किसी भी नेटवर्क के किसी भी कम्प्यूटर से सूचनाओं का आदान–प्रदान (Exchange) कर सकते हैं।

अतः इण्टरनेट एक ऐसी तकनीक है जिसमें कम्प्यूटर्स के नेटवर्क का प्रयोग किया जाता है ताकि लोगों को विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त हो सकें। इण्टरनेट के द्वारा विभिन्न प्रकार के दस्तावेज (Documents), वैज्ञानिक आँकड़े, शैक्षणिक आँकड़े, विभिन्न प्रकार के विज्ञापन एवं संस्थानों के विषय में

Scanned by CamScanner

सूचनाएँ उपलब्ध हो जाती हैं। ये सूचनाएँ दुनिया के किसी भी कोने में किसी भी समय शीघ्रता व सुगमता से प्राप्त की जा सकती हैं। इसीलिए आज इण्टरनेट को सबसे बड़े वाइड एरिया नेटवर्क (WAN) के रूप में जाना या समझा जाता है। इसे तकनीकी रूप से "इण्टरनेट कम्प्यूटर नेटवर्क्स का एक नेटवर्क" कहा जाता है।

शेरान कॉफर्ड के अनुसार, "इण्टरनेट वास्तव में समस्त पृथ्वी पर बिखरे हुए हजारों नेटवर्क्स का एक मुक्त संयोजन है।"

According to Sharon Crawford, "The Internet is in fact a loose connection of thousands of networks scattered all over the globe."

'इण्टरनेट संचार भारतीय परिप्रेक्ष्य' नामक लेख में इण्टरनेट के विषय में बताते हुए इण्टरनेट का विवरण **सत्यनारायण पटनायक तथा ए. श्रवणनान** (1998) ने प्रस्तुत किया है। उनके शब्दों में–

"इण्टरनेट ऐसा अत्याधुनिक संचार नेटवर्क है, जो सूचना और संचार क्षेत्र की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। यह एक ऐसी प्रौद्योगिकी है, जिसमें करोड़ों कम्प्यूटर्स एक ही नेटवर्क से जुड़े हुए हैं। यह डिजिटल स्रोत और रिसीवर को जोड़ने की प्रक्रिया है, इण्टरनेट को मोटे तौर पर कम्प्यूटर्स के एक ऐसे विश्वव्यापी नेटवर्क के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो एक प्रोटोकॉल अर्थात् सूचना के आदान–प्रदान सम्बन्धी नियम का अनुपालन करते हुए संचार करते हैं।"

इसे 'सूचना राजपथ' (Information Highway) भी कहते हैं। इसमें प्रत्येक कम्प्यूटर नेटवर्क किसी दूसरे कम्प्यूटर नेटवर्क से ऐसे माध्यम के द्वारा जुड़ा होता है जिससे सूचनाओं का आदान–प्रदान किया जा सकता है। इण्टरनेट विश्व के विभिन्न नेटवर्क्स को जोड़कर बनाया गया एक जाल (Net) है। इसकी सहायता से विश्व के किसी भी कोने में आसानी से सम्पर्क किया जा सकता है।

इलेक्ट्रॉनिक मेल या ई–मेल (E-Mail)

प्राचीन समय में हम पत्रों या अन्य दस्तावेजों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिए डाक (Post) का इस्तेमाल करते थे जो कि असुरक्षित, कठिन व अधिक समय लेने वाला होता था परन्तु आज इण्टरनेट की सेवा ई–मेल द्वारा यह कार्य अधिक आसान हो गया है। आज हम तुरन्त एक सेकेण्ड में ही अपनी Post किसी भी कोने में पहुँचा सकते हैं। अतः इलेक्ट्रॉनिक मेल से तात्पर्य इण्टरनेट पर उपलब्ध उस साधन या सेवा से है जिसका उपयोग कहीं भी बैठे हुए व्यक्तियों के बीच सन्देश या दस्तावेज़ों के आदान–प्रदान के लिए किया जाता है। ई–मेल (E-mail) में सन्देश किसी व्यक्ति द्वारा नहीं पहुँचाया जाता बल्कि इण्टरनेट के नेटवर्क पर इलेक्ट्रॉनिक सन्देश के रूप में एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर पर आते हुए अपनी सही जगह पर उपलब्ध कराया जाता है। इस तरह सन्देशों को आसानी से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है। अतः यदि कोई सूचना अथवा दस्तावेज इलेक्ट्रॉनिक रूप से एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर में स्थानान्तरित हो जाए तो इसे इलेक्ट्रॉनिक मेल कहा जाएगा।

"यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें इलेक्ट्रानिक नेटवर्क तथा उसके बाहर विभिन्न प्रकार के लिखित सन्देशों का आदान–प्रदान किया जाता है।"

"It is a system for exchanging written messages electronically through network and beyond."

इस सुविधा में प्रयोगकर्ता को माँगने पर केन्द्रीय कम्प्यूटर पर उपस्थित डिस्क पर स्थान दिया होता है जहाँ वह अपनी मेल को सुरक्षित रख सकता है। इस स्थान को मेल बॉक्स कहा जाता है। इस मेल बॉक्स का एक पता होता है जिसे ई–मेल पता (E-mail Address) कहा जाता है। यदि हमें किसी व्यक्ति को इण्टरनेट की सहायता से मेल भेजना है तो हमें उस व्यक्ति का E-mail Address पता होना चाहिए तभी हम उसे ई–मेल कर सकते हैं। हॉटमेल (Hotmail), याहू (Yahoo), रेडिफ मेल (Rediffmail), जीमेल (Gmail) आदि अनेक ऐसे इण्टरनेट सर्वर हैं जो मुफ्त (Free) मेल भेजने तथा अपना एकाउन्ट बनाने की सुविधा देते हैं, **जैसे**– aman@yahoo.com

ई–मेल पते को बाईं से दाईं तरफ पढ़ा (Read) जाता है। उपरोक्त ई–मेल पते को इस प्रकार पढ़ेंगे–
अमन एट द रेट याहू डॉट कॉम; यहाँ–

1) अमन उपयोगकर्ता के नाम का सूचक है।
2) याहू उस संगठन या संस्थान का नाम है जो अपने सर्वर (Server) द्वारा ई–मेल सेवाएँ उपलब्ध करा रहा है।
3) कॉम से पता चल रहा है कि याहू एक व्यापारिक संस्थान (Commercial Organisation) है।

इस प्रकार हम ई–मेल के माध्यम से अपनी सूचना अथवा दस्तावेजों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से अति शीघ्र भेज सकते हैं।

प्रश्न 10–शिक्षक शिक्षा में उभरती प्रवृत्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a detail note on emerging trends in Teacher Education.

उत्तर– शिक्षक शिक्षा में उभरती प्रवृत्तियाँ (Emerging Trends in Teacher Education)

शिक्षक शिक्षा में उभरते रुझान को निम्नलिखित रूपों में देखा जाता है–

1) **तकनीकी परिवर्तन**–21 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में तकनीकी, आर्थिक और सांस्कृतिक शक्तियों द्वारा लाया जाने वाला परिवर्तन बहुत तेज है। इन परिवर्तनों का अधिकतर प्रभाव विकसित दुनिया में देख गया है लेकिन विकासशील देशों में भी उनका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। दुनिया भर के समाजों में कई तरह से तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं, विशेष रूप से उपलब्धता और डिजिटल सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों तक पहुंचने के आसान तरीकों के सम्बन्ध में। लेकिन, शिक्षकों और उनकी शिक्षण प्रथाएँ तेजी से परिवर्तित इस युग में भी परंपरागत ही हैं। यह सामग्री केंद्रित है, सामग्री निर्देश पर केंद्रित शिक्षक निर्देशित और शिक्षा संबंधी निर्देश और उसको पुनः प्रस्तुत करने से अध्यापन का नियम बना रहता है।

Scanned by CamScanner

2) **स्कूल पाठ्यक्रम में परिवर्तन**–सभी स्तरों पर पिछले शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में छात्रों के लिए बहुत ही कम परिभाषित किया गया था लेकिन अब यह दृश्य बदल गया है और सूचना प्रौद्योगिकी के युग में भारत जैसे कई विकासशील देशों में शैक्षणिक पाठ्यक्रम अच्छी तरह से परिभाषित हैं और आसानी से समझ सकते हैं। औपचारिक शिक्षा अनुभव जैसे, उच्च परीक्षण अंक मुख्य रूप से कैरियर लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों शिक्षकों और शिक्षकों की गुणवत्ता, जिनकी जिम्मेदारी शैक्षणिक अनुभवों में छात्रों को संलग्न करना है, उच्च ग्रेड और नीति संचालित परिप्रेक्ष्य द्वारा छात्र की उपलब्धि को मापने के लिए परिभाषित किया गया है।

3) **भविष्य की दिशा में प्रेरित करें**–छात्रों को उनके जटिल और तेज़ी से तकनीकी वायदा के लिए तैयार करना संभवतः किसी भी शिक्षण पद्धति या नीति में कभी नहीं सोचा गया है। यही कारण है कि शिक्षा संस्थानों ने एक भविष्य के लिए छात्रों को तैयार करना जारी रखा है, जिसमें उनके शिक्षक और प्रशासक परिचित और अच्छी तरह से परिचित हैं। प्रौद्योगिकी उपयोग यह है कि जहां एक शिक्षक और शिक्षार्थी पोर्टेबल, वायरलेस इलेक्ट्रॉनिक उपकरण से लैस है, जो इंटरनेट सामग्री तक पहुंचने में सक्षम है और विभिन्न स्थानों पर डिजिटल सहयोग विधियों की एक विस्तृत श्रृंखला को सक्षम करता है, यह शिक्षा का भविष्य है।

4) **डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना**–डिजिटल साक्षरता में आधुनिक तकनीकी उपकरण और आगामी पीढ़ी के लिए उपयुक्त तरीकों के माध्यम से प्रभावी ढंग से संवाद करने और सहयोग करने की क्षमता शामिल है। डिजिटल साक्षरता से समझना चाहिए कि एक पारंपरिक शिक्षक के शैक्षणिक कौशल से परे विस्तार करने वाले कौशल का आवश्यक सेट है। पारंपरिक लिखित रिपोर्ट तैयार करते समय डिजिटल साक्षरता अलगाव में पूरी तरह से हासिल नहीं की जा सकती, लेकिन आधुनिक शिक्षण सहायता के माध्यम से प्रामाणिक और प्रासंगिक उपयोग की एक परिवर्तनकारी प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। डिजिटल सूचना के इस महासागर में युवा पीढ़ी को डिजिटल दुनिया की जटिलताओं से परिचित है। इसी समय में वे डिजिटल जानकारी और तकनीकी सहायता के बिना जीवन को कुछ अपरिचित और नया पाते हैं।

5) **नवाचार**–इनोवेशन को आम तौर पर नए और उपयोगी चीजों की शुरूआत के रूप में समझा जाता है, जैसे कि नए तरीकों, तकनीकों, या प्रथाओं या नए या बदला हुआ उत्पादों और सेवाओं का परिचय देना। विद्यालय या शिक्षक शिक्षा संस्थान स्कूलों के शिक्षण–शिक्षा, प्रशिक्षण या प्रबंधन से जुड़े अपने काम के किसी भी पहलू पर नवाचार या प्रयोग कर सकते हैं जिससे कि समस्याएँ और कठिनाइयों को दूर करने के लिए संस्था की दक्षता में सुधार किया जा सके, वे दिन–प्रतिदिन कामकाज में सामना करते हैं। शिक्षक शिक्षा की वर्तमान संरचना **राष्ट्रीय**, प्रांतीय और जिला स्तर के संसाधन संस्थानों के **एक नेटवर्क** द्वारा समर्थित है जो पूर्व सेवा स्तर पर शिक्षक की **तैयारी** कार्यक्रमों की गुणवत्ता और प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए और साथ ही शिक्षकों की सेवा के लिए इन–सेवा कार्यक्रमों के माध्यम से कार्य करते हैं।

ज्ञान एवं शिक्षणशास्त्र (KNOWLEDGE AND PEDAGOGY)

प्रश्न 11–ज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ लिखिए। ज्ञान की प्रकृति एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
Write the Meaning and Definitions of Knowledge. Describe the Nature and Characteristics of Knowledge.

उत्तर– ज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Knowledge)

ज्ञान का अर्थ स्पष्ट रूप से उन सूचनाओं का संग्रह है जो किसी वस्तु, परिस्थिति और अनुभव की समझ को विकसित करने में सहायक होता है। ज्ञान समस्त शिक्षा का आधार है। ज्ञान एक साध्य एवं साधन दोनों ही रूपों में पाया जा सकता है। शिक्षा के कई उद्देश्यों में से 'ज्ञान प्राप्ति' एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

इसका अभिप्राय यह है कि ज्ञान, सूचनाएँ हैं। ये सूचनाएँ (Information) किसी भी वस्तु के बारे में हो सकती हैं जो हमें उस वस्तु की विशेषताओं के बारे में बताती हैं। इसी ज्ञान के कारण ही बालक हमारे समाज में प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं को उसी नाम से पुकारते हैं जो नाम सम्पूर्ण समाज प्रयोग करता है। इस प्रकार से वस्तुओं की जानकारी हस्तान्तरित होती है।

ज्ञान किसी परिस्थिति और प्रक्रिया से सम्बन्धित तथ्य और सत्य है। हमारे समाज में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ (Circumstances) और वातावरण उपस्थित हैं। इन परिस्थितियों और वातावरण से सम्बन्धित कई प्रकार के तथ्य होते हैं जो सत्य पर आधारित होते हैं। इन परिस्थितियों और वातावरण की लक्ष्यपूर्ण जानकारी ज्ञान कहलाता है जो वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ियों के लिए सदैव परिमार्जित एवं परिशोधित रूप में हस्तान्तरित होता रहता है।

ज्ञान, अनुभवों की समझ पर आधारित सूचनाएँ हैं। सभी को जीवन में अनुभव होते रहते हैं और इन अनुभवों का जब हम सामान्यीकरण (Generalisation) कर लेते हैं और एक सिद्धान्त और नियम के रूप में विकसित कर लेते हैं तो यह ज्ञान बन जाता है और यही ज्ञान सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो जाता है। **उदाहरण के लिए**–महान वैज्ञानिक न्यूटन, आंइस्टाईन, आकर्मिडीज आदि ने जो अनुभव किया उसके तथ्यों को सिद्धान्त के रूप में विकसित कर दिया गया जो आज विज्ञान के आधारभूत ज्ञान के रूप में विद्यमान है।

ज्ञान का अर्थ जागरूकता (Awareness) भी है। जागरूकता का अर्थ किसी भी वस्तु या परिस्थिति की सूचना हमारे मस्तिष्क में होने से है और यही मानसिक रूप से विद्यमान सूचनाएँ या तथ्य हमें जागरूक बनाते हैं। यही जागरुकता ज्ञान है क्योंकि जब तक कोई तथ्य हमारे मस्तिष्क में विद्यमान नहीं होता या प्रत्यक्षीकरण नहीं कर लिया जाता, तब तक वह मात्र सूचना होती है पर वही सूचना जब हमारे मस्तिष्क में प्रेषित (Transmitted) या ग्रहित (Acquired) हो जाती है तो यही हमारा ज्ञान बन जाती है।

Scanned by CamScanner

सुकरात के अनुसार, "ज्ञान एक ऐसी शक्ति है जिसकी सहायता से कोई भी कार्य किया जाना सम्भव है।"

According to Socrates, "Knowledge is power by which things are done."

कार्ल स्वेबी के अनुसार, "कुछ करने या क्रिया करने की क्षमता ही ज्ञान है।"

According to Karl Sveiby, "Knowledge is a capacity to act."

लॉक के अनुसार, "ज्ञान लोगों की बुद्धि और योग्यता में विद्यमान ज्ञात और उपस्थित होने का योग है।"

According to Locke, "Knowledge is the sum of what is known and resides in the intelligence and competence of people."

ज्ञान की प्रकृति (Nature of Knowledge)

ज्ञान को भली–भाँति समझने के लिए इसकी प्रकृति का ज्ञान होना अति आवश्यक है अतः हम यहाँ ज्ञान की प्रकृति पर प्रकाश डालेंगे। ज्ञान की प्रकृति को हम तीन रूपों में समझ सकते हैं–

ज्ञान एक साधन के रूप में (Knowledge as a Mean)

ज्ञान एक साधन के रूप में तब परिलक्षित होता है जब–

1) 'ज्ञान' प्राप्त करके किसी प्रत्यय की समझ (Understanding) विकसित करनी हो। **जैसे**– 'सीखने का सिद्धान्त' (Learning Theory) एक ज्ञान के रूप में तब साधन बन जाता है जब 'सीखने के सिद्धान्त' का प्रयोग सीखने की प्रक्रिया को समझने के लिए किया जाए।

   जब हम कुछ भी सीखते हैं या समझते हैं तब ज्ञान का प्रयोग हम एक साधन के रूप में करते हैं। समझने के लिए सैद्धान्तिक ज्ञान का प्रयोग करना पड़ता है। मनुष्यों में बोध (Comprehension) विकसित करने के लिए वैध ज्ञान का सहारा लेना पड़ता है। इस वैध ज्ञान की सहायता से किसी प्रत्यय सिद्धान्त या नियमों को समझ सकते हैं। ज्ञान का सृजन इसी उद्देश्य के लिए होता है कि इसकी सहायता से जटिल प्रत्ययों, सिद्धान्तों और नियमों को आसानी से समझा जा सके। ज्ञान की सहायता से हम प्रकृति एवं समाज से सम्बन्धित घटनाओं को व्यवस्थित रूप से समझो व समझ सकते हैं। इस प्रकार ज्ञान, समझने के लिए एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

2) 'ज्ञान' प्राप्त करके प्रयोग (Application) के लिए उसका व्यावहारिक जीवन में प्रयोग (Experiment) किया जाए। इस प्रकार ज्ञान का किसी वास्तविक परिस्थिति में प्रयोग किया जाए। **जैसे**– 'सीखने का सिद्धान्त' को कक्षागत परिस्थितियों में एक शिक्षक द्वारा प्रयोग किया जाए।

   ज्ञान का सबसे उत्कृष्ट एवं महत्त्वपूर्ण पहलू यही है कि ज्ञान की सहायता से समझ विकसित करने के बाद जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए इनका प्रयोग किया जा सकता है। जब हम ज्ञान का वास्तविक जीवन में प्रयोग करके अपने कार्य को आसान एवं उपयोगी बनाते हैं तब ज्ञान एक साधन के रूप में हमारी सहायता करता है। विज्ञान के नियमों को जब हम जीवन में प्रयोग करते हैं तब ज्ञान को एक साधन के रूप में समझा जा सकता है। भाषा के ज्ञान का प्रयोग हम व्यावहारिक संचार के रूप में करते हैं। इंजीनियरिंग से सम्बन्धित ज्ञान को व्यावहारिक रूप में मशीनों एवं घरों के निर्माण में प्रयोग करना आदि, सिद्ध करता है कि ज्ञान एक साधन है।

3) ज्ञान को विश्लेषण (Analysis) के लिए प्रयोग किया जाए। विश्लेषण की योग्यता यदि उद्देश्य हो तो 'ज्ञान' एक साधन के रूप में इसमें सहायक सिद्ध होता है। ज्ञान का प्रयोग कई बार हम परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी करते हैं। ऐसा ज्ञान जो विश्लेषण करने के काम आता है, एक साधन के रूप में होता है। मान लीजिए विज्ञान से सम्बन्धित किसी तथ्य का ज्ञान छात्रों को करा दिया गया हो और छात्र इस ज्ञान का प्रयोग वास्तविक जीवन की परिस्थिति के विश्लेषण में कर रहे हों, तब ज्ञान एक साधन बन जाता है। **जैसे**– हवा बहने से सम्बन्धित कई नियम एवं सिद्धान्त हैं और चक्रवात की कोई घटना हुई हो तो इस घटना के विश्लेषण में छात्र ने इस ज्ञान का प्रयोग किया हो तब ज्ञान एक साधन के रूप में जाना जाता है।

4) ज्ञान को संश्लेषण (Synthesis) के लिए प्रयोग किया जाए। संश्लेषण की प्रक्रिया कुछ नया सृजन (Creation) करने से सम्बन्धित है। इस प्रक्रिया में ज्ञान एक साधन के रूप में सहायता करता है। **उदाहरणार्थ**– हवा को उत्पन्न करने के जो नियम या सिद्धान्त हैं, उनका प्रयोग करके हवाई जहाज के उड़ने की प्रक्रिया को समझा जाए तो इस परिस्थिति में हवा से सम्बन्धित ज्ञान साधन बन जाता है और हमारे लिए पृष्ठात्मकता को जन्म देने वाली परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है।

5) ज्ञान को "मूल्याँकन" (Evaluation) की प्रक्रिया में प्रयोग किया जाए जिससे निष्कर्ष निकाला जा सके। मूल्याँकन का एक शैक्षिक उद्देश्य होता है जिसमें किसी परिस्थिति के अवलोकन के उपरान्त उससे सम्बन्धित निष्कर्ष निकाला जाता है। यदि हमारे पास ज्ञान है तो उसका निष्कर्ष आसानी से निकलता है एवं वह भी वैध होता है। इस प्रकार ज्ञान हमारे लिए एक साधन के रूप में प्रयोग होता है।

ज्ञान की उपर्युक्त प्रकृति के अलावा ज्ञान को संज्ञानात्मक प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है।

ज्ञान एक साध्य के रूप में (Knowledge Perseverance)

ज्ञान एक साध्य के रूप में तब प्रकट होता है जब–

1) ज्ञान एक उद्देश्य के रूप में परिभाषित किया गया हो जिसे प्राप्त करना हमारा उद्देश्य हो। **जैसे**– कई प्रत्ययों का अर्थ, परिभाषा, विशेषता, गुण, दोष एवं सीमाएँ आदि।
2) ज्ञान का परीक्षण किया जाना हो अर्थात् परीक्षा में सफल होने के लिए ज्ञान का संग्रहण।
3) ज्ञान को एक सिद्धान्त के रूप में लिया जाए। **जैसे**– शिक्षा का सिद्धान्त तथा समाजवाद का सिद्धान्त आदि।

एक साध्य के रूप में ज्ञान वह ज्ञान होता है जिसे हमें प्राप्त करना होता है। ज्ञान, स्वतंत्र रूप में उपस्थित होता है परन्तु जब तक इसका अर्जन न किया जाए तब तक उसको हम अपने लिए या समाज के लिए प्रयोग में नहीं ला सकते। ज्ञान प्राप्ति परम्परागत रूप से एक साध्य ही है जिसकी प्राप्ति

Scanned by CamScanner

प्राचीनकाल में घर के सदस्यों द्वारा होती थी फिर गुरुकुल प्रणाली के अन्तर्गत ज्ञान प्राप्ति के लिए मौखिक प्रणाली (Oral System) का प्रयोग किया जाता था। बाद में ज्ञान–प्राप्ति के लिए लिखित प्रणाली का प्रयोग किया जाने लगा। प्राचीनकाल की तुलना में आधुनिक समय में, मशीनों के प्रयोग के कारण ज्ञान–प्राप्ति की विषय–वस्तु में लगातार वृद्धि एवं परिवर्तन होता जा रहा है। **उदाहरण के लिए**– आजकल विद्यालयों में दिए जाने वाले ज्ञान का क्षेत्र पहले की तुलना में अत्यधिक विस्तृत हो गया है। अर्थात् ज्ञान एक साध्य के रूप में अति विस्तृत हो गया है।

वर्तमान समय में ज्ञान की मात्रा में ही नहीं अपितु ज्ञान के स्वरूप में भी परिवर्तन आ गया है। आजकल कई प्रकार के नवीन व आधुनिक ज्ञान भी प्रदान किए जा रहे हैं, जैसे– कम्प्यूटर का ज्ञान, विदेशी भाषाओं का ज्ञान, तकनीकी ज्ञान (ITI एवं IIT में इंजीनियरिंग, मशीनें आदि)।

ज्ञान एक साध्य के रूप में तब भी देखने को मिलता है जब कोई विद्यार्थी ज्ञान का अर्जन इसलिए करता है ताकि उच्चतर स्तर (Higher Level) के ज्ञान प्राप्ति के लिए परीक्षा उत्तीर्ण कर सके। प्रत्येक स्तर पर दिया जाने वाला ज्ञान अपने पहले के स्तर पर दिए गए ज्ञान से अधिक व्यापक और एक दूसरे से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित होता है। साध्य के रूप में ज्ञान, क्रमिक एवं व्यवस्थित पाठ्यक्रम की सहायता से दिया जाता है।

'ज्ञान' एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया के रूप में (Knowledge as a Cognitive Process)

ज्ञान एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसे हम मानसिक योग्यताओं (Mental Abilities) की सहायता से अर्जित करते हैं। ज्ञान को विकसित करने में संज्ञानात्मक प्रक्रिया निम्नलिखित ढंग से अपना योगदान देती है–

1) **अनुभूति (Perception) के माध्यम से**–जब हम किसी घटना या प्रक्रिया या वस्तु का प्रत्यक्षीकरण करते हैं अर्थात् सोच समझ कर देखते हैं तब जो निष्कर्ष या अवलोकन प्राप्त होता है, वह ज्ञान बन जाता है।

2) **तार्किक क्रम (Logical Series) में व्यवस्थित करना**–'ज्ञान' की स्थिति में आने के लिए अवलोकन या निष्कर्ष को तार्किक रूप से व्यवस्थित करना आवश्यक होता है।

3) **परिभाषित (Technical) करने के योग्य बनाना**–ज्ञान को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए इसको परिभाषित करना आवश्यक होता है। अतः हम कह सकते हैं कि परिभाषित करने योग्य बातों को ही ज्ञान माना जाता है।

ज्ञान की विशेषताएँ (Characteristics of Knowledge)

ज्ञान की विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है–

1) ज्ञान शक्ति होती है।
2) ज्ञान समाप्त नहीं हो सकता है।
3) सत्यता का नाम ही ज्ञान है।
4) ज्ञान की सीमा नहीं होती है। अतः ज्ञान जगत अनन्त है। इसमें ज्ञात एवं अज्ञात सभी ज्ञान समाहित रहता है।
5) ज्ञान को प्राप्त करने के लिए अनुभव अनिवार्य है।
6) ज्ञान का स्रोत सूचना है।
7) ज्ञान तीन तथ्यों पर आधारित है– सत्यता, सबूत एवं विचार।
8) कोई व्यक्ति जितना ज्ञान प्राप्त करेगा उसके ज्ञान की भूख और बढ़ती जाएगी।

प्रश्न 12–निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए–
Write a short note on the following-

1) ज्ञान की पूर्वापेक्षाएँ (Pre-Requisites of Knowledge)
2) ज्ञान के उद्देश्य (Objectives of Knowledge)

उत्तर– ज्ञान की पूर्वापेक्षाएँ (Pre-Requisites of Knowledge)

प्लेटो के अनुसार, ज्ञान का रूप लेने के लिए सूचनाओं को निम्न तीन आवश्यक मानकों पर खरा उतरना आवश्यक है–

1) **तर्क की कसौटी (Test of Logic)**–ज्ञान को तर्क की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए। निरौपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत ज्ञान का स्वरूप तो निश्चित ही होता है परन्तु ज्ञान प्रदान करने की विधि अलग होती है। समय और स्थान की सीमाओं से सीमित हुए बिना ज्ञान का हस्तांतरण किया जाता है। वर्तमान समय में पत्राचार एवं दूरवर्ती शिक्षा (Distance Education) कार्यक्रम, निरौपचारिक शिक्षा के लिए एजेंसी का काम करते हैं। सूचनाओं को जब तक तर्क पर आधारित नहीं बना लिया जाता, तब तक ज्ञान को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। इसलिए ज्ञान को तर्क की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए।

2) **वैधता की कसौटी (Test of Validity)**–सत्यता पर आधारित होने का यह अभिप्राय है कि वैध ज्ञान (Valid Knowledge) का स्वरूप तभी प्रकट हो सकता है जब वह ज्ञान किसी घटना की सत्यापित अवलोकन पर आधारित हो। कपोल कल्पनाओं पर आधारित बातों एवं सूचनाओं को वैध ज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। सत्यता ही ज्ञान को वैध बनाती है। (Reality and truth makes knowledge valid.)

3) **सार्वभौमिकता की कसौटी (Test of Universality)**– ज्ञान में जितना अधिक सार्वभौमिकता का तत्व समाहित होगा, ज्ञान उतना ही विश्वसनीय होगा। जिस ज्ञान को प्रत्येक परिस्थिति में प्रयोग किया जा सके वहीं ज्ञान सार्वभौमिक प्रकृति का होता है।

ज्ञान के उद्देश्य (Objectives of Knowledge)

ज्ञान के उद्देश्य को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं–

1) **समस्याओं के समाधान की युक्ति प्रदान करना**–ज्ञान, जीवन से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के लिए युक्ति प्रदान करता है। बिना ज्ञान के न तो मनुष्य समस्याओं को पहचान सकता है और न ही इन समस्याओं का समाधान ही प्रस्तुत कर सकता है। ज्ञान के कारण, समस्याओं के समाधान में लगने वाले समय या अवधि में भी कमी आ जाती है। **उदाहरण के लिए** – शिक्षण सम्बन्धित समस्याओं का समाधान शिक्षा से सम्बन्धित ज्ञान से प्राप्त होता है। भाप की शक्ति के ज्ञान से भाप के रेल इंजन बनाने और यातायात सम्बन्धी समस्याओं का समाधान मिला।

Scanned by CamScanner

2) **किसी घटना और परिस्थिति को समझने में सहायक**–ज्ञान का एक उद्देश्य यह भी होता है कि यह किसी घटना और परिस्थिति को समझने में सहायक होता है। किसी भी वस्तु, स्थिति का ज्ञान उन्हें समझने में सहायक हो सकता है।

3) **क्रिया के लिए उपयुक्त क्षमता का विकास करना**–किसी भी क्रिया को (स्वैच्छिक क्रिया को छोड़कर) उचित तरीके से करने के लिए उपयुक्त क्षमता का विकास करना भी ज्ञान का एक उद्देश्य होता है।

4) **व्यक्तिगत विकास**–ज्ञान का एक उद्देश्य यह भी होता है कि मनुष्य का व्यक्तिगत विकास किया जा सके। व्यक्तिगत विकास के सभी आयामों जैसे– भाषा, कौशल, संचार, व्यक्तित्व, व्यवहार, अभिवृत्ति आदि को विकसित करना ज्ञान का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

5) **सूचनाओं को निश्चित आकार देना**–ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि सूचनाओं को एक निश्चित रूप दिया जाए। सूचनाएँ यहाँ–वहाँ बिखरी होती हैं अतः उनको सही एवं निश्चित रूप प्रदान करना ज्ञान का उद्देश्य हैं।

6) **व्याख्या करना**–ज्ञान व्याख्या करता है। ज्ञान के प्रमुख उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह भी है कि यह किसी भी प्रक्रिया, घटना या अवलोकन की व्याख्या कर सकता है। ज्ञान के ही माध्यम से जटिलता की व्याख्या की जाती है।

7) **व्यक्तिगत अनुभवों को सुदृढ़ करना**–ज्ञान, व्यक्तिगत अनुभवों के सुदृढ़ीकरण का कार्य करता है। हमारे व्यक्तिगत अनुभव जब तक किसी ज्ञान के सम्पर्क में नहीं आते तब तक व्यक्तिगत अनुभवों को ठोस रूप में नहीं कहा जा सकता।

8) **सिद्धान्त व नियमों का निर्माण**–प्रत्येक क्षेत्र में सूचनाओं के माध्यम से सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है जो सामान्यीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से निर्मित होते हैं। इन सिद्धान्तों व नियमों का निर्माण करना ज्ञान के महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक है।

9) **मानसिक विकास के लिए अवसर उत्पन्न करना**–ज्ञान मानसिक विकास के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करता है। ज्ञान हमारे मस्तिष्क के सामने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है जिससे हमारी बुद्धि की सहायता से मानसिक क्षमताओं का विकास होता है। **जैसे**– तर्क (Reason), अंकगणित (Arithmatic), प्रश्न (Questions) एवं विश्लेषण आदि के कारण हमारे मानसिक क्षमताओं में लगातार वृद्धि होती रहती है।

10) **प्रत्ययों का निर्माण**–कोई भी प्रत्यय हमारे समक्ष ज्ञान के कारण ही आता है। प्रत्यय ही हमारी समझ को विकसित करते हैं। ये प्रत्यय ही सम्पूर्ण समाज में सीखने के लिए उद्देश्य के रूप में रखे जाते हैं। ज्ञान का यह प्रमुख उद्देश्य है कि सभी महत्त्वपूर्ण अवलोकनों (Observations), तथ्यों (Facts) और वस्तुओं (Objects) से सम्बन्धित प्रत्ययों का निर्माण करे।

11) **शब्दों का निर्माण**–ज्ञान का एक उद्देश्य यह भी है कि व्याख्या एवं पहचान के लिए उपयुक्त शब्दों का निर्माण करे क्योंकि बिना शब्दों के ज्ञान का हस्तांतरण सम्भव नहीं होता है।

12) **समाज का विकास**–ज्ञान का उद्देश्य होता है समाज का समुचित विकास। कोई भी समाज अपने विकास के लिए समाज द्वारा संचित ज्ञान पर ही निर्भर करता है। जितना उन्नत ज्ञान होगा जितनी ज्ञान की विभिन्नता होगी वह समाज उतना ही ज्यादा विकसित होगा। ज्ञान का संचय और उसका प्रयोग समाज के विकास के लिए अनिवार्य शर्तों में से एक है।

13) **इतिहास और संस्कृति का विकास**–इतिहास के द्वारा संस्कृति का आगे की पीढ़ी में हस्तान्तरण होता है। किन्तु इतिहास को समझने के लिए एक विशेष प्रकार का ज्ञान आवश्यक होता है। **उदाहरण के लिए**– पुरातत्व सम्बन्धी ज्ञान के विकसित होने से पहले इतिहास तो विद्यमान था परन्तु इतिहास का विकास नहीं हो पाया था। इतिहास के तथ्यों का विश्लेषण करने में ज्ञान महत्त्वपूर्ण है। संस्कृति ज्ञान पर निर्भर है। बिना ज्ञान के संस्कृति की प्रगति सम्भव नहीं है। कार्य करने का ढंग, व्यवहार का तरीका आदि संस्कृति से सम्बन्धित पहलुओं का विकास ज्ञान का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

14) **सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विश्लेषण**–ज्ञान, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक विश्लेषण करता है। सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियों का विश्लेषण करना, विकास एवं वृद्धि की मात्रा एवं दिशा निर्धारित करने में सहायक होता है।

15) **बौद्धिक सम्पदा का उत्पादन**–मनुष्य जो भी सोचता है उसे करता है उसका विकास कर मस्तिष्क में सृजित करता है, वो उसकी अपनी बौद्धिक सम्पदा माना जाता है। इस बौद्धिक सम्पदा को सम्पदा के रूप में विकसित करना ज्ञान का प्रमुख उद्देश्य होता है। ऐसी बौद्धिक सम्पदाएँ, सम्पूर्ण समाज के कल्याण के काम आती हैं और व्यक्तिगत बौद्धिक सम्पदा के रूप में स्थापित रहती हैं।

Scanned by CamScanner

अध्याय–5

शिक्षा की समर्थन प्रणाली
SUPPORT SYSTEM OF EDUCATION

अधिगम संसाधनों की पुनः अवधारणा (RE-CONCEPTUALISM OF LEARNING RESOURCES)

प्रश्न 1– अधिगम संसाधन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write short notes on the Learning Resources.

उत्तर– अधिगम संसाधन का अर्थ (Meaning of Learning Resources)
अधिगम संसाधन से अभिप्राय उन उपकरणों और प्रक्रियाओं से है जो शिक्षण को और अधिक रोचक, अधिक उत्तेजक, अधिक मजबूत और अधिक प्रभावी बनाने में सहायता करती हैं।

दूसरे शब्दों में, अधिगम संसाधन कोई भी ऐसे उपकरण हैं जो शिक्षकों की शिक्षण और छात्रों की शिक्षा में सहायता करते हैं। इस प्रकार, अधिगम संसाधन, शिक्षण सीखने की सामग्री हैं।

डी. विली के अनुसार, अधिगम संसाधन डिजिटल कलाकृतियाँ हैं जिन्हें फिर से शिक्षण और सीखने के अवसरों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

According to D. Wiley, "Learning resources are the digital artifacts that can be re-used in teaching and learning opportunities."

अधिगम संसाधन का उद्देश्य (Objectives of Learning Resources)
अधिगम संसाधन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–
1) छात्रों के लिए सीखने के अनुभव के स्रोत प्रदान करने के लिए।
2) शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान छात्रों और शिक्षकों के बीच बातचीत को सुगम बनाने के लिए।
3) छात्रों को सीखने, छात्रों के सीखने के अनुभवों को व्यापक बनाने और विभिन्न सीखने की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करने के लिए।
4) छात्रों को स्वयं के लिए ज्ञान का निर्माण करने और प्रभावी सीखने की रणनीतियों, सामान्य कौशल, मूल्यों और व्यवहारों को विकसित करने में सहायता करने के लिए।
5) जीवनभर सीखने के लिए एक ठोस आधार तैयार करना।

प्रश्न 2– पाठ्य–पुस्तकों का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए। पाठ्य–पुस्तकों की विशेषताएँ, आवश्यकता एवं प्रकार लिखिए।
Give the Meaning and Definitions of Text Book. Write Characteristics, Need and Types of Text Books.

या
निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
Write short notes on the following:
1) **पाठ्य–पुस्तकों के चयन के सिद्धान्त (Principles of Selecting Text Books)**
2) **पाठ्य–पुस्तकों का महत्त्व (Importance of Text Books)**
3) **वर्तमान समय में प्रयोग की जाने वाली पाठ्य–पुस्तकों में पाई जाने वाली त्रुटियाँ (Errors Found in Text Books used at the Present Time)**
4) **पाठ्य–पुस्तक में सुधार हेतु सुझाव (Suggestions for Improvement in Text Book)**

उत्तर– पाठ्य–पुस्तकों (Text Book)
पाठ्य–पुस्तकें अनुदेशात्मक सामग्री के रूप में सर्वाधिक प्रयोग की जाती हैं। आधुनिक शिक्षा–प्रणाली में पाठ्य–पुस्तकें प्रमुख हैं। पाठ्य–पुस्तकें पाठ्यक्रम की वास्तविक रूपरेखा को प्रस्तुत करती हैं। शिक्षक तथा छात्र दोनों के लिए ही पाठ्य–पुस्तकें उपयोगी हैं। पुस्तकों के माध्यम से अतीत का ज्ञान तथा अनुभव संचित किए जाते हैं। ये अनुभव आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन करते हैं। अतः "किसी विषय के ज्ञान को जब एक स्थान पर पुस्तक के रूप में संगठित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तो उसे पाठ्य–पुस्तक कहा जाता है। "पाठ्य–पुस्तक कक्षा–कक्ष के प्रयोग हेतु निर्धारित की गई पुस्तक है।

अतः विद्वानों के अनुसार, पाठ्य–पुस्तकें अध्ययन क्षेत्र की किसी शाखा की एक प्रमाणित पुस्तक होती है।

हेरोलिकर के अनुसार, "पाठ्य–पुस्तक ज्ञान, आदतों, भावनाओं, क्रियाओं तथा प्रवृत्तियों का सम्पूर्ण योग है।"

लैंज के अनुसार, "पाठ्य–पुस्तक अध्ययन क्षेत्र की किसी शाखा की एक प्रमाणित पुस्तक होती है।"

हॉल क्वेस्ट के अनुसार, "पाठ्य–पुस्तक शिक्षण अभिप्रायों के लिए व्यवस्थित प्रजातीय चिन्तन का एक अभिलेख है।"

पाठ्य–पुस्तकों की विशेषताएँ (Characteristics of Text Books)
एक उत्तम पाठ्य पुस्तक में निम्नलिखित गुण या विशेषताएँ होना आवश्यक है क्योंकि यही गुण एवं विशेषताएँ पुस्तकों को विशिष्टता प्रदान करती हैं। अच्छी पाठ्य–पुस्तकों में मनोवैज्ञानिक तथा तार्किक दो प्रकार की विशेषताएँ होती हैं। पहले हम मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का वर्णन करेंगे–
1) **मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ**–पाठ्य–पुस्तक की मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–
   i) **विषय–सामग्री**–पाठ्य–पुस्तकों की विषय सामग्री बालक की रुचि, मानसिक योग्यता तथा विकास की अवस्था के अनुसार होनी चाहिए। इन सभी का बालक

Scanned by CamScanner

की शक्तियों तथा मानव की क्रियाओं के विभिन्न क्षेत्रों एवं वास्तविक जीवन से इतना सम्बन्ध अवश्य हो कि प्रत्येक बालक की अपनी–अपनी रुचि, योग्यताओं तथा आवश्यकताओं के अनुसार वास्तविक क्रियाओं में सक्रिय होकर अनुभव प्राप्त करे। ये सभी प्राप्त अनुभव भावी जीवन की क्रियाओं में उचित प्रशिक्षण प्रदान करके बालक को एक अनुभवी बालक बनाते हैं। पाठ्य–सामग्री को स्पष्ट करने के लिए ऐसे उदाहरणों का प्रयोग किया जाए जिससे बालक परिचित हो तथा सरलता से समझ सके। पाठ्य–सामग्री में विभिन्नता भी आवश्यक है। इससे मन्द, सामान्य, तथा प्रखर बुद्धि वाले सभी बालक अपनी–अपनी मानसिक आवश्यकता के अनुसार लाभ प्राप्त करते रहेंगे। अतः हम कह सकते हैं कि पाठ्य–सामग्री नैतिक, सामाजिक और चारित्रिक दृष्टि से उपयोगी होनी चाहिए।

ii) **भाषा शैली**–भाषा शैली भी बालक की रुचि तथा योग्यता और विकास के विभिन्न स्तरों के अनुसार होनी चाहिए। छोटी कक्षा में छोटे–छोटे, सरल एवं सरस शब्द प्रयोग किए जाएं और जैसे–जैसे कक्षा स्तर ऊपर उठता चला जाता है वैसे ही कठिन भाषा का उपयोग करना चाहिए। पाठ्य–पुस्तकों की शैली रुचिकर तथा मनोरंजक होनी चाहिए। इसमें ओज, माधुर्य तथा प्रसार गुणों का समावेश करना चाहिए। किसी भी पाठ्य–पुस्तक की भाषा–शैली पुस्तक की गुणवत्ता को प्रदर्शित करती है। भाषा का सरल व क्रमबद्ध होना पाठ्य–पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाती है। बालक के मन पर पुस्तक की भाषा–शैली का व्यापक प्रभाव पड़ता है। अतः भाषा–शैली के आधार पर पाठ्य–पुस्तक सुव्यवस्थित होनी चाहिए।

iii) **चित्रण**–पाठ्य–पुस्तकों में आवश्यकतानुसार स्पष्ट, बड़े, रंगीन चित्रों, मानचित्रों, रेखाचित्रों तथा तालिकाओं व सारणियों का उचित स्थान पर प्रयोग किया जाना चाहिए। पाठ्य–पुस्तक में उचित स्थानों पर तथ्योंका वर्णन करके पाठ्य–पुस्तक को रोचक तथा प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इन वस्तुओं तथा चित्रों के प्रयोग से पाठ्य–पुस्तक सुन्दर व बोधगम्य हो जाती हैं। ऐसी पाठ्य–पुस्तकें उचित ज्ञान प्रदान करती है तथा पाठ्य–पुस्तक महत्त्वपूर्ण बनती है। अतः पाठ्य–पुस्तक का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना जरूरी होता है कि पाठ्य–पुस्तक में किस प्रकार की पाठ्य–वस्तु का समावेश किया गया है।

iv) **बाह्य रूप (Get-Up)**–किसी भी पाठ्य–पुस्तक का बाह्य रूप अत्यन्त प्रभावशाली होना चाहिए। पाठ्य–पुस्तक देखने में यदि सुन्दर लगती है तो वह पाठ्य–पुस्तक प्रभावशाली होती है। उसकी बनावट, बाह्य आवरण, मुख पृष्ठ अत्यन्त सुन्दर व रोचक होने चाहिए। इससे बालकों में पाठ्य–पुस्तक को देखकर रुचि तथा जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि छोटी कक्षाओं की पाठ्य–पुस्तकों का आवरण रंगीन, चमकदार तथा चिकना होना चाहिए और बड़ी कक्षाओं की पुस्तकों को कलापूर्ण तथा सात्विक होना चाहिए। पुस्तक की जिल्द मजबूत होनी चाहिए। कागज अनुकूल तथा उचित होना चाहिए। पुस्तक की छपाई सीधी पंक्तियों में स्पष्ट व चमकीली और आकर्षक होनी चाहिए। अतः पाठ्य–पुस्तक के निर्माण में इन बातों का ध्यान रखना जरूरी होता है क्योंकि यही बातें पाठ्य–पुस्तक को शिक्षार्थी के लिए उपयोगी बनाती हैं।

v) **प्रारूप (Format)**–पाठ्य–पुस्तक प्रारूप में छोटे–बड़े शीर्षक की व्यवस्था, टाइपिंग तथा हाशिया और संकेत चित्रों सहित उपस्थित होने चाहिए। उपरोक्त सभी बातें किसी भी पाठ्य–पुस्तक को उचित स्थान प्रदान करती हैं। ये सभी बातें पाठ्य–पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाती हैं। अतः प्रत्येक स्तर के विद्यार्थी के लिए पाठ्य–पुस्तक लिखते समय लेखक तथा प्रकाशकों को इन सभी बातों का ध्यान रखना जरूरी है। पाठ्य–पुस्तक का समुचित व्यवस्थित होना पाठ्य–पुस्तक की गुणवत्ता को दर्शाता है।

vi) **मूल्य तथा उपलब्धता**–पाठ्य–पुस्तक का मूल्य उचित होना भी उसकी उपलब्धता को प्रकट करता है। किसी भी पाठ्य–पुस्तक को प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध होना चाहिए। किसी पाठ्य–पुस्तक का मूल्य यदि अधिक होगा तो बालक उसे खरीदने में असमर्थ रहेंगे। पाठ्य–पुस्तकें कम मूल्य पर हर जगह उपलब्ध होनी चाहिए। इससे विद्यार्थी को पुस्तक खरीदने में किसी परेशानी का सामना नहीं करना पड़ेगा। पाठ्य–पुस्तक की उपलब्धता लेखक व प्रकाशक दोनों के लिए ही लाभदायक होता है। अतः पाठ्य–पुस्तक के मूल्य का ध्यान रखने के साथ–साथ वह प्रत्येक जगह उपलब्ध हो जाए यह भी ध्यान रखना आवश्यक है।

2) **तार्किक विशेषताएँ**–पाठ्य–पुस्तक की तार्किक विशेषताएँ निम्न होती हैं–

i) **संगठन तथा व्यवस्था**–पाठ्य–पुस्तकों की विषय–सामग्री को तर्कपूर्ण तरीके से सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित करना चाहिए। ऐसा होने से पाठ्य–पुस्तक को पढ़ाने में सरलता होगी। पाठ्य–पुस्तक सरलता से पढ़ाई जा सकेगी। पाठ्य–सामग्री के छोटे–छोटे पाठों की घटनाओं को आवश्यक शीर्षकों सहित उचित स्थानों पर सरलता से अंकित कर पुस्तक को रोचक एवं प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है। पाठ्य–पुस्तक में आवश्यक शीर्षकों का उचित स्थान पर प्रयोग करना चाहिए। पाठ्य–पुस्तक के निर्माण में संगठन और व्यवस्था का होना अनिवार्य है।

ii) **विश्वसनीयता**–पाठ्य–पुस्तक को विश्वसनीय बनाने के लिए उसमें मौलिक विचार, निष्पक्ष तथा स्पष्ट होने चाहिए। पाठ्य–पुस्तक में आंकड़े और उदाहरण भी वैध होने चाहिए। पाठ्य–सामग्री की नवीनता तथा वास्तविकता विश्वसनीय सन्दर्भों द्वारा प्रमाणित होनी चाहिए। किसी भी पाठ्य–पुस्तक को वैधता देने में उसकी निष्पक्षता और स्पष्टता अनिवार्य होती है। पाठ्य–पुस्तक में उदाहरण और नवीन आँकड़े अंकित होने चाहिए।

iii) **विषय का प्रतिपादन**–पाठ्य–पुस्तक में आधुनिक सूचनाएं होनी अनिवार्य हैं। विषय का प्रतिपादन भी

Scanned by CamScanner

निश्चित ठोस तथा सुसंगठित होना चाहिए। पाठ्य–पुस्तक कें निर्माण में प्राचीनता का समावेश न होकर आधुनिकता का समावेश होना जरूरी होता है। कोई भी पाठ्य–पुस्तक आधुनिक विचारों से परिपूर्ण होनी चाहिए। अतः पाठ्य–पुस्तक में विषय का प्रतिपादन पाठ्य–पुस्तक की उपलब्धता दर्शाता है।

iv) **शिक्षण में सहायक**–पाठ्य–पुस्तक में बालकों तथा शिक्षकों के लिए निश्चित उद्देश्यों का होना अनिवार्य है। लेखक की भूमिका में शिक्षकों के लिए अध्यापन सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ देकर पुस्तक के आरम्भ में विषय–सूची तथा अन्त में अनुक्रमणिका की भी व्यवस्था करनी चाहिए। प्रत्येक अध्याय के अन्त में सार–संक्षेप के साथ–साथ सम्बन्धित साहित्य के प्रति उचित निर्देशन देते हुए अभ्यास के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का समावेश होना चाहिए। अतः पाठ्य–पुस्तक के निर्माण में जिन बातों का समावेश किया जाना आवश्यक है। उनका समावेश उचित स्थान पर करके पाठ्य–पुस्तक को महत्त्वपूर्ण बनाया जा सकता है।

पाठ्य–पुस्तकों के प्रकार (Types of Text Books)

आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार पाठ्य–पुस्तकें शिक्षक की जगह प्राप्त कर सकती हैं। ऐसी पाठ्य–पुस्तकों से छात्र भी स्वयं ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अच्छी पुस्तकें शिक्षक एवं शिक्षार्थी का निर्देशन करती हैं और अध्ययन और शिक्षण के लिए सहायक होती हैं।

पाठ्य–पुस्तकें मुख्य रूप से निम्न वर्गों में बाँटी गई हैं–

1) **सामान्य पाठ्य पुस्तकें**–ये पुस्तकें किसी विषय विशेष पर सामान्य अध्ययन की दृष्टि से लिखी जाती हैं। इनमें किसी निर्धारित पाठ्यक्रम को आधार नहीं बनाया जाता है। प्रकरण विषय सामग्री की उपलब्धता के आधार पर प्रदान किया जाता है। ये पुस्तकें अध्ययन एवं लेखन में विशेष रुचि वाले विद्वानों द्वारा लिखी जाती हैं। ये पुस्तकें शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों के लिए सहायक पुस्तक का कार्य करती हैं। इन पुस्तकों का उपयोग उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं या उनसे ऊपर की कक्षाओं में किया जाता है।

2) **पाठ्यक्रम पर आधारित पाठ्य–पुस्तकें**–ये पुस्तकें किसी निश्चित पाठ्यक्रम के आधार पर किसी निश्चित कक्षा स्तर के विद्यार्थियों के लिए लिखी जाती हैं परन्तु इन पुस्तकों का विस्तार क्षेत्र सीमित होता है। विद्यार्थियों के लिए इस प्रकार की पुस्तकें उपयोगी होती हैं क्योंकि ये पाठ्यक्रम से सीधी जुड़ी होती हैं। इन पाठ्य–पुस्तकों के निर्माण में शिक्षण उद्देश्यों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। ये पाठ्य–पुस्तकें सभी कक्षाओं में प्रयोग की जाती हैं। मुख्य रूप पाठ्यक्रम आधारित पाठ्य–पुस्तकें छात्रों द्वारा सबसे अधिक पठनीय होती है। इनका उपयोग करना छात्रों की आवश्यकता होती है। अपनी कक्षा के स्तर के अनुरूप छात्रों को पुस्तकों का क्रय करके वाचन करना अति आवश्यक होता है जिसे पढ़ कर वह ज्ञान अर्जित करके अपनी कक्षा की परीक्षा में उत्तीर्ण हो सके। इन पुस्तकों का विस्तृत अध्ययन करके छात्र अपने ज्ञान में वृद्धि करता है एवं अपने स्तर को बढ़ाता है। इन पाठ्य–पुस्तकों के पाठन के पूर्व निर्धारित लक्ष्य होते हैं। छात्र के सम्मुख भी सत्रारम्भ के समय ही एक लक्ष्य होता है जिसे प्राप्त करने के लिए छात्रों को इन पाठ्यक्रम आधारित पाठ्य–पुस्तकों का अध्ययन करना ही पड़ता है जिससे कि सत्रान्त तक वह अपना लक्ष्य प्राप्त करके अगली कक्षा हेतु योग्यता प्राप्त करता है।

3) **सन्दर्भ पुस्तकें**–इसके अन्तर्गत विशिष्ट प्रकार की पुस्तकें आती हैं तथा इनमें व्यापक ज्ञान का समावेश होता है। इनमें तथ्यों, प्रत्ययों, सूत्रों, घटनाओं आदि की व्याख्या गहराई से की जाती है। शिक्षक इनका प्रयोग सन्दर्भ के रूप में करता है। अतः ये पुस्तकें उच्च कक्षाओं के शिक्षण में सहायक होती हैं। इनका अध्ययन तथा प्रयोग उपयुक्त होता हैं। इन पुस्तकों का अध्ययन करना ज्ञान के स्तर में व्यापक रूप से विकास करना है। सन्दर्भ पुस्तकें शिक्षक तथा शिक्षार्थी को प्रत्येक क्षेत्र का ज्ञान प्रदान करती हैं।

4) **प्रचलित पाठ्य–पुस्तकें**–इस प्रकार की पाठ्य–पुस्तकों में पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित प्रकरण एक क्रम में प्रस्तुत की जाती हैं। ये पुस्तकें उदाहरणों तथा अन्य साधनों से परिपूर्ण होती हैं। इनके अन्तर्गत सन्दर्भ पुस्तकों का वर्णन भी होता है। इन पुस्तकों का अध्ययन यदि छात्र करते हैं तो उसे अन्य किसी स्रोत से ज्ञान की आवश्यकता नहीं होगी। अतः इस प्रकार की पाठ्य–पुस्तकों में छात्रों की जिज्ञासा शान्त करने की क्षमता होती है।

5) **ज्ञानात्मक पाठ्य–पुस्तकें**–ऐसी पुस्तकें ज्ञान पर आधारित होती हैं। यद्यपि सभी प्रकार की पुस्तकें ज्ञान पर आधारित होती हैं। पुस्तकों का यह प्रकार सभी प्रकार की पुस्तकों का मिला–जुला स्वरूप होता है। इसमें लेखक के अनुभव छात्रों की रुचि, उपयोगिता, आवश्यकता, मनोरंजन एवं ज्ञान के तत्वों का समावेश किया जाता है। ऐसी पुस्तकें यह आवश्यक नही कि पाठ्यक्रम के ही अन्तर्गत हो, ये पुस्तकें सहायक वाचन हेतु भीं लाभप्रद होती हैं। इनका पाठन यात्रा के दौरान, खाली समय के सदुपयोग अथवा कोई जानकारी प्राप्त करने हेतु किया जाता है।

6) **अनुभव आधारित पाठ्य–पुस्तकें**–ये पाठ्य–पुस्तकें व्यक्तिगत तथा सामूहिक शोध कार्यों को विशेष महत्त्व देती हैं। प्रत्येक अध्याय में शिक्षण बिन्दुओं को एक क्रम दिया जाता है जो मनोवैज्ञानिक होता है। इस प्रकार यह क्रम छात्रों को सीखने में सहायता देता है। इस क्रम में आकृतियाँ, चित्र आदि भी दिए जाते हैं। उदाहरणों के प्रयोग छात्रों के दैनिक जीवन से सम्बन्धित होते हैं। छात्रों को अभ्यास के लिए अवसर भी दिया जाता है। सीखने के अनुभव संश्लेषण विधि से प्रस्तुत किए जाते हैं। मूर्त चिन्तन को ही महत्त्व दिया जाता है। अमूर्त चिन्तन का इस पद में कोई महत्त्व नहीं होता। प्रतिभाशाली छात्रों के लिए यह पाठ्य–पुस्तकें अधिक उपयोगी नहीं होती हैं।

7) **तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार प्रचलित पुस्तकें**–समय परिवर्तनशील है जिसके अनुसार काल, परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न निर्मित होती हैं। इसी प्रकार पाठ्य–पुस्तकों के स्वरूप में भी अन्तर आ जाता है एवं तात्कालिक आवश्यकताएँ ही इन पुस्तकों के उपयोग हेतु पाठकों को प्रेरित करती है। **उदाहरण के लिए,** वर्तमान युग प्रतियोगी युग है। इस प्रतियोगी युग में विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से छात्रों को विभिन्न व्यवसायिक अवसर भी प्राप्त होते हैं। ये पुस्तकें छात्रों का मार्ग दर्शन करती हैं तथा सम्बन्धित ज्ञान को छात्रों हेतु उपलब्ध कराती हैं।

Scanned by CamScanner

8) **अनुदेशनात्मक पाठ्य–पुस्तकें**–ऐसी पाठ्य–पुस्तकें छात्रों का उचित मार्ग दर्शन करती हैं। ये पुस्तकें छात्रों को इस प्रकार अनुदेशित करती है कि छात्र स्वयं अपना ध्यान केन्द्रित कर सकता है। जिससे पाठ्य–वस्तु छात्रों हेतु स्पष्ट भी हो जाती है। ऐसी पाठ्य–पुस्तकों में छात्रों की रुचियों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। **जैसे**– कम्प्यूटर के अध्ययन हेतु एक अनुदेशनात्मक पुस्तक जो निश्चित नियमों पर आधारित होती है, छात्रों का मनोरजंन करने में अक्षम होती है। इन पुस्तकों की व्यवस्था तार्किक तथा सत्यता के आधार पर जाती है। यहाँ लेखक के विचारों को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है।

9) **अभिक्रमित अनुदेशित पाठ्य–पुस्तकें**–इन पाठ्य–पुस्तकों का विश्लेषण प्रचलित तथा अनुभव पर आधारित है। आज की पाठ्य–पुस्तकों में अनुदेशन का प्रयोग किया जाता है। अभिक्रमित अनुदेशित पाठ्य–पुस्तकों के पांच मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त बताए गए हैं–

i) छोटे–छोटे पदों का सिद्धान्त,
ii) तत्परता अनुक्रिया का सिद्धान्त,
iii) तत्कालीन जाँच का सिद्धान्त,
iv) स्वतः अध्ययन का सिद्धान्त एवं
v) छात्र परीक्षण का सिद्धान्त।

पाठ्य–पुस्तकों के चयन के सिद्धान्त (Principles of Selecting Text Books)

लैण्डन के अनुसार, "अच्छी पाठ्य–पुस्तक आवश्यक है परन्तु उसका चयन बुद्धिमानी से किया जाना चाहिए।" इनका चयन करते समय इनके गुणों का ध्यान रखना जरूरी होता है।

1) **उपयुक्त विषय–सामग्री (Suitable Curriculem)**
   i) पाठ्य–पुस्तक की विषय सामग्री छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए। छात्रों के वातावरण सम्बन्धी विषय–सामग्री पाठ्य–पुस्तक में निहित होनी चाहिए।
   ii) विषय–सामग्री भारतीय संस्कृति, जीवन और सभ्यता से सम्बन्धित होनी चाहिए।
   iii) पाठ्य–सामग्री में वे सभी तथ्य हो जिनका ज्ञान प्राप्त करना एक व्यय वर्ग के बालकों के लिए आवश्यक हो।
   iv) विषय–सामग्री सूचना प्रदान करने वाली तथा छात्रों के व्यावहारिक प्रयोग के लिए उपयुक्त होनी चाहिए।
   v) पाठ्य–सामग्री में विभिन्नता के साथ–साथ क्रमबद्धता भी आवश्यक होती है।
   vi) पाठ्य–सामग्री में नैतिकता की बातें अवश्य होनी चाहिए।

2) **भाषण तथा शब्दावली (Debate or Glossary)**
   i) छोटे बच्चों की पुस्तकें सरल तथा स्पष्ट भाषा में लिखी होनी चाहिए। बड़े बालकों की पुस्तकें भी ऐसी होनी चाहिए।
   ii) पाठ्य–पुस्तक में शब्दावली का चयन सतर्कता से किया जाना चाहिए। प्राथमिक कक्षाओं में प्रयोग होने वाली पाठ्य–पुस्तकों की शब्दावली सीमित होनी चाहिए।
   iii) शब्दावली इस तरह की होनी चाहिए जिसे शीघ्रता से पढ़ा जा सके।

3) **शैली (Style)**
   i) प्रारम्भिक कक्षाओं की पुस्तकें सरल तथा सीधे ढंग से लिखी जानी चाहिए। उच्च कक्षाओं के लिए भी ऐसी पुस्तकें होनी चाहिए।
   ii) पाठ्य–पुस्तक की शैली सरलता से जटिलता की ओर होनी चाहिए।
   iii) शैली में विभिन्नता होनी चाहिए जिससे छात्र के मानसिक गुणों का विकास हो सके।
   iv) शैली की विशेषता के लिए सरलता, सजीवता, भाव–प्रकाशन की स्पष्टता होनी चाहिए।

4) **व्यवस्था तथा नियोजन (Planing and Management)**
   i) पाठ्य–पुस्तक की विषय सामग्री सुव्यवस्थित और सुनियोजित होनी चाहिए।
   ii) पाठ्य–सामग्री विभिन्न पाठों, सोपानों और इकाइयों में विभाजित करके नियोजन को उत्तम रूप प्रदान किया जाना चाहिए।
   iii) अध्याय लम्बे नहीं होने चाहिए तथा विभिन्न विचारों को उपयुक्त शीर्षक के साथ अलग करना चाहिए।

5) **अभ्यास–प्रश्न (Exercise Question)**
   i) पाठ्य–पुस्तक के पाठ के अन्त में कक्षा तथा व्यक्तिगत कार्य के लिए विविध प्रश्न होने चाहिए।

6) **निदर्शन (Demonstration)**
   i) पाठ्य–पुस्तक के पाठ्य–विषय से सम्बन्धित तथ्यों को स्पष्ट करने के लिए चित्र, रेखाचित्र, मानचित्र आदि होने चाहिए।
   ii) निम्न कक्षाओं की पाठ्य–पुस्तकों में पूरे या आधे पृष्ठ के चित्र होने चाहिए।
   iii) उच्च कक्षा में चित्र पृष्ठ के चौथाई भाग से अधिक नहीं होने चाहिए।
   iv) चित्र आकर्षक होने चाहिए ताकि छात्रों को जाग्रत कर सकें।
   v) निम्न कक्षाओं की पाठ्य–पुस्तकों में चित्र रंगीन होने चाहिए।

7) **छपाई (Printing)**
   i) छपाई के लिए काली, गहरी तथा चमकने वाली स्याही का प्रयोग किया जाना चाहिए।
   ii) छपी पंक्तियों की दूरी एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर होनी चाहिए।
   iii) प्रत्येक पृष्ठ के चारों ओर पर्याप्त स्थान होना चाहिए।

8) **कागज (Page)**–पाठ्य–पुस्तक का कागज मोटा तथा चिकना होना चाहिए। कागज बहुत चमकने वाला ना हो, खुरदरा कागज नहीं होना चाहिए तथा पतले कागज भी उपयुक्त नहीं होते।

9) **जिल्द, सिलाई तथा आकार (Cover, Binding and Sizes)**–पुस्तक की जिल्द मोटी, मजबूत तथा टिकाऊ होनी चाहिए। जिल्द के ऊपर पाठ्य–पुस्तक से सम्बन्धित कोई रंगीन या आकर्षक चित्र होना चाहिए। जिल्द के ऊपर सुन्दर छपा हुआ कागज चढ़ाने से पुस्तक का आकर्षण बढ़ जाता है। छोटी कक्षाओं के लिए पाठ्य–पुस्तक का आकार चार तह का होना चाहिए। पुस्तक की सिलाई टिकाऊ होनी चाहिए ताकि पुस्तक सुगमता से खुल सके।

पाठ्य–पुस्तकों का आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Text Books)

पाठ्य-पुस्तकों के सन्दर्भ में किसी विद्वान ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है, कि "पुस्तकें मनुष्य की सबसे अच्छी मित्र

Scanned by CamScanner

होती हैं।" पाठ्य-पुस्तकों के महत्त्व को किसी भी युग में कमतर नहीं आँका जा सकता है क्योंकि पुस्तकें ही ऐतिहासिक प्रमाण हैं। इन पुस्तकों से पाठ्य–पुस्तकों का महत्त्व निम्न बिन्दुओं के द्वारा दर्शाया गया है–

1) **भूतकाल का ज्ञान**–मानव अपने छोटे से जीवन काल में स्वप्रयासों द्वारा समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। पाठ्य–पुस्तकें भूतकाल के ज्ञान को वर्गीकृत रूप में संगठित करती हैं। यदि पाठ्य–पुस्तकें न हों तो विभिन्न विषयों तथा कलाओं के ज्ञान को किसी भी प्रकार से संचित नहीं किया जा सकता। पाठ्य–पुस्तकें भूतकाल के ज्ञान का संचय करने में सहायक हैं।

2) **शिक्षकों के लिए पथ–प्रदर्शक**–पाठ्य–पुस्तकें शिक्षकों को पाठ योजनाएं बनाने तथा पाठ्य सामग्री को व्यवस्थित रूप से उपस्थित करने का संकेत देते हुए इस बात का ज्ञान देती हैं कि उन्हें बालकों को क्या तथा कितना ज्ञान देना है। इससे समय की बचत होती है। शिक्षकों की शक्ति का अपव्यय नहीं होता। पाठ्य–पुस्तकें शिक्षकों को यह ज्ञान भी प्रदान करती हैं कि उन्हें वर्ष में कितना कार्य किस प्रकार से करना है।

3) **बालकों के लिए प्रेरणा**–पाठ्य–पुस्तकें बालकों को स्पष्ट उद्देश्य बताती हैं। बालकों को कक्षा के निर्धारित पाठ्यक्रम का ज्ञान प्रदान करती हैं। जिससे उन्हें नवीनतम ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा उन्हें यह भी बताती हैं कि उनका कितना कार्य पूर्ण हुआ तथा कितना कार्य शेष बचा। इन सभी बातों से बालकों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरणा मिलती है कि जैसे–जैसे वे ऊँची कक्षाओं में प्रवेश करते रहते हैं वैसे ही उन्हें भाषण द्वारा पढ़ाई गई पाठ्य–सामग्री का ज्ञान पाठ्य–पुस्तकों के स्वतन्त्र स्वाध्याय द्वारा प्राप्त करने में खुशी होती है।

4) **नए शिक्षकों के लिए आवश्यक**–नए शिक्षकों तथा छात्राध्यापकों के लिए पाठ्य–पुस्तकों का प्रयोग बहुत ही आवश्यक है। इसका प्रमुख कारण है कि उन्हें एक निश्चित आधार की आवश्यकता होती है। यह आधार पाठ्य–पुस्तकों की सहायता से सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाता है। पाठ्य पुस्तकें नए शिक्षकों की पथ–प्रदर्शक मानी जाती हैं। इनके माध्यम से शिक्षकों को एक निश्चित ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः पाठ्य–पुस्तकें सभी प्रकार से छात्र व शिक्षकों के लिए उपयोगी हैं।

5) **अभिभावक तथा संचालकों के लिए उपयोगी**–पाठ्य–पुस्तकें अभिभावक तथा शिक्षा संचालकों के लिए उपयोगी हैं। इनसे अभिभावक तथा शिक्षा संचालकों को यह पता चलता है कि कक्षा में क्या पढ़ाया जा रहा है, कैसे पढ़ाया जा रहा है, किस प्रकार से पढ़ाया जा रहा है। इसी प्रकार शिक्षा संचालक पाठ्य–पुस्तकों के द्वारा शिक्षण विधियों का पता लगाते हैं। पाठ्य–पुस्तकें शिक्षा का सही तथा उचित निरीक्षण का साधन मानी जाती हैं। इनके द्वारा विद्यालय की शिक्षा का सही मूल्यांकन हो पाता है।

6) **एकीकरण**–लोकतन्त्रीय देश में प्रत्येक नागरिक स्वतन्त्र होता है। यह अपने देश में किसी भी स्थान पर आ–जा सकता है। वह इस कार्य के लिए पूर्ण स्वतन्त्र होता है। इसलिए प्रदेश में शिक्षा का स्तर समान होना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा में बालक प्रदेश के एक कोने से दूसरे कोने में जाकर आसानी से शिक्षा प्राप्त कर सकता है। यदि शिक्षा का स्तर समान नहीं होगा तो एक देश में अनेक तरीकों से शिक्षा प्रदान की जाएगी। पाठ्य–पुस्तकों का यही महत्त्व है कि इनके द्वारा प्रत्येक स्थान पर एक समान शिक्षा प्रदान किया जा सकता है।

7) **मन्दबुद्धि बालकों के लिए उपयोगी**–यदि देखा जाए तो पाठ्य–पुस्तकें सभी के लिए उपयोगी हैं लेकिन मन्दबुद्धि बालकों के लिए पाठ्य–पुस्तकें विशेष रूप से उपयोगी हैं। इसका कारण है प्रखर बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा मन्दबुद्धि वाले बालकों को एक ही पाठ्य सामग्री को कई बार पढ़ाने की आवश्यकता होगी। इसलिए यदि पाठ्य–पुस्तकें नहीं होंगी तो मन्दबुद्धि बालकों के लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। मन्दबुद्धि बालक की शिक्षा का उचित व सही साधन पाठ्य–पुस्तकें मानी जाती हैं क्योंकि अनेक बार पाठ्य–पुस्तकें पढ़ने से ही मन्दबुद्धि बालक अपना मानसिक विकास कर सकता है।

8) **गृह कार्य का आधार**–पाठ्य–पुस्तकें बालकों को गृह–कार्य देने तथा एकरूपता लाने में सहायता प्रदान करती हैं। पाठ्य–पुस्तकों से बालक गृह कार्य की योजना को घर पर आराम से पूर्ण कर सकता है। इनके द्वारा बालक अपने अभ्यास की प्रक्रिया को पूर्ण करता है। पाठ्य–पुस्तक के द्वारा ही बालक को गृह कार्य देना सरल होता है क्योंकि बालक पाठ्य–पुस्तकों की सहायता से ही कक्षा में दिए गए गृहकार्य को पूर्ण कर सकता है।

9) **पुनः याद करना**–कुछ बालकों का मानसिक विकास इतना धीमा होता है कि वे कक्षा में पढ़ी हुई बातों को शीघ्रता से भूल जाते हैं। पाठ्य–पुस्तकें ही भूली हुई बातों को याद दिलाने में सहायक होती हैं। इनके अभाव में बालक कक्षाकार्य को पूर्ण करने में असमर्थ रहेगा इसलिए पाठ्य–पुस्तकें शिक्षा प्रदान करने में अपनी भूमिका निभाती हैं।

वर्तमान समय में प्रयोग की जाने वाली पाठ्य–पुस्तकों में पाई जाने वाली त्रुटियाँ (Errors Found in Text Books Used at the Present Time)

वर्तमान समय में जिन पाठ्य–पुस्तकों का प्रयोग किया जा रहा है, उनमें कई प्रकार की त्रुटियाँ या दोष पाए जाते हैं जो इस प्रकार हैं–

1) वर्तमान में जिन पाठ्य–पुस्तकों का प्रयोग किया जाता है, उनसे छात्रों में रटने की प्रवृत्ति का विकास होता है जिसे किसी भी प्रकार से उचित नहीं कहा जा सकता है।

2) आज छात्रों में सृजनशीलता को विकसित कर पाना अत्यन्त कठिन हो गया है क्योंकि प्रायः पुरानी विषय सामग्री को ही पाठ्य–पुस्तकों में प्रयोग किया जाता है।

3) वर्तमान समय में प्रयोग की जाने वाली पाठ्य–पुस्तकों में नई–नई खोजों एवं अनुसन्धान कार्यों से सम्बन्धित जानकारी को, वर्णित नहीं किया जाता है। परिणामस्वरूप छात्रों को इनका ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता है जिससे वह ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष को भली–भाँति समझ नहीं पाते।

4) वर्तमान में प्रयोग की जाने वाली पुस्तकें बालकों की रुचियों एवं मानसिक स्थिति के दृष्टिकोण से पूर्णतः प्रतिकूल हैं।

Scanned by CamScanner

5) विभिन्न प्रकार के तथ्यों को स्पष्ट करने हेतु पुस्तकों में सहायक साधनों का प्रयोग बहुत ही कम मात्रा में किया गया है जिससे तथ्यों को समझ पाना छात्रों के लिए कठिन हो जाता हैं।
6) वर्तमान में प्रयोग की जाने वाली पुस्तकें भाषा शैली की दृष्टि से भी अनुपयुक्त है।
7) वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति धन कमाने की होड़ में लगा हुआ है। परिणामतः प्रकाशक पुस्तकों का अधिक मूल्य निर्धारित करते हैं जिससे पुस्तक सभी छात्रों की पहुँच से बाहर हो जाती हैं। उनका लाभ केवल कुछ ही और छात्रों तक सीमित रह जाता है।
8) वर्तमान समय में प्रयोग की जाने वाली पाठ्य–पुस्तिकाएँ मनोवैज्ञानिक रूप से कुशल नहीं होती हैं क्योंकि उनमें छात्रों की आवश्यकताओं एवं क्षमताओं का ध्यान नहीं रखा जाता है।

पाठ्य–पुस्तक में सुधार हेतु सुझाव (Suggestions for Improvement in Text Book)

माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा पाठ्य–पुस्तक सुधारने हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत किए हैं–

1) पाठ्य–पुस्तकों में सुधार के लिए 'पाठ्य–पुस्तक समिति' की स्थापना की जाए। समिति में जो सदस्य नियुक्त किए जाएं उनमें न्याय व्यवस्था का सदस्य, अथवा उच्च न्यायालय का न्यायाधीश, लोकसेवा आयोग का एक सदस्य, विश्वविद्यालय के उपकुलपति, प्रधानाध्यापक तथा दो प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री और शिक्षा संचालक होने चाहिएं।
2) समिति द्वारा कागज, मुद्रण, उदाहरण, चित्र आदि के सम्बन्ध में निश्चित मानदण्ड निर्धारित किए जाएं।
3) प्रत्येक विषय के लिए एकाकी पाठ्य–पुस्तकों को निर्धारित न किया जाए केवल भाषा से सम्बन्धित यह व्यवस्था की जाए।
4) अच्छे उदाहरणों के लिए संग्रहालय की स्थापना हो जिसे केन्द्र तथा राज्य सरकारें स्थापित करें।
5) प्रस्तावित पाठ्य–पुस्तकों में शीघ्रता से परिवर्तन न किए जाएं।
6) योग्य तथा निर्धन छात्रों को मुफ्त में पुस्तकें प्रदान की जाएं।

पाठ्य–पुस्तक सुधार में शिक्षा आयोग के सुझाव इस प्रकार हैं–

1) पाठ्य–पुस्तकों के गुणात्मक सुधार के लिए पाठ्य–पुस्तकों का उत्पादन राज्य द्वारा किया जाए।
2) आदर्श पाठ्य–पुस्तकें सरकारी शिक्षा विभाग द्वारा तैयार कराई जाएं। ये पुस्तकें सभी प्रकार से उत्तम होनी चाहिए।
3) पुस्तक लिखने के लिए प्रत्येक सम्भव क्षेत्र को प्रोत्साहित किया जाए।
4) अध्यापकों को पाठ्य–पुस्तकें लिखने के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाए।
5) प्रत्येक विषय के लिए प्रत्येक कक्षा में कम से कम 3 या 4 पुस्तकें निर्धारित की जाएं। अच्छी पुस्तक का चयन शिक्षक को करना चाहिए।
6) पाठ्य–पुस्तकें उपयुक्त चित्र, रेखाचित्र, मानचित्र तथा उदाहरणों से परिपूर्ण होनी चाहिए।
7) पुस्तकों के चयन में स्कूल के अधिकारी, अध्यापकों तथा प्रधानाध्यापक पर बाह्य दबाव न डाला जाए।
8) पुस्तकों में वर्ग, जाति, धर्म का स्थान नहीं होना चाहिए तथा पुस्तकें राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीयता को प्रदर्शित करती हों।
9) योग्य लेखकों द्वारा पाठ्य–पुस्तकें लिखी जाएं। अच्छी पुस्तक के लिए लेखकों को पुरस्कार दिया जाए।
10) योग्य लेखकों को राष्ट्रीय स्तर की पुस्तकें लिखने के लिए आमंत्रित किया जाए।
11) अच्छी पुस्तकों को तैयार कराने में केन्द्र तथा राज्य सरकार को योगदान देना चाहिए।
12) प्रत्येक राज्य में पाठ्य–पुस्तकों की सरकारी समिति होनी चाहिए जो उच्च कोटि की पुस्तकों का प्रकाशन कराए।

प्रश्न 3– कार्य–पुस्तिका किसे कहते हैं कार्य–पुस्तिका के उद्देश्य, प्रबन्धन एवं प्रबन्धन में की जाने वाली सावधानियों का उल्लेख कीजिए।
What is Workbook? Describe the Objective, Management and Precautions in the Management of Workbook.

उत्तर– कार्य–पुस्तिकाएँ (Work-books)

आरम्भिक स्तर से ही बच्चों में लिखने पढ़ने की रुचि उत्पन्न करने, स्व–अधिगम एवं कल्पना शक्ति के विकास के अनुरूप उनकी सम्प्राप्ति में स्थायित्व के लिए प्राथमिक कक्षाओं में भाषा एवं गणित विषयों की अलग–अलग कार्य–पुस्तिकाएँ विकसित की गई हैं। कार्य–पुस्तिका में छात्रों को करने के लिए विभिन्न कार्य दिए गए होते हैं जिन्हें करने के पश्चात् छात्र उन कार्यों में दक्षता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। ये कार्य विभिन्न विषयों के विभिन्न प्रकरणों से सम्बन्धित होते हैं। कार्य–पुस्तिका में विभिन्न प्रकृति तथा कठिनाई स्तरों के अभ्यास दिए होते हैं जिन्हें छात्रों को हल करना पड़ता है। कार्य–पुस्तिका छात्रों में अध्यवसाय, ईमानदारी, परिश्रम तथा आत्मविश्वास के गुण विकसित करती है तथा विषय–वस्तु को स्पष्ट करने में मदद करती है। कार्य–पुस्तिका छात्रों के ज्ञान में वृद्धि करती है तथा उन्हें दक्षता एवं कौशल प्रदान करती हैं। कार्य–पुस्तिका में प्रत्येक प्रकार के अभ्यास हेतु आवश्यक निर्देश, संकेत तथा उत्तर (समस्या समाधान) दिए होते हैं। छात्रों को चाहिए कि वे पहले निर्दिष्ट विषय–वस्तु को पढ़ें और समझें, फिर वर्क बुक के निर्देशों के अनुसार अभ्यास कार्य करने का प्रयास करें। कठिनाई होने पर वे दिए गए संकेतों से समझकर उसके अनुसार पुनः अभ्यास करें और समस्या समाधान तक पहुँचने का प्रयास करें।

कार्य–पुस्तिका के उद्देश्य (Objectives of Workbooks)

कार्य–पुस्तिका के उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1) कार्य पुस्तकें व्यावहारिक प्रयोग के लिए तैयार की जाती हैं।
2) बच्चों को विषय सामग्री का अधिक से अधिक अभ्यास कराना ही कार्य–पुस्तिकाओं को विकसित किए जाने का उद्देश्य है।
3) छात्रों के ज्ञान में वृद्धि तथा उन्हें दक्षता एवं कौशल प्रदान करने के लिए।

कार्य–पुस्तिका का प्रबन्धन (Management of Workbooks)

कार्य–पुस्तिका का प्रबन्धन इस प्रकार किया जाता है–

1) कार्य–पुस्तिका में पहले सरल और फिर कठिन प्रश्न कठिनाई स्तर में दिये गए होते हैं। प्रत्येक कार्य–पुस्तिका में प्रारम्भ में पूर्व ज्ञान के मापन हेतु एक परीक्षण रखा जाता है जो यह बताता है कि छात्र को उस विषय से सम्बन्धित मूलभूत तत्वों का ज्ञान है अथवा नहीं।

Scanned by CamScanner

2) उसके पश्चात् विषय से सम्बन्धित विभिन्न इकाइयों या प्रकरणों पर समस्याएँ प्रश्न, अभ्यास दिए गए होते हैं।
3) कार्य–पुस्तिका में प्रत्येक प्रकार के अभ्यास हेतु आवश्यक निर्देश, संकेत तथा उत्तर (समस्या समाधान) दिए होते हैं।

कार्य–पुस्तिका के प्रबन्धन में सावधानियाँ (Precautions in the Management of Workbooks)

कार्य–पुस्तिका के प्रबन्धन में निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिए–

1) कार्य–पुस्तिकाओं की विषय सामग्री पाठ्य पुस्तकों के अनुरूप होनी चाहिए।
2) कार्य–पुस्तिका में आकर्षक एवं रोचक चित्रों के माध्यम से अभ्यास कार्य दिए जाने चाहिए।
3) कार्य–पुस्तिका में प्रारम्भ में रंग भरने का प्रयास कराया जाए बाद में लिखने का। कार्य–पुस्तिका में पर्याप्त उदाहरण होने चाहिए जिससे बच्चे स्वतः ही अभ्यास कर सकेंगे।
4) अभ्यास कार्यों में रोचकता बनी रहे इसके लिए प्रश्नों की नवीनता एवं बारम्बारता का ध्यान रखा जाना चाहिए।

प्रश्न 4– मल्टीमीडिया का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए एवं मल्टीमीडिया की प्रमुख विशेषता, भेद तथा शैक्षिक क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए।

Give the meaning and Definitions of Multimedia. Describe the main characteristics, types and use of multimedia in the field of education.

या

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।–

Write short notes on the following:

1) **मल्टीमीडिया पी.सी. हेतु आवश्यक हार्डवेयर (Necessary Hardware Requirements for Multimedia P.C.)**
2) **मल्टीमीडिया का शैक्षिक क्षेत्र में उपयोग (Use of Multimedia in the Field of Education)**

उत्तर– मल्टीमीडिया (Multimedia)

मल्टीमीडिया, टैक्स्ट, पिक्चर्स, ग्राफिक्स, ध्वनि, एनीमेशन एवं वीडियो आदि का मिलाजुला रूप है जिन्हें कम्प्यूटर एवं अन्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। कम्प्यूटर के उद्भव से लम्बे समय तक इसकी स्क्रीन पर केवल टेक्स्ट का ही प्रयोग होता रहा। कम्प्यूटर हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर तकनीक में विकास के कारण अब कम्प्यूटर की स्क्रीन पर वीडियो पिक्चर के साथ उम्दा ध्वनि प्रभावों का भी आनन्द लिया जा सकता है। यह सब मल्टीमीडिया कार्यक्रमों के कारण ही सम्भव हो सका है।

मल्टीमीडिया **(Multimedia)** का शाब्दिक अर्थ होता है, **बहुमाध्यम**। इसका अभिप्राय ऐसे कम्प्यूटर उपकरणों से है जो अलग–अलग माध्यमों का एक उपयोग करना सम्भव बना देते हैं। वस्तुतः मल्टीमीडिया संयुक्त रूप से पाठ्य–सामग्री, चित्र, श्रव्य, एनीमेशन, सिमुलेशन तथा इण्टर–एक्टिविटी के कम्प्यूटर के माध्यम से किए जाने वाले उपयोग के रूप में भी जाना जाता है। इस माध्यम से प्रयोगकर्ता आपसी सम्पर्क, संचार व कुछ नया भी सृजित कर सकते हैं।

किसी मल्टीमीडिया प्रोजेक्ट में उपयोगकर्ता यदि इसे देख सुन या पढ़ तो सकता है पर स्वयं इसके संचालन के दौरान किस प्रकार का नियन्त्रण अथवा परिवर्तन नहीं कर सकता, इसे रेखीय मल्टीमीडिया (Multimedia) कहा जाता है, जैसे– टेलीविजन, सिनेमा, संगीत आदि। यदि उपयोगकर्ता उस मल्टीमीडिया प्रोजेक्ट में सक्रिय भागीदारी का निर्वाह करे और उसे आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सके इसे इन्टर–ऐक्टिव (Interactive Multimedia) कहा जाता है, जैसे– वीडियो गेम, कम्प्यूटर गेम आदि।

मल्टीमीडिया की प्रमुख विशेषताएँ (Main Characteristics of Multimedia)

मल्टीमीडिया की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1) सम्बन्धित मीडिया से अस्थाई तौर पर जुड़ सकते हैं।
2) निरन्तर माध्यमों में जमा और पुनः प्राप्त करना वास्तविक समय प्रक्रिया के अन्तर्गत होने वाला कार्य है।
3) इस मीडिया को भारी मात्रा में जमा स्थान की ओर तेजी से आँकड़ों के हस्तान्तरण की आवश्यकता होती है।
4) मल्टीमीडिया छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता प्रदान करता है।
5) मल्टीमीडिया के प्रयोग से शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को सरल एवं प्रभावी बनाया जा सकता है।
6) प्रत्येक शिक्षा प्रणाली (औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक) में सहायता प्रदान करता है।
7) दूरवर्ती शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।
8) शिक्षण–प्रशिक्षण के क्षेत्र में अत्यन्त सुगमता से प्रयोग किया जा सकता है।
9) शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को रोचक बनाने में सहायता प्रदान करता है।
10) पाठ्यसामग्री को सरल एवं बोधगम्य बनाने में सहायता प्रदान करता है।
11) मल्टीमीडिया के माध्यम से प्राप्त ज्ञान अधिक स्थाई होता है।

मल्टीमीडिया पी.सी. हेतु आवश्यक हार्डवेयर (Necessary Hardware Requirements for Multimedia P.C.)

1) **माइक्रोप्रोसेसर (Microprocessor)**–मल्टीमीडिया पी.सी. में तीव्र गति से चलने वाले प्रोसेसरों जैसे 80486 (DX2 या DX4) या पेन्टियम की आवश्यकता होती है क्योंकि यह कम्प्यूटर बहुत ज्यादा मात्रा में डाटा को हार्ड डिस्क से मॉनीटर अथवा स्पीकर की ओर ले जाने का कार्य करते हैं। इसलिए प्रयोग किए गए प्रोसेसरों का तीव्र एवं शक्तिशाली होना जरूरी है। आप अपने सिस्टम को सरलता से आधुनिक बना सकते हैं, यदि उसमें 80456 से कम का प्रोसेसर लगा होता है।
2) **मेमोरी (Memory)**–पी.सी. में बहुत अधिक मेमोरी की आवश्यकता होती है। इसमें कम से कम 3.4 मेगा बाइट की रैम (RAM) चाहिए होती है। पी.सी. में उपलब्ध रैम को बढ़ाने के लिए सिम (Sim or Single Inline Memory Module) की सहायता ली जा सकती है।
3) **मॉनीटर (Monitor)**–मॉनीटर एक आउटपुट डिवाइस है जिसका उपयोग कम्प्यूटर की सूचनाओं को दिखाने के लिए किया जाता है। स्क्रीन पर बनने वाली छवि छोटे–छोटे बिन्दुओं या पिक्सलों से बनती हैं। पिक्सलों की संख्या जितनी ज्यादा होती है, स्क्रीन पर तस्वीर उतनी ही सफाई के साथ आती है। एम.पी.सी. के लिए अच्छे रेजोल्यूशन वाले एस.वी.जी.ए. (SVGA or Super Video Graphic Array) मॉनीटरों की आवश्यकता होती है।

Scanned by CamScanner

4) **साउण्ड कार्ड (Sound Card)**–साउण्ड कार्ड के दो प्रमुख उद्देश्य होते हैं प्रथम – माइक्रोफोन से एनालॉग संकेतों को लेकर रिकॉर्ड करना तथा उन्हें बाइनरी फाइल में परिवर्तित करना। द्वितीय – इन फाइलों को स्पीकर, हेडफोन अथवा इलेक्ट्रॉनिक संगीत बाधों द्वारा प्ले करना है। हम एम.पी.श्री. में साउण्ड बोर्ड का प्रयोग करते हैं। साउण्ड बोर्ड एक विशिष्ट कार्ड होता है जिसका प्रयोग एम.पी.श्री. में रिकॉर्ड हुए संगीत एवं अन्य ध्वनियों को प्ले करने के लिए होता है।

5) **सी.डी.रोम (C.D. ROM)**–सी.डी. रोम कॉम्पेक्ट डिस्क है जिसमें सूचनाओं को भरते हैं। सूचनाओं को सी.डी. में केवल एक बार ही भरा जाता है। हम इसको सिर्फ पढ़ सकते हैं इस पर कुछ लिख नहीं सकते। अब सी.डी. रोम पी.सी. का एक आवश्यक अंग बन चुकी है जिसमे संगीत एवं वीडियो को डिज़िटल डाटा के रूप में एकत्रित किया जाता है जिन्हें किसी भी समय प्ले किया जा सकता है क्योंकि ये बड़ी मात्रा में सूचनाओं को जमा कर सकती है। ये मल्टीमीडिया प्रयोग के लिए उपयोगी होती है।

6) **फोटो सी.डी. (Photo C.D.)**–ये ऊँचे स्तर की फोटो जनित छवियों को जमा करने हेतु होता है। फोटो सी.डी. सिस्टम में एक ही बार प्रयोग होने वाली कॉम्पेक्ट डिस्क का प्रयोग फोटो ग्राफिक छवियों को जमा करने के लिए करते हैं जिनका मल्टीमीडिया में प्रयोग होता है। एक फोटो सी.डी. लगभग 100 फोटो को रख सकती है। सी. डी. पर फोटो हम 35mm कैमरे द्वारा ले सकते हैं। जब फिल्म को तैयार किया जाता है तो छवियाँ छोटी सी.डी. मास्टर डिस्क में हस्तान्तरित हो जाती हैं।

7) **कलर स्कैनर (Colour Scanner)**–कलर स्कैनर विभिन्न छवियों को डिजिटल रूप में परिवर्तित करता है। मल्टीमीडिया के प्रयोगकर्ता कलर छवियों या फोटो को कलर स्कैनर के प्रयोग द्वारा मल्टीमीडिया एप्लीकेशन में प्रयोग कर सकते हैं।

8) **स्पीकर (Speaker)**–पी.सी. के अन्दर छोटे लाउडस्पीकर लगे होते हैं जो विभिन्न ध्वनियों को उत्पन्न करने के काम आते हैं। स्पीकर इलेक्ट्रानिक संकेतों को आवाज में बदलते हैं तथा ऑडियो सी.डी. के सी.डी. रोम ड्राइव में स्पीकर के द्वारा संगीत और गीत सुन सकते हैं।

मल्टीमीडिया के प्रमुख प्रकार (Main Types of Multimedia)
मल्टीमीडिया कार्यक्रमों के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं–

1) **ग्राफिक्स (Graphics)**–इस तरह के मल्टीमीडिया कार्यक्रम के अन्तर्गत स्कैनर, डिजिटल कैमरा एवं कला सम्बन्धी अर्थात् रंग भरने सम्बन्धी कार्यों को शामिल किया जाता है। स्कैनर से विभिन्न प्रकार के चित्रों को स्कैन करके कम्प्यूटर में डाल दिया जाता है फिर उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार बनाया जा सकता है। इस तरह स्कैन किए हुए चित्र या किसी भी प्रकार की स्कैन की गई सामग्री को अपनी आवश्यकता अनुसार उसमें बदलाव भी कर सकते हैं। स्कैन की गई सामग्री में अन्य सामग्री को भी जोड़ (Add) सकते हैं।

   आधुनिक समय में कम्प्यूटर के माध्यम से स्कैनर का प्रयोग करके चित्रों को नवीनतम स्वरूप दिया जा सकता है। इसी प्रकार डिजिटल कैमरे द्वारा भी विभिन्न प्रकार के चित्रों के माध्यम से सी.डी. तैयार की जा सकती है। इसके द्वारा रिकॉर्डिंग भी की जा सकती है तथा कम्प्यूटर में स्कैन करके सी.डी. भी तैयार की जा सकती है। पेन्टिंग सम्बन्धी योग्यता प्रदान करने में भी इस कार्यक्रम का प्रयोग किया जाता है।

2) **श्रव्य कार्यक्रम (Audio Programme)**–इसके अन्तर्गत माइक्रोफोन, मिडी, की–बोर्ड एवं सूचनाएँ एकत्रित करने वाले यन्त्र आते हैं। इसमें माइक्रोफोन के माध्यम से हम अपनी आवाज दूसरे व्यक्ति तक पहुँचा सकते हैं अर्थात् अपना सन्देश या सूचना दूसरे व्यक्ति तक भेज सकते हैं। विभिन्न प्रकार की सूचनाओं एवं तकनीकी को लोड करने का कार्य सिन्थेसिअर्स के माध्यम से किया जा सकता है, जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

3) **दृश्य कार्यक्रम (Visual Programme)**–इसके अन्तर्गत डिजिटल कैमरे के विभिन्न उपयोगों को प्रदर्शित किया जाता है। इसके द्वारा विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करके स्क्रीन पर डिस्पले किया जाता है। जैसा कि इसके नाम से पता चल रहा है इसमें डिजिटल कैमरे के कार्यक्रमों को देखने के साथ–साथ इसमें आवाज सुनने के लिए हेडफोन का भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार यह ऑडियो एवं वीडियो दोनों रूपों में प्रयोग किया जा सकता है। डिजिटल कैमरे के माध्यम से आवाज एवं दृश्य दोनों एक साथ देखे एवं सुने जा सकते हैं अथवा अलग–अलग रूप में केवल देखे अथवा सुने जा सकते हैं।

4) **मिडी (MIDI or Musical Instrument Digital Interface)**–इस प्रकार के कार्यक्रम में सूचनाओं का आदान–प्रदान किया जा सकता है। इसके लिए हेडफोन व स्पीकर का प्रयोग किया जाता है। हेडफोन के माध्यम से सूचना देने वाला तथा प्राप्त करने वाला दोनों व्यक्ति सूचना सुन सकते हैं। जबकि स्पीकर से प्राप्त सूचनाओं को सार्वजनिक रूप से सुना जा सकता है अर्थात् इसमें केवल एक व्यक्ति को ही सूचना दी जा सकती है और एक समूह को भी। यह कार्यक्रम सूचनाओं के आदान–प्रदान का मौखिक माध्यम है।

मल्टीमीडिया का शैक्षिक क्षेत्र में उपयोग (Use of Multimedia in the Field of Education)
लोग एक–दूसरे से जुड़ने तथा अपने तथ्यों को समझाने के लिए विभिन्न प्रकार के माध्यमों की मदद लेते हैं। **जैसे**– शब्दों का, दृश्यों का, चिह्नों एवं आवाज़ों का। मल्टीमीडिया का अर्थ है संचार में एक से अधिक साधनों का उपयोग किया जाए। अन्य शब्दों में टेक्स्ट का संचालन आवाजें, ग्राफिक्स एवं चलचित्रों का एक साथ प्रयोग ही मल्टीमीडिया कहलाता है। अतः इसके मुख्य तत्व – टैक्स्ट, आवाजें, चित्र और चलचित्र, आदि हैं।

मल्टीमीडिया पर आधारित कम्प्यूटर में कुछ विशेष हार्डवेयर (जैसे साउण्ड कार्ड, माइक्रोफोन, स्पीकर इत्यादि), साफ्टवेयर का होना आवश्यक है–

1) मल्टीमीडिया के साथ जितने भी तकनीकी समागम हुए या हो रहे हैं इन्टरनेट की देन हैं। इसके द्वारा शिक्षा ज्ञान में बुद्धि की जा सकती है।

2) वर्तमान समय में मल्टीमीडिया का उपयोग शिक्षा उत्पादकता, सूचना प्रसार मनोरंजन व कार्यालयों के कार्यों

Scanned by CamScanner

में बहुविध हो रहा है। बड़े पैमाने पर सी.डी. रोम पर शिक्षा व ज्ञान सामग्रियाँ मौजूद हैं। मल्टीमीडिया ने सुस्त पठन पाठन प्रणाली को गतिशील व रोचक बनाया है।

3) मल्टीमीडिया के माध्यम से शिक्षा दूरस्थ स्थित व्यक्ति परस्पर विचार विनिमय ठीक उसी तरह से कर रहे हैं जैसे वे आमने सामने स्थित हों।

4) मल्टीमीडिया के माध्यम से वाणिज्य विषय में शोध कर रहे विद्यार्थियों को पठन पाठन सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाती है।

प्रश्न 5– शिक्षक सन्दर्शिका किसे कहते हैं? शिक्षक सन्दर्शिका की संरचना, उद्देश्य एवं प्रबन्धन का विस्तृत वर्णन कीजिए।

What is Teacher's Guide? Describe in detail Composition, Objectives and Management of Teacher's Guide.

या (or)

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

Write short notes on the following:

1) प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के लिए शिक्षक सन्दर्शिकाओं की विशेषताएँ (Characteristics of Teacher's Guide for Primary and Upper Primary Level)

2) शिक्षक सन्दर्शिका का प्रबन्धन (Management of Teacher's Guide)

उत्तर– शिक्षक सन्दर्शिका (Teacher's Guide)

कक्षा में अध्यापकों को दक्ष बनाने व आत्मविश्वासपूर्वक कक्षा शिक्षण करने हेतु राज्य परियोजना कार्यालय, उ.प्र. ने सभी के लिए शिक्षा परियोजना परिषद् लखनऊ द्वारा कक्षा 1 से कक्षा 8 तक कक्षावार, विषयवार, शिक्षक सन्दर्शिकाओं का प्रकाशन किया है जो सभी विद्यालयों में उपलब्ध है। शिक्षकों को प्रशिक्षण संस्थान द्वारा प्रशिक्षण देकर सन्दर्शिकाओं के प्रयोग की विधि बताई जाती है। इसमें पढ़ाने के लिए प्रबन्धन का स्पष्ट विवरण दिया जाता है। शिक्षक सन्दर्शिकाओं में प्रत्येक पाठ के अन्त में आपके लिए बॉक्स दिया जाता है जिसमें शिक्षक स्वयं नई विधियों को लिख सकते हैं।

शिक्षक सन्दर्शिका की संरचना (Composition of Teacher's Guide)

नवीन पाठ्यक्रमों तथा पाठ्य–पुस्तकों में प्रयुक्त उपागमों एवं प्रक्रिया का शिक्षकगण सरलतापूर्वक एवं सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकें इस दृष्टिकोण से प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर शिक्षक सन्दर्शिकाओं की रचना की गई है। शिक्षक सन्दर्शिकाओं की रचना निम्न प्रकार से की गई है–

1) शिक्षक सन्दर्शिकाओं में प्रत्येक पेज में पाठ्य–पुस्तक के पन्ने को शामिल किया गया है, जबकि उच्च प्राथमिक स्तर पर ऐसा नहीं है जिससे शिक्षक को पढ़ाने में सुगमता हो।

2) प्राथमिक स्तर की शिक्षक सन्दर्शिकाओं में पाठ्यवस्तु के उद्देश्य, पूर्व ज्ञान, प्रयुक्त सामग्री, शिक्षण अधिगम सामग्री प्रस्तुतीकरण की प्रविधियाँ रोचक गतिविधियाँ, अवलोकन, भ्रमण, प्रयोग आदि का विवरण सम्मिलित किया गया है।

3) पाठ को पढ़ाने हेतु समय प्रबन्धन का स्पष्ट विवरण दिया गया है।

4) अभ्यास प्रश्नों के सही उत्तर भी दिए गए हैं।

5) शिक्षक सन्दर्शिकाओं में प्रत्येक पाठ के अन्त में 'आपके लिए' बॉक्स स्पेस दिया गया है जिसमें शिक्षक स्वयं नवीन प्रविधियाँ लिख सकते हैं।

6) बच्चों को शैक्षिक सम्प्राप्ति के लिए सतत् मूल्यांकन प्रविधियों को सम्मिलित किया गया है।

7) शिक्षकों को अनुसमर्थन देने के लिए विषयवार सभी शिक्षक सन्दर्शिकाओं के प्रारम्भ में 'सामान्य जानकारी' शीर्षक के अन्तर्गत शिक्षण युक्तियों, सावधानियाँ, स्वयं करके सीखने के अवसरों का उल्लेख किया गया है।

शिक्षक सन्दर्शिका के उद्देश्य (Objectives of Teacher's Guide)

शिक्षक सन्दर्शिका का निर्माण निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की गई है–

1) मूल पाठ्य–पुस्तकों में दिए गए पाठों को शिक्षण की दृष्टि से उपयोगी व प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षक सन्दर्शिका की रचना की गई है जिससे बच्चों के भाषा कौशल में यथोचित व अपेक्षित विकास हो सके।

2) शिक्षक संदर्शिकाओं में पाठ्य पुस्तक के उद्देश्य पूर्व ज्ञान, प्रयुक्त सामग्री, शिक्षण अधिगम सामग्री, प्रस्तुतीकरण की विधियाँ, रोचक गतिविधियों, अवलोकन, भ्रमण एवं प्रयोग आदि का विवरण किया गया है। यह सन्दर्शिका शिक्षकों के लिए मार्गदर्शन का कार्य करती है।

3) इसमें विभिन्न कक्षाओं के लिए उपयोगी शिक्षण विधि के सरल प्रयोग रुचिपूर्ण अधिगम प्रक्रिया वर्णित होती है जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सरल व रुचिकर बनाया जा सकता है।

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के लिए शिक्षक सन्दर्शिकाओं की विशेषताएँ (Characteristics of Teacher's Guide for Primary and Upper Primary Level)

कक्षा 6–8 हेतु पृथक्–पृथक् सन्दर्शिकाओं के स्थान पर प्रत्येक विषय पर एक समेकित शिक्षक सन्दर्शिका की रचना की गई है। शिक्षक सन्दर्शिकाओं में इन विशेषताओं को सम्मिलित किया गया है–

1) शिक्षक सन्दर्शिका में नवीन पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता एवं उद्देश्य की सामान्य जानकारी दी गई है।

2) पाठ्य–पुस्तक में दिए गए क्रियाकलाप के अतिरिक्त अन्य क्रियाकलापों द्वारा सम्बोधन स्पष्ट किए गए हैं।

3) पाठ्य–पुस्तक में प्रयुक्त कठिन शब्दों के भावार्थ स्पष्ट करने हेतु विषयवार "शब्दावली" का उल्लेख किया गया है जिससे अध्यापकों को कठिन शब्दों के अर्थ की जानकारी होगी।

4) सन्दर्शिका में विषय–वस्तु का विस्तार, उद्देश्य, चिह्नित बिन्दु, प्रस्तुतीकरण, मूल्यांकन, खेल/गतिविधियाँ, प्रोजेक्ट कार्य आदि शीर्षकों के अन्तर्गत सामग्री दी गई है। विशेष शीर्षक के अन्तर्गत अतिरिक्त विकास में जानकारी भी दी गई है।

5) पाठ्य–पुस्तकों में यदि कहीं विषयवस्तु सम्बन्धी रिक्तता है तो उसे सन्दर्शिका में पूरा करने का प्रयास किया गया है।

6) मूल्यांकन हेतु सन्दर्शिका में अतिरिक्त प्रश्न दिए गए हैं।

7) ऐसे प्रश्नों की भी व्याख्या की गई है, जो शिक्षण के दौरान प्रायः कक्षा में बच्चों द्वारा जिज्ञासावश पूछे जाते हैं।

Scanned by CamScanner

8) संदर्शिका में विशिष्ट जानकारियों को विभिन्न प्रकार के सांकेतिक चिह्नों या आइकन के माध्यम से दर्शाया गया है।
9) शिक्षण के दौरान एक विषय का दूसरे विषय से (विषयगत अन्तर्सम्बन्ध) क्या सम्बन्ध है, और इसे कैसे विकसित किया जाए? इसके तरीके भी सन्दर्शिका में सुझाए गए हैं।
10) प्रत्येक विषय के सन्दर्शिका में उस विषय से सम्बन्धित नवाचारी गतिविधियों का उल्लेख किया गया है।
11) प्रत्येक विषय के सन्दर्शिका में उस विषय से सम्बन्धित सन्दर्भ साहित्य (पुस्तकों एवं पत्रिकाओं) की सूची दी गई है।
12) सन्दर्शिका में विद्यालय विकास अनुदान का उपयोग करते हुए विद्यालय के वातावरण को आकर्षक एवं शैक्षिक बनाने के लिए आवश्यक निर्देश एवं सुझाव दिए गए हैं।
13) सन्दर्शिका में सम्बन्धित विषयों के शिक्षण के लिए सहायक शिक्षण सामग्री एवं उसके निर्माण के तरीके भी सुझाए गए हैं।

शिक्षक सन्दर्शिका का प्रबन्धन (Management of Teacher's Guide)

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली तथा रुचिकर बनाने के लिए शिक्षक सन्दर्शिका का प्रबन्धन निम्न प्रकार से करना चाहिए–

1) शैक्षणिक स्तर को उच्चस्तरीय बनाने के लिए शिक्षक सन्दर्शिका का उपयोग सभी शिक्षकों को अनिवार्य रूप से करना चाहिए।
2) सत्र के प्रारम्भ होने पर ही शिक्षकों को यह सन्दर्शिकाएँ वितरित कर देनी चाहिए।
3) इस सन्दर्शिका में प्रतिवर्ष नवीन गतिविधियों को एवं शिक्षण विधियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।
4) शिक्षक सन्दर्शिका निःशुल्क वितरित की जानी चाहिए।
5) इनका प्रबन्धन भारतीय विद्यालयों की स्थिति को ध्यान में रखकर करना चाहिए।
6) सन्दर्शिका का निर्माण करते समय विशेषज्ञों का सहयोग अवश्य प्राप्त करना चाहिए।
7) कक्षा शिक्षण से पूर्व शिक्षकों को शिक्षक सन्दर्शिकाओं का प्रयोग करना चाहिए जिससे शिक्षण हेतु पाठ की तैयारी हो जाए। शिक्षक के समय शिक्षकों को शिक्षक सन्दर्शिकाओं का प्रयोग कक्षा में नहीं करना चाहिए बल्कि शिक्षण से पूर्व इसकी तैयारी करनी चाहिए।

प्रश्न 6– शब्दकोश से आपका क्या अभिप्राय है? शब्दकोश की विशेषताएँ एवं शब्दकोश का प्रयोग एवं प्रबन्धन लिखिए।

What do you mean by Dictionary? Write the Characteristics, Use and Management of Dictionary.

उत्तर– शब्दकोश (Dictionary)

सभ्यता और संस्कृति के उदय से ही मानव जान गया था कि भाव के सही सम्प्रेषण के लिए सही अभिव्यक्ति आवश्यक है, सही अभिव्यक्ति के लिए सही शब्द का चयन आवश्यक है तथा सही शब्द के चयन के लिए शब्दों का संकलन आवश्यक हैं। शब्दों और भाषा के मानकीकरण की आवश्यकता समझ कर आरम्भिक लिपियों के उदय से बहुत पहले ही मनुष्य ने शब्दों का लेखाजोखा रखना शुरू कर दिया था। इसके लिए उसने कोश बनाना शुरू किया। कोशों में शब्दों को एकत्र किया जाता है।

शब्दकोश एक बड़ी सूची या ऐसा ग्रन्थ है जिसमें शब्दों की वर्तनी, उनकी व्युत्पत्ति, व्याकरण निर्देश, अर्थ, परिभाषा, प्रयोग और पदार्थ आदि का सन्निवेश होता है। शब्दकोश एकभाषीय हो सकते हैं, द्विभाषिक हो सकते हैं या बहुभाषिक भी हो सकते हैं। अधिकतर शब्दकोशों में शब्दों के उच्चारण के लिए भी व्यवस्था होती है, जैसे– अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि में, देवनागरी में या ऑडियो संचिका के रूप में। कुछ शब्दकोशों में चित्रों का सहारा भी लिया जाता है। कुछ शब्दकोश किसी विषय विशेष से सम्बन्धित होते हैं, जैसे– 'मनोविज्ञान–शब्दकोश अथवा 'शिक्षा–शब्दकोश' आदि। आजकल विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित शब्दकोश भी उपलब्ध होते हैं, जैसे– विज्ञान शब्दकोश, चिकित्सा शब्दकोश, विधिक (कानूनी) शब्दकोश, गणित का शब्दकोश आदि। कुछ शब्दकोश सामान्य जाति के लिए उनकी भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों के निवारणार्थ भी तैयार किए जाते हैं, जैसे– Merrian Webster's "Collegiate Dictionary' अथवा 'भार्गव–शब्दकोश' आदि।

शब्दकोश की विशेषताएँ (Characteristics of Dictionary)

शब्दकोश में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

1) शब्दकोश में शब्द उनके क्रमानुसार दिए होते हैं ताकि वांछित शब्द खोजने में कोई परेशानी न हो।
2) अच्छे शब्दकोशों से पर्यायवाची तथा विलोम शब्दों का भी पता चलता है। शब्दों के संक्षिप्त रूप भी ज्ञात होते हैं।
3) अधिकतर प्रयोग में आने वाले शब्दों के संकेत तथा सूत्र भी दिए जाते हैं।
4) जहाँ आवश्यकता होती है वहाँ शब्द से सम्बन्धित जैविक (Biographical) तथा (Geographical) नाम भी दिए जाते हैं।
5) शब्दों को लिखने की शैली तथा उनके उच्चारणों को भी स्पष्ट किया गया होता है। शब्दकोश के शुरू में एक व्याख्यात्क विवरण भी दिया जाता है जो यह बताता है कि शब्दकोश का प्रभावशाली उपयोग कैसे किया जाए।
6) बहुत–से अच्छे शब्दकोशों में शब्दों के सम्बन्धित अन्य अर्थ भी समावेशित किए जाते हैं।
7) शब्दकोशों में व्याकरण के आधार पर उनके वर्ग (यथा संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण आदि) भी चिह्नित किए जाते हैं।
8) बहुत–से शब्दकोश, शब्दों के अर्थ के साथ–साथ, उन शब्दों की परिभाषा भी देते हैं तथा कुछ शब्दकोशों में शब्दों के उद्भव, विकास तथा उसके इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया होता है एवं किस शब्द को कब और कहाँ तथा किस प्रकार से उपयोग करना चाहिए इसकी भी जानकारी दी गई होती है।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि शब्दकोश वास्तव में 'गागर में सागर' का प्रयोग करते हैं। छात्रों को शब्द सम्बन्धी कठिनाई आने पर तुरन्त शब्दकोश की सहायता लेनी चाहिए। शब्दकोश छात्रों के शब्द भण्डार बढ़ाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

शब्दकोश का प्रयोग एवं प्रबन्धन (Use and Management of Dictionary)

शिक्षक तथा छात्र दोनों को शब्दकोश का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। छात्र शिक्षक से शब्दकोश का प्रयोग सीख सकता है। शब्दकोश को देखने के लिए सर्वप्रथम अक्षरों के क्रम का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके आधार पर ही शब्दकोश में

Scanned by CamScanner

शब्दों के अर्थ देखे जा सकते हैं एवं मात्राओं के क्रम पर भी विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। अक्षरों के क्रम के आधार पर किसी भी शब्द का अर्थ शब्दकोश में सरलता से देख सकते हैं।

शिक्षक एवं छात्र दोनों के लिए शब्दकोश मार्गदर्शन का कार्य करता है अतः इसके प्रबन्धन के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए–

1) शब्दकोश छात्रों के मानसिक स्तर के अनुरूप होना चाहिए ताकि वे शब्दकोश का प्रयोग सीखकर इसका लाभ उठा सकें।
2) शब्दकोश में पाठ्य सामग्री के शब्द समाहित होने चाहिए ताकि छात्र उन्हें व्यावहारिक रूप में प्रयुक्त कर सकें।
3) चूंकि शब्दकोश स्थाई होता है अतः शब्दकोश की छपाई तथा प्रयुक्त कागज उच्च कोटि का होना चाहिए। जिससे छात्र तथा शिक्षक लम्बे समय तक इसका प्रयोग कर सकें।
4) शब्दकोश का प्रयोग प्रमाण के रूप में किया जाता है अतः शब्दकोश में किसी भी प्रकार त्रुटि नहीं होनी चाहिए तथा प्रति वर्ष इसकी समीक्षा भी होनी चाहिए।
5) समय–समय पर शब्दकोश में संशोधन करना चाहिए ताकि उसकी व्यापकता में वृद्धि हो सके।
6) शब्दकोशों को सुरक्षित रखने के लिए कीटनाशक औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

विद्यालय का परिवीक्षण एवं मूल्यांकन (MONITORING AND EVALUATION OF SCHOOL)

प्रश्न 7– परिवीक्षण से आप क्या समझते हैं? परिवीक्षण की उद्देश्य एवं उपयोगिता लिखिए।
What do you mean by Monitoring? Write the Objectives and Utility of Monitoring.

उत्तर– परिवीक्षण (Monitoring)
शिक्षा के क्षेत्र में परिवीक्षण (मॉनीटरिंग) शब्द प्राचीन समय से ही प्रयोग में लाया जा रहा है। प्राचीन शिक्षा–प्रणाली में परिवीक्षण का विशेष महत्त्व था तथा वर्तमान समय में भी इसका विशेष महत्त्व है अर्थात् आज कक्षा में परिवीक्षक (Monitor) की प्रथा प्रचलित है। परिवीक्षक कोई भी हो लेकिन उसके कार्य एवं दायित्व अपना विशेष स्थान रखते हैं। एक कक्षा परिवीक्षक (Monitor) का मुख्य कार्य एवं दायित्व यह है कि वह कक्षा में शिक्षक की अनुपस्थिति में कक्षा अनुशासन बनाए रखे। छात्रों के कार्य एवं व्यवहार को बनाए रखना तथा उन पर नियन्त्रण रखते हुए कक्षा को अनुशासित करें। इसके साथ–साथ शैक्षिक संस्थान के मानकों (Norms) को बनाए रखने में सहयोग करे। ठीक उसी प्रकार प्रधानाध्यापक अपने अधीनस्थों को कार्य एवं उत्तरदायित्व सौंपता है। प्रधानाध्यापक उनकी देखभाल करता है। उनका आंकलन करता है। उनके कार्य एवं उत्तरदायित्व का अवलोकन करता है कि जो कार्य एवं उत्तरदायित्व दिए गए हैं वे उचित दिशा में हो रहे हैं कि नहीं, क्योंकि पूर्णरूपेण समस्त कार्यों एवं उत्तरदायित्वों की जवाबदेही प्रधानाध्यापक की ही होती है। इसलिए वह सम्पूर्ण कार्यप्रणाली को नियन्त्रित करता है, उनमें विकास तथा सुधार करने का प्रयास करता है।

परिवीक्षण के उद्देश्य (Objectives of Monitoring)
परिवीक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1) शैक्षिक संस्थाओं को शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता करना।
2) शैक्षिक संस्थाओं के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए उपयुक्त समालोचना करना।
3) शिक्षकों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में होने वाले शोधों से परिचित कराना।
4) शिक्षकों को सेवा शिक्षा प्रदान करना।
5) एक संस्था की उत्तम पद्धतियों का दूसरी संस्था में प्रसारित करना।
6) शिक्षण संस्थानों के कार्यों का अवलोकन एवं मूल्यांकन करना।

परिवीक्षण की उपयोगिता (Utility of Monitoring)
परिवीक्षण की उपयोगिता निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट की जा सकती है–

1) परिवीक्षण (Monitoring) से शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन की कार्य प्रणाली में प्रभावशीलता आती है और शिक्षा का गुणात्मक विकास होता है।
2) परिवीक्षण के द्वारा शैक्षिक संस्थान में अनुशासन बनाए रखने में सहायता मिलती है तथा शैक्षिक संस्थान का वातावरण शिक्षण–अधिगम योग्य बनता है।
3) परिवीक्षण की भूमिका से कार्यक्रमों का आंकलन या मूल्यांकन किया जाता है और सुधार एवं विकास हेतु सुझाव प्रदान किए जाते हैं।
4) परिवीक्षण (Monitoring) प्रधानाध्यापक को जवाबदेही में सहायता प्रदान करता है।
5) परिवीक्षण में नवीन अनुभव एवं सीखने के अवसर उपलब्ध होते हैं।
6) परिवीक्षण Monitoring) को राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया जाए तो सम्पूर्ण शिक्षा में गुणात्मक सुधार कर गुणवत्ता लाई जा सकती है।
7) परिवीक्षण की उपयोगिता यह भी है कि यह सभी व्यक्तियों (शिक्षा से सम्बन्धित) को विभिन्न क्षेत्रों में सम्भावनाएँ उपलब्ध कराता है।

प्रश्न 8– मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए तथा परिवीक्षण और मूल्यांकन प्रणाली पर प्रकाश डालिए।
Give the Meaning and Definitions of Evaluation and throw light on Monitoring and Evaluation System.

या (or)

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
Write short notes on the following:

1) **मूल्यांकन की विशेषताएँ (Characteristics of Evaluation)**
2) **मूल्यांकन के उद्देश्य एवं कार्य (Objectives and Functions of Evaluation)**
3) **परिवीक्षण और मूल्यांकन प्रणाली के घटक (Components of Monitoring and Evaluation System)**
4) **विद्यालय में परिवीक्षण और मूल्यांकन की भूमिक (Role of Monitoring and Evaluation in Schools)**

Scanned by CamScanner

मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Evaluation)

मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ है – मूल्य का अंकन। मापन द्वारा किसी वस्तु अथवा प्राणी को चिह्नों अथवा इकाई अंकों में व्यक्त किया जाता है लेकिन इन चिह्नों के द्वारा किसी वस्तु का अर्थग्रहण नहीं किया जा सकता है। इनके अर्थापन्न या मूल्य का निर्धारण करने हेतु मूल्यांकन किया जाता है। दूसरे शब्दों मापन द्वारा जहाँ किसी वस्तु को अंक प्रदान किया जाता है वहीं दूसरी ओर मूल्यांकन द्वारा उसका मूल्य निर्धारण अर्थात् उसकी स्थिति का पता लगाया जाता है। इस प्रकार मूल्यांकन एक विस्तृत, सोद्देश्यपूर्ण तथा निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों, में मूल्यांकन द्वारा किसी मापित मूल्य का अवलोकन कर उसकी उपयुक्तता तथा मूल्य का निर्माण किया जाता है।

मूल्यांकन को शिक्षा प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है क्योंकि यह शिक्षा प्रक्रिया के सभी स्तरों, उद्देश्यों के निर्माण, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, पाठ्यक्रम योजना, परीक्षण आदि सभी में पाया जाता है क्योंकि इसमें बालक सीखने के साथ–साथ वांछित शैक्षिक लक्ष्यों के अनुरूप अपने व्यवहार में भी परिवर्तन लाता है साथ ही साथ इसके द्वारा यह भी जानने का प्रयास किया जाता है कि बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किस सीमा तक हुआ है साथ ही विद्यालय में शिक्षण पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ आदि की सफलता के बारे में जानकारी प्राप्त करने में मूल्यांकन प्रक्रिया का सहारा लिया जाता है।

इसके द्वारा कार्य के विभिन्न स्तरों के अलग–अलग पक्षों का मूल्य निर्धारण किया जाता है, संक्षेप में मूल्यांकन एक व्यापक प्रक्रिया है; जिसके अन्तर्गत विषय–वस्तु की उपयोगिता के विषय में पता चलता है तथा इससे अच्छी तरह परिचित होने में निम्न परिभाषाएँ भी हमारी सहायता कर सकती हैं–

रेमर्स और गेज के अनुसार, "मूल्यांकन के अन्दर व्यक्ति या समाज अथवा दोनों की दृष्टि में जो उत्तम अथवा वांछनीय है उसको मानकर चला जाता है।"

According to H.H. Remmers and M.L. Gage, "Evaluation assumes a purpose or an idea of what is good or desirable from the standpoint of the individual or society or both."

डांडेकर के अनुसार, "मूल्यांकन हमें यह बताता है कि बालक ने किस सीमा तक किन उद्देश्यों को प्राप्त किया है।"

According to Dandekar, "Evaluation may be defined as a systematic process of determining the extent to which educational objectives are achieved by pupils."

क्यूलिन तथा हन्ना के अनुसार, "विद्यालय द्वारा हुए बालक के व्यवहार परिवर्तन के विषय में साक्ष्यों के संकलन तथा उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है।"

According to Quillen and Hanna, "Evaluation is the process of gathering and interpreting evidences on changes in the behaviour of the students as they progress through school."

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर कह सकते हैं कि

1) मूल्यांकन उद्देश्यपूर्ण, व्यापक एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया है।
2) मूल्यांकन द्वारा व्यक्ति के वांछनीय व्यवहार परिवर्तन का पता लगाया जाता है।
3) मूल्यांकन सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण अंग है तथा इसका शिक्षण उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मूल्यांकन की विशेषताएँ (Characteristics of Evaluation)

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से मूल्यांकन का अर्थ व प्रकृति स्पष्ट होने के साथ–साथ इसकी निम्न विशेषताएँ उभर कर सामने आई हैं–

1) मूल्यांकन एक व्यापक प्रत्यय है।
2) यह एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी की प्रगति के बारे में जानने हेतु अनेक तरह के प्रयास किए जाते हैं।
3) यह शिक्षण अधिगम परिणामों को परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों तरह से प्रस्तुत करता है।
4) इसकी विधियों एवं तकनीकियों का क्षेत्र कुछ परीक्षणों या परम्परागत तक ही सीमित न होकर बहुआयामी साधनों के प्रयोग हेतु काफी लचीलापन एवं व्यापकता प्रदान करता है।
5) इसके द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के सन्दर्भ में शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षण विधियों तथा शैक्षिक व्यवस्था की गुणवत्ता की जाँच सम्भव है।

मूल्यांकन के उद्देश्य एवं कार्य (Objectives and Functions of Evaluation)

मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्य एवं कार्य निम्न हैं–

1) मूल्यांकन के द्वारा अन्तिम निर्णय दिया जाता है जिसके आधार पर परीक्षा प्रणाली में सुधार किया जाता है।
2) मूल्यांकन के द्वारा छात्रों को निर्देशन व परामर्श दिया जाता है।
3) अनुदेशन की प्रभावशीलता का पता लगाया जाता है।
4) बालक के अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों का पता लगाया जाता है।
5) बालक की अधिगम सम्बन्धी नवीन प्रविधियों के निर्माण में सहायता प्रदान करना है।
6) छात्रों को उनकी प्रगति के सम्बन्ध में जानकारी देना।
7) प्रचलित पाठ्यक्रम की जाँच करके उसमें सुधार करना।
8) बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पता लगाना।
9) शिक्षण व्यूह रचना का विकास करना है।
10) छात्रों का वर्गीकरण किया जाता है।

परिवीक्षण और मूल्यांकन प्रणाली (Monitoring and Evaluation System)

निगरानी और मूल्यांकन प्रणाली में स्कूल परिणामों की उपलब्धि, प्रारंभिक लाभ या शिक्षार्थियों की प्रगति और एस.आई.पी में दिए गए कार्यक्रमों और परियोजनाओं के प्रबंधन में स्कूल की दक्षता शामिल है। विशेष रूप से, विद्यालय निगरानी और मूल्यांकन प्रणाली में निम्नलिखित पक्ष आते है–

1) **परिणाम**–विद्यालय निगरानी और मूल्यांकन प्रणाली का प्राथमिक ध्यान शिक्षार्थियों पर है। स्कूल की प्रभावशीलता निम्न क्षेत्रों में शिक्षार्थियों के प्रदर्शन पर आधारित है–
   i) नामांकन या शिक्षार्थियों के पहुँच या भागीदारी में सुधार।

Scanned by CamScanner

ii) बुनियादी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम छात्रों की संख्या या समापन।
iii) रिटेंशन या शिक्षार्थी जो स्कूल में रहे।
iv) शिक्षार्थियों की उपलब्धि में सुधार।

2) **इंटरमीडिएट परिणाम**–विद्यालय निगरानी और मूल्यांकन प्रणाली भी मध्यवर्ती परिणामों को ट्रैक करेगा। ये शिक्षार्थियों के लिए स्कूल की सहायता में सुधार के सम्बन्ध में अग्रणी संकेतक हैं। इसमें निम्नलिखित शामिल हैं–
i) शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया की गुणवत्ता।
ii) सीखने की सुविधा और सीखने की सामग्रियों के लिए शिक्षार्थियों की पहुंच में सुधार।
iii) शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया और स्कूल की गतिविधियों में शिक्षार्थियों की भागीदारी।
iv) अभ्यास के स्तर में सुधार।
v) स्कूल के हितधारकों की सकारात्मक धारणा।

3) **स्कूल की प्रगति**–विद्यालय निगरानी और मूल्यांकन प्रणाली स्कूल कार्यक्रमों और एसआईपी, परियोजना प्रबंधन और संसाधनों के उपयोग और वित्तीय संसाधनों के प्रबंधन में उल्लिखित परियोजनाओं के कार्यान्वयन की निगरानी करेंगे। विशेष रूप से, प्रगति की निगरानी में निम्नलिखित शामिल हैं–
i) एस.आई.पी में निर्धारित गुणवत्ता, समय और लक्ष्य के आधार पर कार्यक्रमों और परियोजनाओं के स्कूल का कार्यान्वयन।
ii) कर्मचारी विकास, विशेष रूप से शिक्षकों के कौशल में सुधार।
iii) स्कूल सुविधाएँ और अन्य संसाधनों का उपयोग, सीखने के माहौल में रखरखाव और सुधार।
iv) वित्तीय प्रबंधन की भौतिक उपलब्धियाँ।

परिवीक्षण और मूल्यांकन प्रणाली के घटक (Components of Monitoring and Evaluation System)

निरीक्षण और मूल्यांकन प्रणाली के मुख्य घटक निम्नलिखित हैं–

1) **स्कूल रिकॉर्ड रखने की प्रणाली**–इसका उद्देश्य स्कूल स्तर पर जानकारी रखना है। इसमें आम तौर पर छात्रों (स्कूल प्रवेश, उपस्थिति, शैक्षिक उपलब्धियों आदि), शिक्षकों (शिक्षक का व्यक्तिगत प्रोफ़ाइल), वित्त (स्कूल बजट और व्यय), और शारीरिक सुविधाएँ (स्कूल की इमारत, कक्षाओं, फर्नीचर, उपकरण की मात्रा और गुणवत्ता पर डेटा) आदि शामिल हैं।

2) **सांख्यिकीय डाटा सिस्टम**–इसे शिक्षा प्रबंधन की सूचना प्रणाली कहा जाता है, इसे नीति और कार्यक्रम तैयार करने, क्रियान्वयन और निगरानी के लिए स्कूल स्तर के आंकड़ों को एकत्रित, संकलन, संगठित और विश्लेषण करने के लिए डिजाइन किया गया है।

3) **संसाधन प्रबन्धन प्रणाली**–इसमें शिक्षक प्रबन्धन या शिक्षक प्रबन्धन सूचना प्रणाली शामिल हो सकती है, जिसे शिक्षकों की भर्ती और तैनाती के प्रबन्धन और वित्तीय संसाधन प्रबन्धन या वित्तीय प्रबन्धन सूचना प्रणाली का समर्थन करने के लिए डिजाइन किया गया है।

4) **प्रदर्शन मूल्यांकन प्रणाली**–इसमें स्कूल निरीक्षण और मूल्यांकन प्रणाली शामिल है जो शिक्षा मंत्रालय द्वारा आयोजित किया जाता है जो निरीक्षण और निरीक्षण करती है कि क्या स्कूल सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा निर्धारित नियमों, नियमों और मानकों का अनुपालन करता है, और एक शिक्षक मूल्यांकन प्रणाली जिसका कार्य शिक्षकों के प्रदर्शन का, मूल्यांकन करने के लिए प्रासंगिक शिक्षा संस्थानों द्वारा किया जाता है।

5) **छात्र मूल्यांकन प्रणाली**–इसमें छात्रों को प्रमाणित करने या चयन करने के लिए डिजाइन की जाने वाली परीक्षा प्रणाली शामिल हो सकती है, आमतौर पर स्कूल के पाठ्यक्रम में मुख्य विषय क्षेत्रों को कवर किया जा सकता है, और एक छात्र आंकलन प्रणाली जो शिक्षा में उपलब्धियों के स्तर का अनुमान प्रदान करती है।

विद्यालय में परिवीक्षण और मूल्यांकन की भूमिका (Role of Monitoring and Evaluation in Schools)

विद्यालय में निगरानी और मूल्यांकन प्रक्रिया, नेतृत्व को सूचित करते हैं और जवाबदेही और विद्यालय सुधार में निम्न प्रकार से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं–

1) एक नीति, कार्यक्रम या परियोजना के संचालन और अपेक्षित परिणामों को पूरा करने की क्षमता के बारे में अंतर्दृष्टि प्राप्त करें।
2) अभ्यास, प्रदर्शन और परिणामों में सुधार करें।
3) उद्देश्यों और लक्ष्यों, लाभ, प्रभावशीलता और दक्षता जैसे परिणामों को पूरा करने की क्षमता के मामले में प्रभावों का मूल्यांकन करना।
4) धन बढ़ाने, कौशल बढ़ाने और जवाबदेही को मजबूत करने में क्षमता बढ़ाएं।
5) प्रासंगिकता, प्रभावशीलता, दक्षता, प्रभाव और स्थिरता का निर्धारण करें।
6) निगरानी और मूल्यांकन सर्वोत्तम अभ्यासों का उपयोग करके, किसी भी स्कूल प्रबंधन टीम के पास पूर्व अनुभवों से सीखने, सीखने, नियोजन और संसाधनों को आवंटित करने के साथ–साथ प्रमुख हितधारकों के लिए स्कूल की जवाबदेही के भाग के रूप में परिणाम प्रदर्शित करने के बेहतर साधन हो सकते हैं।
7) निगरानी और मूल्यांकन प्राथमिकताओं को स्थापित करने और आगे सुधार की योजना के लिए आवश्यक जानकारी प्रदान करें।
8) यह अभिनेताओं को एक दूसरे के अनुभवों से सीखने की अनुमति देता है, विशेषज्ञता और ज्ञान पर निर्माण करना।
9) यह अक्सर लिखित रिपोर्ट उत्पन्न करती है जो पारदर्शिता और जवाबदेही में योगदान करती है।
10) निगरानी और मूल्यांकन से गलतियों को पता चलता है जिससे सीखने और सुधार के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

Scanned by CamScanner